राजेन्द्र द्विवेदी

भाषाशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश

भाषाशास्त्र

का

पारिभाषिक शब्दकोश

भाषा, भाषण, भाषा परिवार, भाषा विज्ञान, वाक्य विचार, रूप विचार, ध्वनि, ध्वनि विचार, अर्थ विचार, व्युत्पत्ति-शास्त्र, शब्द समूह, लिपि, प्रागैतिहासिक खोज, भारत की बोलियों आदि का पारिभाषिक शब्दकोश

राजेन्द्र द्विवेदी

एम० ए० (अंग्रेज़ी, संस्कृत), साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न

भूमिका

बाबूराम सक्सेना

1963

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

BHASHA-SHASTRA KA PARIBHASHIK SHABDKOSH

by

Rajendra Dwivedi

Rs. ~~10.00~~

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज खास, नई दिल्ली
माई हीरां गेट, जालन्धर
चौड़ा रास्ता, जयपुर
बेगमपुल रोड, मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
महानगर, लखनऊ-6

मूल्य : ~~दस रुपए~~
प्रथम संस्करण :

मुद्रक
राकेश प्रेस
दिल्ली

प्राक्कथन

भाषा सम्बन्धी गहन अध्ययन सम्भवत: संसार के अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में पहले प्रारम्भ हुआ और इसने भाषा विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र, वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक शाखाओं में महत्ता प्राप्त की। आरम्भ वैदिक संस्कृत के शुद्ध उच्चारण आदि प्रयोगों से हुआ था, पर पाणिनि द्वारा निर्धारित, शिष्ट लौकिक संस्कृत के अध्ययन का इतना महत्व बढ़ा कि वेद के षडंगों में ही नहीं, साहित्य आदि के अध्ययन में भी पारंगामिता प्राप्त करने के लिए व्याकरण का पांडित्य आवश्यक समझा गया। नौबत यहाँ तक पहुँची कि अन्य किसी भी शास्त्र या विद्या में निष्णात व्यक्ति यदि पाणिनि और भट्टोजि दीक्षित की परिपाटी से शब्द सिद्धि करने में जरा भी भूल करे तो वह पंडित नहीं माना जाता। संस्कृत के अध्ययन के लिए उत्तरी भारत के सर्वमान्य केन्द्र, काशी में आज भी ऐसा समझा जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि "मुख व्याकरण स्मृतम्"—यह उक्ति चरितार्थ है। हमारे इतिहास के मध्य युग में भी व्याकरण के अध्ययन पर बराबर बल दिया गया और प्राकृतों को संस्कृत से प्रादुर्भूत मानकर प्राकृत व्याकरणकारों ने प्रादेशिक प्राकृतों और अपभ्रंशों की विशेषताओं का सूक्ष्म अध्ययन किया।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के व्याकरणिक अध्ययन का प्रारम्भ विदेशियों, मुसलमानों और ईसाइयों, ने किया। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि इस देश के दैनिक व्यवहार में आने वाली वाणी के इस प्रकार के अध्ययन का कोई प्रयोजन भाषाभाषियों को नहीं हो सकता था। इन्हीं की देखा-देखी फिर अन्य व्याकरण लिखे गए।

वर्त्तमान युग में तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अध्ययन की मूल प्रेरणा यूरोप में यद्यपि लैटिन और ग्रीक से आरम्भ हुई थी, तथापि उसको द्रुतगति संस्कृत के कारण मिली। अठारहवीं ई० शती में इस अध्ययन ने विशेष प्रगति पाई। उन्नीसवीं शती को तो भाषाविज्ञान की ही शती कहना चाहिए। इसमें न केवल इस विद्या के बड़े-बड़े मनीषी ही प्रचुर संख्या में हुए बल्कि उनके कार्य के कारण इसको विज्ञान की मान्यता प्राप्त हुई।

भारत में आधुनिक भाषा विज्ञान का अध्ययन उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में ही सम्भव हो सका। इसका सारा श्रेय यूरोपीय विद्वानों को है जिन्होंने भारतीय भाषाओं पर भाषाविज्ञान के सिद्धान्त लागू किए। जिन भारतीय विद्वानों ने इस अध्ययन को अपनाया उनमें सर्वप्रथम श्री रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर हैं। उनके उपरान्त फिर

बीसवीं शती में देश के प्रायः प्रत्येक अंचल में इस अध्ययन का कुछ-न-कुछ काम हुआ। पिछले दस वर्षों में इसने आशातीत प्रगति प्राप्त की है। मुख्य रूप से क्षेत्रीय भाषाओं का वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन ही विद्वानों का ध्येय रहा है। भाषाविज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों का अध्ययन कर भारतीय भाषाओं में उनका प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ तो बहुत कम हैं। परन्तु अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी में इस श्रेणी का साहित्य अच्छा है। इस भाषा में प्राप्त साहित्य के कुछ ग्रन्थकारों ने उच्चकोटि के आचार्यों से अध्ययन कर फिर इस विज्ञान को पढ़ाया है और तब ग्रन्थ की रचना की है। कुछ ने उच्चकोटि के किसी आचार्य से पढ़ा, मनन किया और फिर ग्रन्थ लिख दिया। कुछेक ने आचार्यों के अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थों का अध्ययन कर ग्रन्थ लिख दिए। एक दो ऐसे भी ग्रन्थकार हैं जिन्होंने इतना भी नहीं किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री राजेन्द्र द्विवेदी ने भाषाशास्त्र विषयक सारी सामग्री का संकलन करके ऊपर उल्लिखित सभी ग्रन्थों के उद्धरण दिए हैं। उसकी छानबीन कर ग्राह्य और अग्राह्य का विवेचन भी हो सकता तो निश्चय ही ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ जाती। मैं समझता हूँ कि यह अगले संस्करण में कर दिया जाएगा। पर सामग्री का संकलनमात्र भी अपने आप में एक बड़ा ही कष्टसाध्य कार्य था, जिसे ग्रन्थकार ने बड़े परिश्रम से निभाया है। इसके लिए वह साधुवाद के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

—बाबूराम सक्सेना

उपाध्यक्ष,
वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली आयोग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
नई दिल्ली।

• अपनी बात

भर्तृहरि ने कहा है कि इस दुनिया को इकट्ठा लाने की शक्ति शब्दों में (तदनुसार शब्दों के समुच्चय भाषा में) है। भाषा के ज्ञान के बिना कोई भी ज्ञान प्रकाशित नहीं हो सकता। दंडी के शब्दों में यदि शब्द रूपी ज्योति न रहे, तो यह सारी दुनिया अँधेरे में डूब जाएगी। भाषा का यह ज्ञान मनुष्य को गार्डिनर के शब्दों में एक पैत्रिक विरासत के रूप में प्राप्त होता है। किन्तु इस पैत्रिक सम्पत्ति को अपना बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रयत्न करना पड़ता है और उसका अर्जन समाज में ही किया जा सकता है।

शब्दों के प्रति जिज्ञासा की तुलना ह्विटने ने बालसुलभ सामान्य जिज्ञासा से की है और यह आधुनिक युग की ही उपज नहीं है। वैयाकरण, दार्शनिक और साहित्यशास्त्री सभी शब्द की उत्पत्ति, प्रकृति और प्रवृत्ति के विषय में चिन्तित रहे हैं। भाषाशास्त्र के अभ्युदय की स्थली भी डा० भांडारकर के शब्दों में भारतवर्ष ही है। इस प्रसंग में उन्होंने कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के 'व्याकृता वाक्' वाले मन्त्र का उद्धरण दिया है। फिर भी तुलनात्मक भाषा विज्ञान या भाषाशास्त्र का विकास आधुनिक युग की देन है। यूरोप में संस्कृत के प्रवेश के बाद ही इस शास्त्र का विशेष पल्लवन हुआ और भाषाशास्त्रियों की एक अटूट परम्परा ने उसे आज तक सजीव रखा है।

भाषाशास्त्र विषयक अनेक उपयोगी पुस्तकें आज उपलब्ध हैं और भारतीय विद्वानों द्वारा लिखे गए ग्रंथों की संख्या भी कम नहीं है। भारत की प्रायः सभी भाषाओं और प्रमुख बोलियों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन किया जा चुका है। कुछ विश्वविद्यालयों और दूसरी संस्थाओं ने इस दिशा में विशेष योगदान दिया है और आगरा के भाषा विज्ञान विद्यापीठ का उल्लेख इस प्रसंग में विशेष रूप से किया जा सकता है। इस प्रकार आज भारत में भाषा विज्ञान विषयक अध्ययन की सुपुष्ट परम्परा विद्यमान है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य भाषा विज्ञान के उपलब्ध सामान्य ग्रन्थों में एक संख्या और बढ़ाना नहीं, बल्कि उस विज्ञान को एक सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करना है। मेरे 'साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश' का हिन्दी जगत् ने अपार स्वागत किया और आज वह प्रत्येक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक पुस्तकालय या महा-विद्यालयीन पुस्तकालय में अपना स्थान प्राप्त कर चुका है। उसी श्रृंखला में यह दूसरा ग्रन्थ अब आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। हिन्दी में सन्दर्भ ग्रन्थों का अभाव सुविदित है और इस दिशा में जो छिटपुट प्रयत्न

हुए हैं, उनके द्वारा इस वांछित कोष की आंशिक समृद्धि ही हो सकी है। सन्दर्भ ग्रन्थों की दृष्टि से हिन्दी भाषा को और समृद्ध बनाने के लिए अभी अनेक संस्थाओं और व्यक्तियों की साधना की बड़ी अपेक्षा है।

जैसा मैंने बताया, भाषा विज्ञान के उत्कृष्ट ग्रन्थों की एक सुपुष्ट श्रृंखला आज हमें उपलब्ध है। स्वभावतः यह कोष विविध ग्रन्थ-रत्नों में बिखरी हुई विशाल सामग्री का एक संकलन ग्रन्थ—एक मधु-संचय—है और ऐसे ग्रन्थ में मौलिकता का विशेष दावा नहीं किया जा सकता। श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने 'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त' में कहा है : "प्रत्येक बात के लिए मनुष्य अपने विवेक से उत्पन्न विचार प्रकट नहीं करता। संस्कार या परम्परा से प्राप्त विचारों में ही अपनी बातें मिला देता है।" पर विशेषतः इस प्रकार के ग्रन्थों में तो पूर्व ग्रन्थों का ऋण और भी अधिक होता है—इनका तो अस्तित्व ही उनके ऊपर निर्भर होता है। पूर्वसूधियों के उद्धरण का आग्रह इसी कारण अधिक रहा है, यद्यपि सभी उद्धृतसुधी सर्वांशतः शुद्ध या अविवाद्य बात ही कहते हों, ऐसा नहीं है। प्रयुक्त सामग्री की एक विशद सारणी परिशिष्ट के रूप में अन्त में दी जा रही है। लेखक उन सभी का ऋणी है। यथासम्भव प्रत्येक स्थल पर जिन ग्रन्थों से उद्धरण लिए गए हैं, उनका उल्लेख कर दिया गया है। इस संकुचित स्थान पर प्रत्येक ग्रन्थकार का आभार स्वीकृत करना असम्भव भी है। संस्कृत, अंग्रेज़ी और हिन्दी के अनेक ग्रन्थों की सहायता पग-पग पर ली गयी है। विशेषतः हिन्दी में भाषा विज्ञान विषयक ग्रन्थकार डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाबूराम सक्सेना, डा० भोलानाथ तिवारी, डा० मंगलदेव शास्त्री, श्री श्यामसुन्दर दास, श्री नलिनी मोहन सान्याल आदि की कृतियों से पूरा-पूरा लाभ उठाया गया है और लेखक इन सभी पूर्वसुधियों का आकंठ ऋणी है।

अन्त में इस संकलन के विषय में एक विशेष निवेदन है। भारत की सभी बोलियों और भाषाओं के बारे में एक टिप्पणी ऐसे ग्रन्थ का अभिन्न अंग होनी चाहिए, इस विश्वास से मैंने बोलियों विषयक सामग्री को संकलित करना आवश्यक माना। इसके लिए उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री में जनगणना-पत्रों का उपयोग अपेक्षित ही था। सन् 1954 में जनगणना विभाग ने भारत की भाषाओं और बोलियों के विषय में एक विशेष आँकड़ा-ग्रन्थ प्रकाशित किया था। 1961 की जनगणना के सिलसिले में ऐसा ग्रन्थ अब तक नहीं निकल सका है। इसलिए इस ग्रन्थ में संकलित सामग्री सन् 1951 की जनगणना पर ही आधारित है और आज दस-ग्यारह वर्ष पुरानी हो गयी है। इसके साथ ही इस सामग्री में एक खटकने वाली कमी और भी है। वह यह कि भारत सरकार भाषा के विषय में सदा से बड़ी सतर्क रही है और जनगणना-अधिकारियों ने प्रत्येक व्यक्ति को स्वाधीनता दे रखी थी कि वह अपनी बोली या भाषा मनचाहे रूप में लिखा सकता है। इस स्वाधीनता का कुछ अवांछित रूप में दुरुपयोग हुआ है। जैसा आप देखेंगे, इन बोलियों की कुल संख्या बढ़कर आठ सौ से ऊपर पहुँच गयी है। परन्तु अनेक बोलियाँ ऐसी दर्ज की गयी हैं, जिनका बोलने वाला केवल 'एक'

व्यक्ति बताया गया है ! यह बात किसी भी भाषा विज्ञानी की समझ में नहीं आ सकती है। भाषा समाज की चीज़ है और किसी भी बोली को बोलने वाला 'एक' नहीं हो सकता। फिर भी ऐसी अनेक बोलियों का जनगणना के उक्त पत्र में और तदनुसार इस ग्रन्थ में उल्लेख है। इसी कारण एक बार मेरी इच्छा यह भी हुई थी कि बोलियों के बारे में इस सूचना को इस ग्रन्थ से निकाल दिया जाय। परन्तु नीरस, एकतानता पूर्ण और अवैज्ञानिक होते हुए भी इस सामग्री का अपना महत्त्व है और इसी कारण मैंने उसे यथारूप दे दिया है। किन्तु अपने पाठकों का ध्यान इस ओर दिलाना मैंने आवश्यक समझकर यह स्पष्टीकरण दे दिया है। इनका उतना ही महत्त्व समझना चाहिए, जितना है, उससे रंचमात्र भी अधिक नहीं। इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन भाषाशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों को उनके इतिहास और विकास के परिप्रेक्ष्य में सांगोपांग प्रस्तुत करना है और उसके लिए इन बोलियों के विवरण की अपेक्षा भाषा, शब्द, अर्थ, ध्वनि, वाक्य, लिपि, भाषोत्पत्ति, भाषाविज्ञानेतिहास आदि-आदि शब्दों की टिप्पणियों की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और तदनुसार इस ग्रन्थ के महत्त्व का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। विश्वास है कि इस निरवधि काल में और हिन्दी क्षेत्र की विपुल पृथ्वी में आगे चलकर ऐसे लोग अवश्य आगे आयेंगे, जो इस विषय पर इसकी अपेक्षा और अधिक परिपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ की रचना के लिए अग्रसर होंगे। तब तक यदि इसके द्वारा मातृभाषा की कुछ सेवा सम्भव हो सकी, तो वही हमारी इतिकर्त्तव्यता समझी जानी चाहिए।

72 सी, इरविन रोड,
नई दिल्ली

—राजेन्द्र द्विवेदी

अ

अ (१)—भट्टोजिदीक्षित आदि संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारणस्थान कंठ, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य-प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह ह्रस्व 'अ' उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अनुनासिक और अननुनासिक होने से छः प्रकार का होता है। बाबू श्यामसुन्दर दास के मत से यह ह्रस्व, अर्द्ध विवृत मिश्र स्वर है और इसके उच्चारण में जीभ न बिलकुल पीछे रहती है न बिलकुल आगे, उसका मध्य भाग थोड़ा-सा ऊपर उठता है। यही पिछली बात कहते हुए डा० धीरेन्द्र वर्मा इसे अर्द्ध विवृत मध्यस्वर मानते हैं। इसके उच्चारण में होंठ थोड़े से खुल जाते हैं। इस ह्रस्व अ के उच्चारण में एक मात्रा जितना समय लगता है और इसका उपयोग बहुत से शब्दों में होता है। शब्द के या शब्दांश के अन्त में आने वाले अ और उसके आरम्भ या मध्य में आने वाले 'अ' के उच्चारण में कुछ अन्तर रहता है। उदाहरणार्थ—अगर, कमल, पुष्प और द्वितीय को लें। अगर में अ और ग में और अमल में अ और क में अ का उच्चारण होता है, और र और ल में अ का उच्चारण नहीं होता बल्कि ये हलन्त र् और ल् से उच्चरित होते हैं। परन्तु कामताप्रसाद गुरु ने अपने हिन्दी व्याकरण में (देखिए पृ० 38) इस नियम के अपवाद भी बताए हैं, उपर्युक्त पुष्प और द्वितीय में प के अ का (संयुक्त अथवा दीर्घ से परवर्ती अ का) पूरा उच्चारण होता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से उपर्युक्त अगर और कमल में ग और म के अ बन्द अ हैं और अ और क के खुले अ।

अ (२)—संस्कृत वैयाकरणों के मत से ह्रस्व अ का यह प्रयोग संवृत है, जब कि अन्य सभी स्वर विवृत है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह अर्द्ध विवृत मध्य ह्रस्वार्द्ध स्वर है और हिन्दी अ से मिलता-जुलता है। बाबू श्यामसुन्दर दास के शब्दों में इसके उच्चारण में जीभ अ की अपेक्षा थोड़ी और ऊपर उठ जाती है। जब यह ध्वनि काकल से निकलती है तो काकल के ऊपर के गले और मुख में कोई निश्चित क्रिया नहीं होती। इसी कारण इसे अनिश्चित या उदासीन स्वर कहते हैं। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार यह ध्वनि अवधी में पाई जाती है। उदा० सोरही रामक। बेली के अनुसार पंजाबी में भी यह ध्वनि मिलती है। उदा० रईस, वचारा (हिन्दी-बेचारा), नौकर। कुछ विद्वानों के अनुसार पश्चिमी हिन्दी में भी इसका प्रयोग देखने को मिलता है।

अंक—अंक-लेखन की प्राचीन और नवीन शैली का उल्लेख करते हुए डा० गौरी-शंकर हीराचन्द ओझा कहते हैं कि वर्तमान समय में जैसे 1 से 9 तक अंक और शून्य इन दस चिह्नों से अंक विद्या का सम्पूर्ण व्यवहार चलता है, वैसे प्राचीन काल में नहीं

था। उस समय शून्य का व्यवहार ही न था और दहाइयों, सैकड़ों, हजारों आदि के लिए भी अलग चिह्न थे। भारतीय मूल अंक विदेशी अंकों से प्रभावित हैं, इस मत का निराकरण करते हुए भी डा० ओझा का मत है कि प्राचीन शैली के भारतीय अंक भारतीय आर्यों के स्वतन्त्र निर्माण किये हुए हैं। आगे वह कहते हैं कि शून्य की योजना कर नव अंकों से गणित शास्त्र को सरल करने वाले नवीन शैली के अंकों का प्रचार पहले पहल किस विद्वान् ने किया, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। केवल यही पाया जाता है कि नवीन शैली में अंकों की सृष्टि भारतवर्ष में हुई और वहाँ से अरबों ने यह क्रम सीखा और अरबों से उसका प्रवेश यूरोप में हुआ।

प्राचीन शैली के अंकों का ठीक-ठीक उद्भव कब और कैसे हुआ, इसके बारे में कोई एक निश्चित मत नहीं है। डा० ओझा ने बूहलर का यह मत उद्धृत किया है कि अंकों में अनुनासिक, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का होना यह प्रकट करता है कि उनका निर्माण ब्राह्मणों ने किया था, न कि बनियों (महाजनों) ने या बौद्धों ने, जो प्राकृत को काम में लाते थे। प्रिंसेप के इस विचार का भी उन्होंने खण्डन किया है कि अंक अपने सूचक शब्दों के प्रथमाक्षर हैं। पण्डित भगवानलाल ने आर्यभट्ट और मन्त्र शास्त्र की अक्षरों द्वारा अंक सूचित करने की रीति को भी जाँचा, परन्तु उसमें सफलता न हुई।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार नवीन शैली के अंकक्रम का प्रचार पाँचवीं शताब्दी के लगभग से सर्वसाधारण में था, यद्यपि शिलालेख आदि में प्राचीन शैली का ही प्रायः उपयोग किया जाता था।

अंगला—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 7 है और यह भारत के पूर्वी भाग में बोली जाती है।

अंडमानी—अंडमान द्वीपसमूह की वर्तमान भाषा अंडमानी को विश्व के किसी निश्चित भाषा परिवार में नहीं रखा जा सका है।

1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 26 है, जो अंडमान और नीकोबर द्वीप-समूह में रहते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय भाषा—स्थान विशेष की बोली (दे० यथा०) अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति कर आदर्श भाषा (दे० यथा०) बनती है। उसके बाद यदि वह समर्थ हुई तो अंतः प्रदेशीय व्यवहार की और समूचे राष्ट्र की भाषा 'राष्ट्रभाषा' बन जाती है। राष्ट्रों के बीच पारस्परिक व्यवहार के लिए जिस भाषा का प्रयोग होता है, उसे अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं। आजकल यह स्थान अंग्रेजी को प्राप्त है। किसी बोली के लिए यह सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा हो सकती है। विशेष दे० आदर्श भाषा, विशिष्ट भाषा।

अंतर्वेदी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 102 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

अंतःस्थ—संस्कृत वैयाकरणों के मत से य् र् ल् व् (यण्) अंतःस्थ ध्वनियाँ हैं। परन्तु आधुनिक वैयाकरण इनमें से य्, व् को अर्द्धस्वर र् को उत्क्षिप्त और ल् को पार्श्विक नाम से पुकारते हैं (विशेष दे० यथा०)। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार अंतःस्थ ध्वनियों के उच्चारण में मुख-विवर सँकरा तो कर दिया जाता है, परन्तु इतना नहीं कि स्पर्श या संघर्षी ध्वनियाँ निकलें और न इतना कम कि वे ध्वनियाँ स्वर का रूप धारण कर लें। अंतःस्थ ध्वनियाँ स्वर और व्यंजन के बीच की श्रेणी की ध्वनियाँ हैं।

अंद्रोक—भारत की इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की संख्या केवल 2 है। ये लोग अंडमान और नीकोबर द्वीपसमूह में रहते हैं।

अंमानी—भारत की इस बोली या उपभाषा को बोलने वाले व्यक्तियों की संख्या एक है और वह व्यक्ति भारत के मध्य खण्ड में रहता है।

अओ—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 48723 है और यह भारत के पूर्वी भाग में बोली जाती है।

अओगा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

अका—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 64 है और यह पूर्वी भारत में बोली जाती है।

अक्षर—ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार व्यंजन सहित या अनुस्वार सहित या शुद्ध वर्ण को अक्षर कहते हैं। (सव्यंजनः सानुस्वारः शुद्धो वापि स्वरोऽक्षरम्)। परन्तु लोक में शुद्धवर्ण को ही प्रायः अक्षर कहते हैं और दोनों पर्याय बन गए हैं। कुछ भाषा-शास्त्री अंग्रेजी 'सिलेबिल' के लिए अक्षर शब्द का प्रयोग करते हैं और अंग्रेजी 'लैटर' शब्द के लिए वर्ण का। उनके अनुसार 'विद्' आदि में अक्षर एक होता है और वर्ण तीन (एक स्वर और दो व्यंजन)। कुछ विद्वान् इन तीनों के आधारभूत स्वर की दृष्टि में स्वर को ही अक्षर मानते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अंग्रेजी 'सिलेबिल' के लिए 'अक्षर' के साथ 'शब्दांश' शब्द भी प्रयुक्त किया है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार शास्त्रीय भाषा में ऐसे स्वर को आक्षरिक (सिलेबिक) कहते हैं, और उसके साथ उच्चरित होने वाले पूरे ध्वनि समूह को अक्षर कहते हैं।

अक्षरावस्थान—अक्षरावस्थान (एपोथौनी), अक्षरश्रेणीकरण (वौवेल ग्रेडेशन) और अपश्रुति (एब्लौट) प्रायः पर्याय रूप से प्रयुक्त होते हैं। दो-तीन शब्दों से बनी धातु में स्वरों का भेद करके जब नाना रूप बनाए जाते हैं, तो इसे अपश्रुति (दे० ध्वनि-परिवर्तन) कहते हैं। स्वरों के परिवर्तन की इस क्रिया और उसके इतिहास को ही अक्षरावस्थान, कहते हैं। अतः दोनों में मूलतः विशेष भेद नहीं है। आज संस्कृत में प्रायः स्वर का एक निश्चित स्थान रहता है। ग्रीक में तो और भी कठोर नियम है कि स्वर पदान्त से तीसरे अक्षर तक ही जा सकता है। मूल भारोपीय भाषा में यह व्यवस्था अपेक्षतया अधिक स्वच्छन्द रही होगी। एक ही स्थान पर आने वाले

ह्रस्व, दीर्घ, गुण या वृद्धि को देखकर ही आज अपश्रुति या अक्षरावस्थान की कल्पना की जाती है ।

बाबू श्यामसुन्दर दास के शब्दों में ग्रीक में स्वरों की उदात्तता पर उच्च श्रेणी, उसके हट जाने पर निम्न श्रेणी और बल के अभाव में शून्य श्रेणी ये तीन श्रेणियाँ देखी जाती हैं। पहले तो इन विकारों के गुण और परिमाण (या मात्रा) के अनुसार गुणीय (या गौण) और परिमाणीय (या मात्रिक) दो भेद किए गए हैं, फिर प्रत्येक की कई मालाएँ स्थिर की गई हैं। संस्कृत में गुण-वृद्धि की एक कोटि है और संप्रसारण और समानाक्षर की दूसरी कोटि । अतः वृद्धि-गुण संप्रसारण को उच्च-निम्न-दुर्बल श्रेणी नहीं कह सकते ।

संस्कृत में केवल मात्रिक या परिमाणीय अक्षरावस्थान या अपश्रुति के उदाहरण देखे जाते हैं। उदात्त के बदल जाने से निम्न उदाहरणों में ए, ओ, अर्, के स्थान पर इ, उ, ऋ हो गए हैं—

उच्च श्रेणी निम्न श्रेणी

एमि = इमः

आप्नोमि = आप्नुमः

वर्धाय = वृधाय

गुणीय विकार के उदाहरण में लैटिन की आ:ओ माला ली जा सकती है—

उच्च श्रेणी	**निम्न श्रेणी**	**शून्य श्रेणी**
फामी	फोमे	फामेन
(Phami	Phome	Phamen)

इसी प्रकार की अनेकों मालाएँ विद्वानों द्वारा निश्चित की गई हैं। विस्तृत उदाहरणो के लिए भाषा-रहस्य देखें । ग्रीक और लैटिन के उदाहरण एडमंड्स को कम्पेरेटिव फिलोलौजी और संस्कृत के उदाहरण मैकडानल की वैदिक ग्रामर में देखे जा सकते हैं।

अक्षरावस्थिति—स्वरों के उच्चारण में जीभ की विशेष स्थितियों के उपयोग को स्वरावस्थिति या अक्षरावस्थिति कहते हैं। स्वरों के उच्चारण में कोई बाधा नहीं पड़ती, न रगड़ ही होती है । अतः उनका वर्गीकरण जीभ की इन स्थितियों के आधार पर ही किया जाता है। पहले जीभ को तीन भागों में बाँटते हैं—अग्र, पश्च और मध्य । जीभ के इन तीन भागों के प्रयोग के आधार पर स्वरों के तीन भेद हो जाते हैं। दूसरी बात यह देखी जाती है कि जीभ के ये भाग कितना उठते हैं । जब जीभ अधिक-से-अधिक ऊपर उठती है (पर इतना नहीं कि श्वास के निकलने में रगड़ हो), तो मुख-विवर बहुत संकरा या संवृत हो जाता है। जीभ के इससे कुछ कम उठने पर मुख-विवर अर्द्धसंवृत रहता है। जीभ के कुछ कम उठने पर अर्द्धविवृत और कम-से-कम उठने पर वह विवृत रहता है । तीसरी बात यह देखी जाती है कि ओठों की स्थिति कैसी है, उनके गोल रहने पर वृत्ताकार और अन्यथा अवृत्ताकार (दे० यथा०) स्वर

पैदा होते हैं। चौथी बात यह है कि मांसपेशियों की दृढ़ता शिथिलता के आधार पर ये दृढ़ स्वर और शिथिल स्वर सुन पड़ते हैं। विशेष दे० मूलस्वर, स्वर।

अगरिया—इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 4 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

अगिदेई—इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की जनसंख्या कुल 2 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

अग्रवाली—इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की जनसंख्या कुल 1 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

अग्र स्वर—स्वरों के उच्चारण में जीभ के अगले (अग्र), बिचले (मध्य) तथा पिछले (पश्च) भागों के उपयोग से भेद हो जाता है। जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वाग्र ऊपर उठता है उन्हें अग्र स्वर कहते हैं। विशेष विवरण के लिए दे० मूलस्वर।

अघोष—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्णों और श, ष, स का बाह्य प्रयत्न अघोष होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण। आधुनिक विद्वानों के अनुसार ध्वनि यन्त्र तक आने तक श्वास विकारहीन और भेद रहित रहता है। ध्वनि यन्त्र में पहुँच कर या तो स्वरतंत्रियों के शिथिल रहने से श्वास बिना रुकावट निकल जाती है, या उसे रगड़ करनी पड़ती है। पहली स्थिति को अघोष करते हैं, क्योंकि संघर्ष या रगड़ न होने से घोष नहीं होता। स्वरों का फुसफुसाहट वाला रूप भी अघोष होता है, और अघोष वाले व्यंजन ऊपर बताए जा चुके हैं। कान बन्द कर और गले पर हथेली रखकर या लैरिंगोस्कोप की सहायता से इन वर्णों का घोष वर्णों से भेद स्पष्ट समझा जा सकता है।

अघोषीकरण—उच्चारण की सुविधा के लिए घोष वर्णों को अघोष बना देने की प्रवृत्ति, जैसे तादाद को तादात, अदद को अदत कर देना। यह ध्वनि-परिवर्तन का एक रूप है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

अजमेरी—इस उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 463161 है जो सबकी सब पश्चिमोत्तर भारत में है, केवल 1 व्यक्ति मध्य भारत में रहता है।

अदकुरी—इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 603 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

अदेरिनी—इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल संख्या 24 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

अननुरूपता—दो समान या अनुरूप या सवर्ण व्यंजनों के पास-पास रहने पर एक का असमान हो जाना; इसे विषयीकरण या असावर्ण्य या अननुरूपता कहते हैं। पिछले व्यंजन के बदलने पर पूर्व या पुरोगामी और पहले व्यंजन के बदलने पर 'पर' या पश्च ये दो भेद हो जाते हैं। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

अनर्गल भाषा—प्राविधिक और कठिन शब्दों का अथवा विज्ञान या शास्त्र विशेष

के दुर्बोध शब्दों का प्रचुर प्रयोग करने वाली भाषा। इसे अंग्रेजी में 'जार्गन' कहते हैं। सामान्य जनता के लिए यह निरर्थक या अनर्गल होती है। अनर्गल भाषा (जार्गन) नाम ऐसी शैली का घृणात्मक वाचक है। विशेष दे० विशिष्ट भाषा।

अनल—भारत की इस बोली या उपभाषा को बोलने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या 3239 है और यह भारत के पूर्वी भाग में बोली जाती है।

अनागमी—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा को बोलने वालों की संख्या 28678 है और यह भारत के पूर्वी भाग में बोली जाती है।

अनुकरणमूलकतावाद—अरस्तू के अनुसार मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है और कलाओं की उत्पत्ति अनुकरण से ही हुई है। इसी आधार पर कुछ भाषा-वैज्ञानिकों की धारणा है कि भाषा का जन्म भी अनुकरणमूलक ध्वनियों के सहारे हुआ। पशुओं और पक्षियों की ध्वनियों के अनुसार मनुष्य ने उनको वैसे ही नाम दे दिए जैसे कुहू-कुहू करने वाली कोयल आदि। परन्तु इस सिद्धान्त से एक तो भाषा के थोड़े से शब्दों के जन्म की समस्या का समाधान होता है, दूसरे यह सिद्धान्त मनुष्य को पशु-पक्षियों से भी गया-बीता मान लेता है। इसी से उपहास में मैक्समूलर ने इसे कुत्ते की आवाज के अनुसार 'बाउ-बाउ'-वाद नाम दिया है। विशेष दे० भाषोत्पत्ति।

अनुदात्त—स्वरों का एक बाह्य प्रयत्न। तालु आदि स्थानों में अधोभाग में निष्पन्न होने वाले स्वर को अनुदात्त कहते हैं। दे० पाणिनिसूत्र "नीचैरनुदात्तः" (1/2/30)। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

अनुनासिक—मुख सहित नासिका से उच्चरित होने वाले वर्ण को अनुनासिक कहते हैं। दे० पाणिनिसूत्र 'मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः' (1/1/8)। ङ्, ञ्, ण्, न् और म् पुराने अनुनासिक व्यंजन हैं। हिन्दी में न्ह, म्ह, भी अनुनासिक संयुक्ताक्षर हैं। इन सब व्यंजनों को यथास्थान देखिए।

अनुनासिक स्वर—साहित्यिक हिन्दी के सभी स्वरों की संख्या उनके अनुनासिक भी हो जाने से दुगुनी हो जाती है। बोलियों के जपित स्वरों और उदासीन अ को छोड़ अन्य स्वरों का भी प्रायः अनुनासिक प्रयोग होता है। बाबू श्यामसुन्दर दास के मत से हिन्दी की बोलियों में बुंदेली अधिक अनुनासिक-बहुला है। इन अनुनासिक स्वरों के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है और इस नाते इनका अननुनासिक स्वरों से अन्तर भी हो जाता है, वह यह कि जिस प्रकार मूलस्वर शब्दों में किसी भी स्थान पर आ सकते हैं, ये अनुनासिक स्वर शब्दों में प्रत्येक स्थान पर नहीं आते।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में इन दोनों को एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न मानना चाहिए, क्योंकि इस भेद के कारण शब्द भेद या अर्थ-भेद या दोनों ही भेद हो सकते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में उच्चारण स्थान तो वही रहता है, जो अननुनासिक स्वरों का, परन्तु भेद यही है कि कोमल तालु और कौआ कुछ नीचे झुक जाते हैं, जिससे हवा मुख के अतिरिक्त नासिका विवर में भी पहुँच जाती है। उसका कुछ भाग नासिक-विवर में से गूँजकर निकलने के कारण उस स्वर में अनुनासिकता आ

जाती है। देवनागरी में इस अनुनासिक को प्रकट करने के लिए अर्द्धचन्द्र बिन्दु का प्रयोग होता है, परन्तु प्रेस की असुविधा के कारण अधिकांश ग्रन्थों में अनुस्वार के बिन्दु का ही प्रयोग होता है, अर्द्धचन्द्र नहीं लिखा जाता। इसी सुविधा के कारण अब यही प्रकार सर्वमान्य हो चला है, अन्यथा नियमानुसार में, हैं, मैं आदि के सभी अनुनासिक केवल बिन्दु से नहीं बल्कि अर्द्धचन्द्र और बिन्दु से लिखे जाने चाहिए।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के हिन्दी भाषा का इतिहास से साहित्यिक हिन्दी तथा बोलियों में प्रयुक्त अनुनासिक स्वरों के कुछ उदाहरण साभार नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं :

साहित्यिक हिन्दी में :

अं	:	अंगरखा, हंसी, गंवार।
आं	:	आंसू, बांस, सांचा।
ओं	:	सोंठ, जानवरों, कोसों।
उं	:	घुंघची, बुंदेली।
ऊं	:	ऊंघना, सूंघता, गेहूं।
ईं	:	ईंगुर, सींचना, आईं।
इं	:	बिंदिया, सिंघाड़ा, धनिया।
एं	:	गेंद, बातें, में।

बोलियो में :

औं(1)	:	ब्रज—लौं, सौं।
औं(2)	:	ब्रज—भौंह, हौं।
ओं	:	अवधी—गोंठिबा (गांठ में बाधूंगा)।
एं(1)	:	अवधी—एंडुआ (सर पर मटकी या घड़े के नीचे रखने की रस्सी का गोल घेरा), घेंटुआ (गला)।
एं(2)	:	ब्रज—तें।
एं(3)	:	ब्रज—तें, में।

अनुनासिकीकरण—सामान्य ध्वनियों को अनुनासिक कर देने की प्रवृत्ति। यह ध्वनि-परिवर्तन का एक रूप है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

अनुरूपता—दो असमान या अननुरूप या असवर्ण व्यंजनों के पास-पास रहने पर एक का दूसरे के समान हो जाना। पिछले व्यंजन के बदलने पर पूर्व या पुरोगामी और पहले व्यंजन के बदलने पर पश्च या पर ये दो भेद हो जाते हैं। परस्पर-प्रभाव से दोनों के बदलने या तीसरे व्यंजन के आ जाने से एक तीसरा भेद और हो जाता है। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

अन्य ध्वनि नियम—ग्रिम, वर्नर, ग्रासमान और तालव्य (दे० यथा०) इन चार प्रधान ध्वनि-नियमों के बाद भी कुछ अपरिगणित ध्वनि-नियम शेष रह जाते हैं, जिसका भाषा शास्त्री अन्य-नियमों में वर्गीकरण करते हैं। इनमें से एक मूर्धन्यभाव

(दे० यथा०) का नियम है। गाइल्स ने अपने 'मैनुअल ऑफ कम्पैरेटिव फिलोलौजी' में पृष्ठ 51-52 पर स्वनंतकरण या घोषीकरण नियम का उल्लेख किया है। इसके उदाहरण मकर का मगर, प्रकाश का परगास, एकादश का इगारह आदि हैं (विशेष दे० घोषीकरण, ध्वनि-परिवर्तन)। एक ग्रीक नियम नामक ध्वनि नियम है, जिसके अनुसार स् ग्रीक ह् हो जाता है और फिर लुप्त हो जाता है जैसे जेनेसौस-जेनेहोस-जेनेओस। एक लैटिन नियम नामक ध्वनि नियम भी है, जिसमें उपर्युक्त मूल भारोपीय स् का र् हो जाता है। संस्कृत स् का फारसी ह् बना देने वाला भी एक नियम है, जिससे सिन्धु, सप्त, सर्व, सम से क्रमशः हिन्द, हफ्त, हर और हम बन जाते हैं। इसी प्रकार संस्कृत ज का फारसी में ज़ हो जाता है जातः—ज़ादह (शाहज़ादह में) आदि। फिर संस्कृत से म० भा० आ० और आ० भा० आ० में ध्वनि विकास के अनेक नियम हैं। संस्कृत 'व' का 'ब' और 'य' का 'ज' हो जाना एक इतनी सामान्य बात है कि दर्जनों उदाहरण एकत्र किए जा सकते हैं।

अपभाषा—बहुधा रूढ़िगत धार्मिक आदि शब्दावली का प्रचुर प्रयोग करने वाली भाषा। अपभाषा या कल्पित वर्गीय भाषा (Kant) शब्द सामान्यतः उपहास और घृणा के लिए प्रयुक्त किया जाता है। विशेष दे० विशिष्ट भाषा।

अपभ्रंश ध्वनिसमूह—पाली और प्राकृत की ध्वनियों में अपभ्रंश-काल में विशेष अन्तर नहीं आया। भाषारहस्यकार के अनुसार शौरसेनी अपभ्रंश की ध्वनियाँ प्रायः निम्नलिखित थीं—

स्वर—अ (1), अ (2), आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, औ

व्यंजन—क, ख, ग, घ, ङ
च, छ, ज, झ, ञ
ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़
त, थ, द, ध, न, न्ह
प, फ, ब, भ, म, म्ह
य, र, ल, व, श, ष, स, ह।

विशेष दे० वैदिक ध्वनिसमह, संस्कृत ध्वनिसमूह, पाली ध्वनिसमूह।

अपश्रुति—बल या स्वराघात के द्वारा केवल स्वरों के परिवर्तन से ही (व्यंजनों के यथावत् रहते हुए ही) नए-नए अनेक शब्द बनाना। हिन्दी में यह नाम डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने दिया है, अंग्रजी में इसे एब्लौट कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन, अक्षरावस्थान।

अपुंगनंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 15 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

अप्रान—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

अफ्रीका-खंड—विश्व की भाषाओं के इस खंड में मुख्यतः ये पाँच परिवार आते हैं : (1) बुशमैन परिवार, (2) बंटू परिवार, (3) सूडान परिवार, (4) हैमेटिक या हामी परिवार और (5) सैमेटिक या सामी परिवार। परिवार यथा० देखिए।

अबोर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या 2167 है। यह पूर्व भारत में बोली जाती है।

अभिकाकल—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में एपीग्लौटिस और हिन्दी में स्वरयंत्रमुख्यकरण या अभिकाकल कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

अभिश्रुति—अपिनिहिति या समस्वरागम के कारण आए हुए अक्षरों का भाषा की प्रकृति के कारण परिवर्तन। उसे अंग्रेजी में अमलौट कहते हैं। भाषा विज्ञान को यह शब्द ग्रिम महाशय ने दिया है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

अमेरिका खंड—उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका की भाषाओं को, यद्यपि उनका अध्ययन सम्यक् रूप से नहीं हुआ है, एक अलग भाषा-खंड में रख दिया जाता है। सामग्री के अभाव में इन भाषाओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण संभव नहीं है। कुछ विद्वान भौगोलिक आधार पर उत्तरी, मध्य और दक्षिणी तीन वर्गों में बांटकर इन भाषाओं की चर्चा करते हैं। अन्य लोग यों ही उन्हें दो दर्जन के लगभग विभागों में बांट देते हैं। इस खंड में प्रायः 400 भाषाएँ हैं। ये सभी प्रश्लिष्ट योगात्मक (दे० यथा०) या बहुसंश्लेषणात्मक हैं। शब्दों की प्रधान ध्वनि को जोड़ वाक्य-रचना का अनूठा उदाहरण चेरोकी का 'नाधोलिनिन' (हमारे पास नाव लाओ) बहुत प्रसिद्ध हो गया है। कुछ भाषाओं में तो केवल वाक्य-शब्द ही प्रयुक्त होते हैं; अलग शब्द होते ही नहीं। लिपि केवल मय और नहुअत्ल भाषाओं में है। पहले रज्जु लिपि भी चलती थी। कुछ भाषाओं में पत्थर, घोंघों, चमड़े आदि पर बने चित्रों की चित्रलिपि का भी प्रयोग होता था, पर अब उन लिपियों का पढ़ा जाना संभव नहीं है। मय भाषा ही कुछ साहित्यिक भाषा है। पादरियों ने कुइचुआ, गुअर्नी आदि कुछ भाषाओं को प्रचार का माध्यम बनाया था। इन भाषाओं के बोलने वालों की संख्या दिन-दिन कम होती जा रही है। कुछ स्थानों पर अचंभे की बात यह है कि पुरुष एक भाषा बोलते हैं, स्त्रियां दूसरी; यद्यपि वे एक दूसरे की भाषा समझते हैं और दोनों भाषाएँ एक-दूसरे से प्रभावित हैं।

मध्य अमेरिका की भाषाएँ अभी तक बिलकुल अवर्गीकृत हैं। उनमें एक क्यूबा वर्ग ही प्रसिद्ध है। डा० भोलानाथ तिवारी के अनुसार उत्तरी अमेरिका में प्रधान वर्ग निम्न हैं : एस्किमो (ग्रीनलैंड, लेब्राडोर में), अथबस्कन (पश्चिमोत्तर कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में), अलगोनकिन (हडसन खाड़ी और संयुक्तराज्य में, जिसमें—क्री, मिकमाक, मोहिकन आदि प्रमुख बोलियां हैं और एक प्रधान भाषा सेंटलारेंट नदी के किनारे बोली जाने वाली इरोक्वायस भाषा है), मेक्सिकन (मेक्सिको में, जिसमें नहुअत्लएँ आधुनिक अज्तेक, सोनोरा और शोशोन भाषाएँ हैं), और मय (जिसमें क्विच, हुआस्तेका

आदि भाषायें हैं)। चेरोकी एक पृथक् अपलाशन वर्ग (फ्लोरिडा के आस-पास) में आती है। उत्तरी अमेरिका के अन्य वर्ग डकोटा, पानी, कोलोशे, पुब्लो आदि विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

दक्षिणी अमेरिका में निम्न वर्ग हैं : करीब, जिसमें अरुक भी आती है (पनामा के पूर्व); पेरुवियन, जिसमें कुईचुरा और अपमारा आदि हैं; अरौकनियन, जिसमें चिली की बोलियाँ हैं; तुपी गुअर्नी (लाप्लाटा के आस-पास); और अंतिम वर्ग में तेरा डेल फ्यूगो की भाषाएँ आती हैं।

अयोगात्मक भाषा—यह भाषाओं का एक आकृतिमूलक भेद है। इस प्रकार की भाषाओं में प्रत्येक शब्द की अपनी स्वतंत्र सत्ता रहती है और अन्य शब्दों के कारण उसमें कुछ विकार नहीं होता। डा० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार इनमें प्रकृति-प्रत्यय के योग की कल्पना नहीं हो सकती। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार इनमें प्रत्येक शब्द की अलग-अलग, संबंध तत्व या अर्थतत्व को व्यक्त करने की शक्ति होती है। इस प्रकार की भाषाओं में डा० गुणे के शब्दों में किसी विशेष गुण के कारण कोई शब्द क्रिया, संज्ञा या विशेषण नहीं होता, बल्कि वाक्य में अपनी स्थिति विशेष के अनुसार उसे वह पद प्राप्त होता है। चीनी, तिब्बती, बर्मी, स्यामी, अनामी, मलय और सूडानी आदि भाषाएँ इस प्रकार की भाषाओं का उदाहरण हैं और सर्वोत्तम उदाहरण चीनी भाषा है। इन भाषाओं को धातु प्रधान भाषा इसलिए कहा गया है कि जिस प्रकार अन्य भाषाओं में धातुएँ होती हैं इनमें उसी प्रकार सरल (या मिश्र) शब्द होते हैं।

इन भाषाओं की शब्द रचना सब भाषाओं की अपेक्षा अत्यंत सरल है। केवल प्रकृति से ही सब काम चलाया जाता है, प्रत्यय तो होते ही नहीं। विभक्तियों के भी कोई परिवर्तन नहीं होते, और प्रत्येक पद एक अव्यय की भांति यथावत् बना रहता है। इसीलिए डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में इनके व्याकरण का विषय केवल वाक्य रचना तक परिमित रहता है। जैसे चीनी भाषा में यह नियम है कि कर्त्ता सदा वाक्य के आरंभ में आता है। अधिकरण, संप्रदान, करण आदि कारकों का भाव या तो विशेष स्वतंत्र शब्दों की सहायता से या वाक्य में शब्द के स्थान विशेष से प्रतीत होता है। भाषारहस्यकार के अनुसार वाक्यरचना की दृष्टि से इनमें तीन बातों का विचार हो सकता है—शब्दक्रम, निपात और स्वर। ऐसी सभी भाषाओं में व्याकरण संबंध या तो क्रम से सूचित होता है या निपातों की सहायता से। सूडानी भाषाएँ पूर्णतः स्थान प्रधान हैं और उनमें निपातों का अभाव सा है। चीनी में निपात कुछ अधिक होने पर भी स्थान की प्रधानता रहती है। तिब्बती, बर्मी आदि निपात प्रधान भाषाएँ हैं और इनमें वाक्य का अन्वय स्थान पर नहीं, निपातों पर निर्भर रहता है। पर स्वर या लहजे की विशेषता प्रत्येक भाषा में रहती है और वह एक बड़ा आवश्यक अंग होता है। इसी से अनामी जैसी भाषाओं का रोमन लिपि में लिखा जाना कठिन है। लहजे का चीनी में इतना महत्व है कि 'ब ब ब ब' इन चार वर्णों

को ही विभिन्न लहजों से पढ़ने से इसका अर्थ डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार होता है—तीन महिलाओं ने राजा के कृपापात्र के कान उमेठे। डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में लहजे के भेद से समानाकार पर अनेकार्थक शब्दों के भिन्न-भिन्न स्थलों में अर्थ के निर्णय करने में बड़ी सहायता मिलती है। क्योंकि यह स्मरण रखना चाहिए कि इन भाषाओं में यह एक साधारण बात है कि वर्णानुपूर्वी की दृष्टि से एक ही शब्द अनेक अर्थ रखता है। उदाहरणार्थ चीनी भाषा में 'तो' शब्द के पहुँचना, टांपना, झंडा, धान्य, रास्ता आदि अनेक अर्थ हैं। ये भाषाएँ विशेषतः एकाक्षर होती हैं। यद्यपि मलय जैसी अनेकाक्षर भाषा भी इसी वर्ग में आती है।

यदि हिन्दी से ऐसी भाषाओं का उदाहरण दिया जाए, तो डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार इस तरह के शब्द होंगे—गोविन्द राम को खिलाता है, राम गोविन्द को खिलाता है। इन दोनों वाक्यों में प्रत्येक शब्द की अलग-अलग स्वतंत्र सत्ता है और उनका परस्पर संबंध पदक्रम से ही जाना जाता है। गोविन्द और राम की उलट पलट से अर्थ पलट गया, यद्यपि पदों में कोई अंतर नहीं पड़ा। इसी प्रकार चीनी में—

वो=मैं; नी=तुम

1. वो केय नी छेन=मैं तुम्हें धन देता हूं।
   नी केय वो छेन=तुम मुझे धन देते हो।
2. माऊ केय पाई ना शु लय ल=माऊ पाई के लिए किताब लाता है।
   पाई केय माऊ ना शु लय ल=पाई माऊ के लिए किताब लाता है।

अरे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 732 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

अर्थ—ब्रिटिश विश्वकोष के अनुसार सामान्य रूप से कुछ बोध कराने वाले किसी पदार्थ या क्रिया के विषय में यह कहा जा सकता है कि इसमें कुछ अर्थ है। विज्ञान-वेत्ताओं द्वारा अपेक्षित अर्थ कवियों और कलाकारों के अर्थ से भिन्न होता है, वर्ड्स-वर्थ के लिए प्रत्येक गुलाब का फूल जो अर्थ रखता था, जनसाधारण के निकट भी उस अर्थ (या अर्थों) की प्रतीति संभव नहीं है। कात्यायन और पतंजलि के अनुसार समस्त शब्द स्व-स्व अर्थ बोधन के लिए होते हैं, जिस अर्थ के बोध के लिए जिस शब्द का प्रयोग होता है, वही उस शब्द का अर्थ है। पतंजलि के टीकाकार कैयट और नागेश के अनुसार शब्द जिस प्रवृत्ति निमित्त से (अर्थात् जिस वाच्य अर्थ के बोधन के लिए) प्रयोग को प्राप्त होते हैं, वही प्रवृत्ति निमित्त रूप अर्थ (वाच्य अर्थ) उन शब्दों का अर्थ है। भर्तृहरि के अनुसार जिस शब्द के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वह उसका अर्थ है। न्यायमंजरीकार जयंत भी जिस शब्द से जिस अर्थ का संकेत किया जाए या जिस शब्द से जिस अर्थ की प्रतीति हो, उसे उस शब्द का अर्थ बताते हैं। कुमारिल भट्ट के अनुसार जो अर्थ जिस शब्द का अनुगमन करता है, वही उसका अर्थ होता है। हुस्सेर्ल और गेसेर के अनुसार शब्द की स्वभावानुकूल अभिव्यक्ति ही अर्थ है। ब्रिटिश विश्वकोष भावों और विचारों का सर्वस्व अर्थ को

ही मानता है। अर्थ का उद्भव विचारों द्वारा ही होता है। पतंजलि के शब्दों में भी अर्थज्ञान शब्द के द्वारा ही होता है (विशेष दे० शब्दार्थ संबंध)।

पतंजलि के अनुसार अर्थ मुख्यतः चार प्रकार का होता है—1. जाति वाचक (गौ आदि), 2. गुण वाचक (शुक्ल, पीत आदि), 3. क्रिया वाचक (आना, जाना आदि) और 4. यथेच्छा शब्दों का वाचक (अर्थात् व्यक्ति विशिष्ट द्वारा रखे गए नामों का बोधक)।

डा० कपिलदेव द्विवेदी ने ओग्डेन और रिचर्ड्स द्वारा अपने 'मीनिंग ऑफ मीनिंग' ग्रंथ में किए गए अर्थ के 16 लक्षणों का एकत्र उल्लेख किया है,[1] उन्हें साभार नीचे अविकल उद्धृत किया जाता है :

(क)

1. तात्विक भाग अर्थ है।
2. अन्य वस्तुओं के साथ एक अनुपम अनिर्वचनीय संबंध अर्थ है।

(ख)

3. शब्दकोष में एक शब्द के साथ जोड़े गए अन्य शब्द अर्थ हैं।
4. शब्द का लक्ष्य अर्थ है।
5. सारांश अर्थ है।
6. वस्तुरूप में निरूपित क्रियात्मकता अर्थ है।
7. (क) अभिगत तथ्य अर्थ है।
   (ख) संकल्प अर्थ है।
8. शास्त्रीय प्रक्रिया में निर्दिष्ट भाव अर्थ है।
9. हमारे भावी अनुमतों से सिद्ध किसी वस्तु का क्रियात्मक परिणाम अर्थ है।
10. किसी वक्तव्य में वाक्य या लक्ष्य रूप में निहित विचारात्मक परिणाम अर्थ है।
11. किसी वस्तु के द्वारा उद्बोधित मनोभाव अर्थ है।

(ग)

12. किसी निर्धारित संबंध के द्वारा किसी संकेत से वस्तुतः सम्बद्ध पदार्थ अर्थ है।
13. (क) किसी प्रेरणा के स्मरणोद्बोधक परिणाम अर्थ है। संप्राप्त संबंध अर्थ है।

(ख) कोई अन्य घटना, जिससे अन्य घटना के स्मरणोद्बोधक परिणाम सम्बद्ध हैं, अर्थ है।

(ग) किसी संकेत का अभिमत पदार्थ अर्थ है।

(घ) जिस अर्थ को कोई बात अभिव्यक्त करती है, वह अर्थ है।

(संकेतों के विषय में—)

वह वस्तु जिसको संकेत का प्रयोक्ता वस्तुतः संकेतित करता है अर्थ है।

---

1. अर्थ-विज्ञान और व्याकरण-दर्शन, पृष्ठ 96-97।

14. संकेतों के प्रयोक्ता को जिसका निर्देश करना चाहिए, वह अर्थ है।

15. संकेतों के प्रयोक्ता का जो स्वयं अभिगत भाव है, वह अर्थ है।

16. (क) व्यक्ति संकेत के द्वारा जिस अर्थ को समझाता है, वह अर्थ है।

(ख) व्यक्ति संकेत के द्वारा जिस अर्थ की अपने हृदय में भावना करता है, वह अर्थ है।

(ग) व्यक्ति संकेत के द्वारा जिस भाव को वक्ता का अभिप्रेत भाव समझता है, वह अर्थ है।

भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीय में अर्थ के विषय में विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। आकार आदि का बोधन शब्द का विषय न होने से वह निराकार है। जाति विशेष के आकारों का बोध भी शब्द कराता है, अतः कुछ आचार्यों के मत से अर्थ साकार भी है। वह विकल्प और समुच्चय रहित समवाद है। वह असत्य अर्थात् अनित्य और संसर्ग रूप है। वह सत्य भी हो तो भी असत्य से सम्बद्ध होने के कारण असत्य सा सिद्ध होता है अर्थात् वह असत्याभास सत्य है। शब्द और अर्थ में अभिन्नता होती है और यह एकात्मता अभिजन्यत्व (वाच्यत्व) या अभ्यास से बोधित होती है। शब्दांश और अर्थांश में अर्थ अंश की प्रधानता होती है। शब्दों की शक्ति के अधीन न रहने के कारण अर्थ असर्वशक्तिमान् है। अर्थ परिवर्तनशील है और उसमें कालान्तर में लोक व्यवहार के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। शब्द के द्वारा नियत शक्ति का बोध कराए जाने के कारण कुछ विद्वान् अर्थ को सर्वशक्तिमान् भी मानते हैं। अर्थ बाह्य भी होता है और श्रोता की बुद्धि के अनुसार बौद्धिक भी। वह अनिश्चित होता है। बहुत कुछ वक्ता की इच्छा पर निर्भर रहता है। अर्थ अनुमेय है और संकेत से भी उसका ज्ञान होता है। वह काल्पनिक भी है और व्यक्ति की कल्पना पर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है।

भर्तृहरि के टीकाकार पुण्यराज ने उनके उक्त मतों के स्पष्टीकरण के बाद अर्थ के 18 प्रकार और निरूपित किए हैं। डा० कपिलदेव द्विवेदी ने इनकी भी सम्यक् विवेचना की है। 1. अर्थ वस्तुमात्र है, बाह्य अर्थ प्रतिपादन का विषय नहीं है, 2. अभिधेय—प्रतिपाद्य होने पर बाह्य अर्थ अभिधेय है। 3. अभिधेय दो प्रकार का है शास्त्रीय और लौकिक। वेद-शास्त्रादि द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ शास्त्रीय है। 4. लौकिक अर्थ अखण्ड होता है। 5. विशिष्टावग्रह संप्रत्यय हेतु—कंस को मारता है, में भूतकाल की क्रिया का वर्तमानवत् काल्पनिक व्यवहार इसका उदाहरण है। 6. वास्तविक–उक्त (5) के विपरीत अर्थ, जो लोक व्यवहार में वैसा ही विद्यमान है। 7. मुख्य-अभिधा द्वारा बोधित अर्थ। 8. परिकल्पितरूप विपर्यास—लक्ष्यार्थ या व्यंजित अर्थ। 9. व्यपदेश्य—जाति या द्रव्य आदि का वर्णन योग्य अर्थ। 10. अव्यपदेश्य—जिसका उक्त रूप में तात्विक वर्णन नहीं हो सकता। 11. सत्त्वभावापन्न—बाह्य अर्थ का बोध कराने वाला दृश्य रूप अर्थ। 12. असत्त्वभूत—उक्त के विपरीत, असत् वस्तु का बोध कराने वाला अर्थ। 13. स्थिर लक्षण—स्थिर रूप से अर्थ बोध कराने

वाला। 14. विवक्षा प्रापित संनिधान—उक्त के विपरीत जहाँ अर्थ विवक्षा पर निर्भर रहता है। 15. अभिधीयमान—प्रस्तुत रूप से वर्णित अर्थ। 16. प्रतीयमान—प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त व्यंजना या ध्वनि से प्रतीत होने वाला अर्थ। 17. अभिसंहित वाच्य-अर्थ—जैसे गौ शब्द से जाति या व्यक्ति रूप में ज्ञात होने वाला अर्थ। 18. नान्तरीयक—अविनाभाव से रहने वाला अर्थ, जैसे गौ शब्द से जो शुक्ल, नील, पीत आदि रंगों का भी बोध होता है, वह गौ शब्द में अविनाभाव से रहता है। इसी से उसे नान्तरीयक अर्थ कहते हैं।

अर्थ-तत्व—वेन्द्रिये के अनुसार[1] प्रत्येक सार्थक शब्द में उसका कुछ तत्वार्थ, भाव या विचार निहित रहता है और शब्द का सर्वस्व उसी सार पर आधारित रहता है। उस मूलभूत अर्थ को अंग्रेजी में सीमेंटीम और हिन्दी में अर्थतत्व या अर्थमात्र (भाषा-रहस्यकार के अनुसार) कहते हैं। प्रत्येक शब्द का अर्थतत्व निरन्तर विकसित होता रहता है, स्थायी नहीं रहता। अर्थ विचार (दे०यथा०) में इसी सूक्ष्म अर्थतत्व के परिवर्तन या विकास और उसके कारण आदि की चर्चा की जाती है। विशेष दे० अर्थ विचार।

अर्थनिर्णय—शब्द के एक ही अर्थ में रूढ़ न होने से अर्थ का निर्णय करने के लिए कुछ विशेष उपाय अपनाने पड़ते हैं, जो अर्थनिर्णय के साधन कहे जाते हैं। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के अनुसार शब्द शक्ति ही प्रतिभा के अनुरूप भिन्न होकर लोक व्यवहार कराती है।[2] प्रत्येक पदार्थ के भिन्न-भिन्न नाम मानवीय प्रतिभा का फल हैं। ये नाम ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार कार्य के अनुरूप पड़ते हैं (जैसे रोने या रुलाने का कारण रुद्र)। एक अर्थ के लिए अनेक नाम भी चलते हैं और विभिन्न गुणों के कारण भी नाना नाम पड़ जाते हैं। यास्क ने सभी नामों को धातुग माना है। इस सिद्धान्त पर चार आक्षेप किए जाते हैं—(1) वैसा कार्य करने वाले सभी पदार्थों का वह नाम पड़ जाएगा, जैसे भाला, सुई आदि सभी को छेद करने वाला होने के कारण तृण कहा जाएगा; (2) एक नाम जितनी क्रियाओं से सम्बद्ध होगा, उसके उतने ही नाम पड़ेंगे; (3) पहले नाम कैसे पड़े, जैसे विस्तार के कारण पृथ्वी शब्द बना, पर किसने कब उसका विस्तार किया; (4) भावी क्रिया के आधार पर कर्त्ता की स्थिति कैसे मानी जा सकती है? यास्क इन सब आक्षेपों का उत्तर देते हुए कहते हैं[3] कि लोक व्यवहार में न तो एक-सा काम करने वाले सभी व्यक्तियों को वह नाम दिया जाता है (जैसे सभी घूमने वाले परिव्राजक नहीं होते), न सभी क्रियाओं के आधार पर ही नाम रखे जाते हैं (सभी व्यापक अर्थ वाले पदार्थ पृथ्वी नहीं है); और लोक में भावी क्रियाओं के आधार पर भी नाम रखे जाते हैं। ये नाम

1. वेन्द्रिये, लैंग्वेज अंग्रेजी अनुवाद, पृष्ठ 74।
2. वाक्यपदीय 1/11/8
3. विशेष दे० अर्थ-विज्ञान और व्याकरण-दर्शन, पृष्ठ 140-159।

विशेष क्रिया के आधार पर पड़ते हैं, पर पीछे योगरूढ़ हो जाते हैं। समान कार्य के कारण सभी वस्तुओं का वही नाम नहीं पड़ता, न यह निश्चित कहा जा सकता है कि किस क्रिया के आधार पर पड़ेगा। एक वस्तु के नाना क्रियाओं के कारण नाना नाम नहीं पड़ते। एक बार नाम पड़ जाने पर पीछे सन्देह होने पर भी बने रहते हैं। इस प्रकार नाम पड़ने में लोक व्यवहार और परम्परा का विशेष हाथ रहता है।

वैयाकरणों के अनुसार लाघवार्थ (संक्षेप के लिए) नाम रखे जाते हैं, और बहुत कुछ वक्ता की इच्छा पर निर्भर है। वक्ता की दृष्टि में जो अवस्था या गुण आता है, तदनुसार नाम पड़ते हैं, परन्तु ये नाम साधारणतः मुख्य शर्तों के आधार पर ही पड़ते हैं। परम्परा भी बहुत कुछ योग देती है। व्यक्तियों के अधिकांश नाम माता-पिता या गोत्र के नामों में अपत्यप्रत्यय लगाकर बनाए जाते थे। जन्म के स्थान, प्रान्त, नक्षत्र आदि के अनुसार भी नाम पड़ते हैं। देवताओं आदि के अनेक नाम पौराणिक कथाओं के आधार पर भी पड़े हैं। किसी सिद्धान्त विशेष के प्रस्थापक का नाम उस सिद्धान्त से भी गढ़ा जाता है। कुछ नाम चिढ़कर भी रखे जाते हैं और उपहास के लिए प्रयुक्त होते हैं। लेखक की कृति को लेखक का ही नाम दे देते हैं। कथानक के नायक-नायिका के नाम से उपन्यास-कहानी के नाम रखे जाते हैं। वृक्षों के फलों और अन्नों के पौदों को भी वही नाम दे देते हैं। निकटस्थ वस्तु से भी नाम पर प्रभाव पड़ता है। एक भाग के लिए भी सम्पूर्ण नाम चलता है और सम्पूर्ण के लिए एक भाग का नाम। लक्ष्य के लिए लक्षण का प्रयोग होता है। इस प्रकार आवश्यकतानुसार नाम रखे जाते रहते हैं, और अनुपयोगी शब्द अप्रयुक्त होकर लुप्त होते रहते हैं।

लोक व्यवहार में एक शब्द अनेक अर्थों में भी प्रयुक्त होता है। ऐसे अवसर पर अभिप्रेत अर्थ का निश्चय करने के लिए जो साधन अपनाए जाते हैं, वैयाकरणों ने उन साधनों को एकत्र किया है। लाक्षणिक और व्यंग्य अर्थों की प्रतीति के लिए तो लक्षणा और व्यंजना की सहायता ली जाती है, पर अभिधेय अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए अपनाए जाने वाले उपाय भर्तृहरि द्वारा गिनाए गए हैं, जिनको विश्वनाथ आदि साहित्यशास्त्रियों ने भी उद्धृत किया है: 1. **संयोग**, जैसे हरि शब्द नानार्थक है, पर सशंखचक्र हरि में विष्णु का द्योतक है; 2. **वियोग**, जैसे उक्त की ही भाँति अशंख-चक्र हरि; 3. **साहचर्य**, जैसे राम शब्द के नानार्थ हैं, पर राम-लक्ष्मण में दशरथ-पुत्र का बोध हो जाता है; 4. **विरोधिता**, जैसे कर्णार्जुन और रामार्जुन में अर्जुन शब्द से पहले में पार्थ का और दूसरे में कार्त्तवीर्य अर्जुन का बोध होता है; 5. **प्रयोजन**, जिस प्रयोजन (अर्थ) से सम्बोधन किया जाए; 6. **प्रकरण**, यास्क, पतंजलि और भर्तृहरि

1. संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः।
वाक्यपदीय 2/317-318

से लेकर ओग्डेन और रिचर्ड्स[1] तक सभी ने प्रकरण पर विशेष जोर डाला है और इसकी महत्ता स्पष्ट है; 7. **लिंग**, लिंग विशेष के कारण भी अर्थ निर्णय होता है, 'मकरध्वज कुपित हुआ' में मकराकार ध्वज के कुपित होने से नहीं बल्कि कामदेव का संकेत है; 8. **अन्य शब्द की समीपता**, जैसे जामदग्न्य राम से परशुराम का बोध होता है; 9. **सामर्थ्य**, मधु से कोयल मस्त हुई, में शहद में यह सामर्थ्य नहीं, बल्कि बसंत में है; 10. **औचित्य**, संगत अर्थ ही ग्रहण किया जाता है; 11. **देश**, गगन शब्द का अर्थ आकाश और कपूर है, पर गगन में चन्द्र शोभित है, में आकाश का ही बोध होता है; 12. **काल**, चित्रभानु का अर्थ आग और सूर्य है, दिन में तो यह सूर्य का अर्थ देगा परन्तु रात के समय के लिए प्रयुक्त होने पर आग का; 13. **व्यक्ति**, (लिंग) जैसे गौ शब्द संस्कृत में बैल-गाय दोनों के लिए चलता है, पर उसका निर्णय लिंगानुसार होता है; 14. **स्वर**, लहजे से भी अर्थ बदल जाता है। संस्कृत में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरों के परिवर्तन से समासगत परिवर्तन हो जाता है और उसके अर्थ में अन्तर आ जाता है।

उक्त उपायों के अतिरिक्त संस्कृत में स् ष् (जैसे सुसिक्तं० पूजार्थक होता है और सुषिक्तं भली भाँति सिक्त होने का अर्थ देता है) और ण् न् (जैसे प्रणायक= प्रणयनकर्त्ता और प्रनायक=नायक रहित) के भेद से भी अर्थ निर्णय होता है। अभिनय (इंगित आदि), वाक्य में प्रयोग और वक्ता की भावना, अन्वय ठीक करके, प्रकृति-प्रत्यय के विचार, दिए गए विशेष नियमों का पालन करके, पूर्व स्मृति, अन्य शब्दों के अध्याहार आदि द्वारा भी अर्थ निर्णय किया जाता है। वर्तमान भाषा-शास्त्री सामर्थ्य, औचित्य और प्रकरण (सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण) पर ही विशेष जोर देते हैं। इन सभी साधनों पर डा० कपिलदेव द्विवेदी ने अपने 'अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन' में विस्तृत प्रकाश डाला है, जो इस विषय के अध्ययन के लिए अनिवार्य रूप से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

अर्थविचार—भाषा विज्ञान की इस शाखा को हिन्दी में अर्थातिशय, अर्थविचार, अर्थविज्ञान, और शब्दार्थविज्ञान कहते हैं और अंग्रेजी में सीमेंटिक्स, सीमासिओलौजी और र्‌हीमैटोलौजी कहते हैं। इसके लिए अभी तक एक नाम निश्चित नहीं हुआ है। सी० के० ओग्डेन और आई० ए० रिचर्ड्स अपने ग्रन्थ 'मीनिंग ऑफ मीनिंग' में बताते हैं कि बच्चा शब्दात्मक प्रतीकों का प्रसंगानुसार वस्तु विशेष के अर्थ में प्रयोग देखकर जो अनुभव संचित करता है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सच्चा प्रतीक वही है, जो निर्दिष्ट वस्तु को निश्चित रूप में बता सके। बच्चा अपने निकट संपर्क में रहने वाले सम्बन्धियों तथा वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होने वाली ध्वनियों को ग्रहण कर लेता है, और यद्यपि उसे उन ध्वनियों के उच्चारण में कुछ समय लगता है, परन्तु इसके पहले ही वह पूछने पर बाबूजी, माताजी और दूध, गाय, कुत्ता आदि की ओर अंगुली उठा

1. दे० मीनिंग ऑफ मीनिंग।

देता है। इस सम्बन्ध में मैक्समूलर ने एक बड़े गम्भीर विवाद की चर्चा की है। लॉक, कौंडिलेक, डा० ब्रो और एडम स्मिथ का कहना है कि बच्चा सबसे पहले व्यक्तिवाचक नाम सीखता है और पिता जैसे किसी भी पुरुष को 'पापा' और माता जैसी किसी भी स्त्री को 'मामा' कहने लगता है। यही क्यों कोई भी अंग्रेज एक बड़ी नदी को देखकर उसे दूसरी टेम्स बताता है। मैक्समूलर भी इसी बात के पक्ष में है। लीबनीज आदि दूसरे विद्वानों का विचार है कि बच्चे सबसे पहले पौधा, पशु आदि जातिवाचक नाम प्रयुक्त करते हैं और सभी व्यक्तिवाचक नाम पहले जातिवाचक नाम रह चुके हैं। वस्तुतः सबसे पहले हम साधारण वस्तु से परिचित होते हैं और उसके द्वारा ही व्यक्तिगत पदार्थों तक पहुँचते हैं और उसके लिए नाम निश्चित करते हैं। प्रत्येक शब्द का अर्थ जीवन में अर्जित होने वाले अनुभव के आधार पर तदनुसार विस्तृत या संकुचित होता रहता है। देहाती लड़का पहले सेंठे या नेजे की कलम को ही कलम कहता है, पीछे होल्डर और फाउंटेन पेन को भी उसके अंतर्गत कर लेता है। व्युत्पत्तिशास्त्रियों (दे० व्युत्पत्तिशास्त्र) ने शब्दों के नामकरण के आधार तक पहुँचने की बहुत कोशिश की है, परन्तु उससे नामकरण के प्रश्न का पूरा समाधान नहीं हो सका है। वस्तुतः भाषा के आरम्भ में शब्दों के नामकरण का प्रश्न भाषा की उत्पत्ति के साथ बंधा है। भले ही पीछे चलकर गुणानुसार पदार्थों का नामकरण किया जाता हो, परन्तु आरम्भ में नामकरण गुणानुसार ही किया जाता हो, ऐसा बात नहीं है। न यही कहा जा सकता है कि आरम्भ में धातुओं के आधार पर वस्तुओं का नामकरण किया गया, क्योंकि भाषा की उत्पत्ति के साथ ही सबसे पहले नाम रखे गए हैं और धातुओं की खोज उसके विकास के बाद हुई है। निरुक्तकार यास्क ने कुछ शब्दों के नामकरण के बारे में मनोरंजक प्रश्न उठाए हैं। यदि पोरों वाला होने के कारण पहाड़ को पर्वत कहा गया, तो सबसे पहले ईख और बाँस का नाम पर्वत होना चाहिए था। चुभने (तृण-चुभना) के कारण घास को तृण कहा गया, तो भाले और सुई को सबसे पहले तृण कहना चाहिए था। प्रकाश करने वाला होने के कारण सूर्य के नाम भास्कर या प्रभाकर आदि ठीक हैं, परन्तु प्रकाश का नाम प्रभा या भा कैसे पड़ा ?

अर्थ अनुभवजन्य होता है। 'गाय लाओ' यह बात सुनकर चार पैर, पूँछ, सास्ना वाले पशु को लाया जाता देख छोटा बच्चा समझने लगता है कि गाय और लाओ का क्या अर्थ है। इस प्रक्रिया को संकेत ग्रहण कहते हैं, जो जाति, गुण द्रव्य और क्रिया में होता है। व्याकरण, कोष, आप्तवाक्य और व्यवहार इन चार उपायों से यह संकेत ग्रहण किया जाता है। परन्तु शब्द के अर्थ के इस प्रकार अनुभव जन्य होने के कारण यह आवश्यक नहीं है कि किन्हीं दो व्यक्तियों के मन में एक ही शब्द का वैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल एक ही अर्थ हो और कुछ भी अन्तर न हो। इसी कारण किसी शब्द के अर्थ की निश्चित सीमा निर्धारित कर सकना कठिन हो जाता है। एकार्थक शब्द के अनेकार्थक बन जाने में भी वही मनोवैज्ञानिक उलझन काम करती

है। सामान्यतः एकार्थक शब्दों का संकेत काफी निश्चित होता है और उसके ग्रहण में थोड़े से अनुभव की ही आवश्यकता होती है, पीछे कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु अनेकार्थक शब्दों का संकेत ग्रहण करने के लिए कुछ अन्य साधन अपनाने पड़ते हैं। साहित्यदर्पणकार के अनुसार वे साधन 12 हैं: संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, प्रकरण, चिन्ह, अन्य शब्द संनिधान, सामर्थ्य, औचिती, देश और काल।

जितना परिवर्तन ध्वनियों का होता है, उतना ही अर्थों का भी परिवर्तन होता रहता है। यद्यपि बहुत से अर्थ-परिवर्तनों को इकट्ठा किया गया है और उनका वर्गीकरण करने की पूरी चेष्टा की गई है, परन्तु अर्थ-परिवर्तन के नियमों में उतनी निश्चयात्मकता या ऐतिहासिकता नहीं पाई जाती, जितनी ध्वनि-परिवर्तन के नियमों में। इसी कारण भाषा-विज्ञान के आरम्भ में इस शास्त्र की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। डा० गुणे के अनुसार यह कह सकना सम्भव नहीं है कि प्रागैतिहासिक युग में अथवा ऐतिहासिक युग तक में किसी शब्द या शब्दों का क्या विशिष्ट अर्थ था। साथ ही पुराने और वर्तमान अर्थ के बीच सम्बन्ध-सूत्र स्थापित कर सकना भी असम्भव है। वैसे तो भारत में यास्क और यूनान में प्लेटो के समय से ही शब्द और उसमें निहित अर्थ के स्वाभाविक सम्बन्ध पर विचार होने लगा था और भारत में साहित्य-शास्त्रियों ने अभिधा, लक्षणा और व्यंजना नामक तीन शब्द शक्तियों का भी सम्यक् विवेचन किया था, परन्तु वस्तुतः 19वीं सदी के अन्त तक इसका वैज्ञानिक अध्ययन नहीं के बराबर था। वैसे तो पाल ने भी अपने ग्रन्थ[1] के एक अध्याय में इसकी चर्चा की थी, परन्तु सबसे पहले प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् ब्रील ने अर्थविचार का एक विस्तृत ग्रन्थ लिखा, जिसका अंग्रेजी में कुस्ट द्वारा किया गया अनुवाद उपलब्ध है। भारत में हेमंतकुमार ने बंगाली अर्थविचार पर काम किया है और डा० बाहरी ने हिन्दी अर्थविचार पर। डा० बाबूराम सक्सेना और डा० कपिलदेव द्विवेदी ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और डा० कपिलदेव द्विवेदी का अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

अर्थविचार पार्ट्रिज के अनुसार व्युत्पत्तिशास्त्रियों के बड़े काम की चीज है और शब्दप्रेमियों का बड़ा मनोरंजन करता है।[2] शब्दार्थ निर्णय में दर्शन और मनोविज्ञान की सहायता भी आवश्यक हो जाती है। श्रोताओं के ऊपर विशेष प्रभाव डालने वाले शब्दों के भावनात्मक महत्त्व पर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। कुछ विशेष प्रकार की ध्वनियों वाले शब्दों के संयोग से विशिष्ट लालित्यवाली पदावली की रचना भी होती है, जिसे साहित्यशास्त्री रसानुकूल रीति या वृत्ति की संज्ञा देते हैं। भाषा से मानवीय विज्ञान की दिन-दिन समृद्ध होने वाली सभी शाखाओं के विशिष्ट अर्थों की अभिव्यक्ति की माँग की जाती है, और वह यथासम्भव अपने दायित्व का

1. पाल, Prinzipien.
2. एरिक पार्ट्रिज, वर्ल्ड ऑफ वर्ड्स्, पृष्ठ 155।

पालन करती है[1]। इसी कारण अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है, और उसका पता लगाना कठिन हो जाता है।

अब कुछ शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों को लेते हुए हम आगे बढ़ेंगे। बिहार शब्द का अर्थ विचरण था। पाली में वह निवास-स्थान के बाहुल्य के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। पीछे वह एक प्रकार के स्थापत्य का निर्देशक पारिभाषिक शब्द बन गया। इस प्रकार के बिहारों की बहुलता के कारण ही पीछे चलकर एक प्रांत का ही नाम बिहार पड़ गया। गाँव के निवासियों को गंवार कहते थे, उनमें से अधिकांश के अपढ़ और असभ्य होने के कारण आगे चलकर यह शब्द असभ्य और अशिष्ट के लिए ही रूढ़ हो गया। संस्कृत वाटिका शब्द से बनने वाले बाड़ी या बारी शब्द का प्रयोग हिन्दी में उसी अर्थ में होता है, पर बंगला में वह घर का वाचक बन गया। डा० तारापोरवाला के अनुसार गुजराती में फारसी दरिया का अर्थ समुद्र और अंग्रेजी वेस्ट कोट का अर्थ अंगिया है। मृग शब्द पहले पशुसामान्य का वाचक था और इसी से मृगराज शेर का एक नाम था। आज मृग शब्द केवल हरिण का वाचक रह गया है। इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि अर्थ-परिवर्तन या अर्थ-विकास की दिशा एक ही नहीं है। कुछ शब्दों का अर्थ पहले संकुचित था, पीछे विस्तृत हो गया। इसके विपरीत कुछ शब्दों का विस्तृत अर्थ पीछे संकुचित हो गया।

डा० ब्रील ने भाषा के तीन बौद्धिक नियमों की कल्पना इन्हीं आधारों पर की है। वे हैं—1. विशेषीकरण नियम या अर्थविस्तार, 2. विभेदीकरणनियम या अर्थसंकोच 3. अर्थादेश।

1. अर्थविस्तार : टकर का कहना है कि विशुद्ध रूप में अर्थविस्तार होता ही नहीं, अर्थादेश मात्र होता है। परन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं कि अर्थविस्तार जैसी कोई चीज ही न हो। सबसे बढ़िया उदाहरण तेल शब्द का है। मूलतः तिलों के सार को तेल कहते थे, अब तो सरसों आदि सभी तिलहनों के सार को ही तेल नहीं कहते, बल्कि मूँगफली, मिट्टी, मछली और साँप-बिच्छू तक के तेल होते हैं। सावधानी से कुश तोड़ लाने वाला कुशल और वीणा बजाने में योग्य प्रवीण अब प्रत्येक बात में कुशल और प्रवीण हो गया है। संस्कृत कल्य और परश्व आगामी दिनों के ही द्योतक थे, पर हिन्दी कल और परसों बीते दिनों के लिए भी आते हैं। गाय को खोजने वाली गवेषना भी आज व्यापक हो गई है। गोष्ठ गायों के स्थान और गोयुगम् बैलों की जोड़ी को ही मूलतः कहते थे, पर पीछे चलकर संस्कृत में ही वे शब्द स्थान और जोड़े के वाचक रह गए—अविगोष्ठम्, खरगोयुगम् और अश्वगोयुगम् के रूप भी उनके ऊपर रखे गए। ब्रील ने विशेषीकरण का विवरण प्रस्तुत करते हुए गुणवाचक विशेषणों की मात्राओं का सामान्यतः द्योतन करने के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों का उल्लेख किया है। हिन्दी में अधिक शब्द अपेक्षतया अधिक या

1. एरिक पार्ट्रिज, वर्ल्ड ऑफ वर्ड्स, पृष्ठ 84।

बहुत (सब से) अधिक के लिए भी प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में 'डू' धातु के भूत-कालिक रूप से भूतकालिक प्रत्यय ed का जन्म भी इसी कोटि में गिना जाता है।

2. अर्थसंकोच : कुछ शब्दों का प्रयोग सामान्य या विस्तृत अर्थ से हटकर विशिष्ट, संकीर्ण या सीमित अर्थ में होने लगता है। ब्रील के अनुसार राष्ट्र का विकास जितना ही अधिक होता जाएगा, अर्थसंकोच के उदाहरण भी उतने ही अधिक मिलेंगे। जैसे मृग का अर्थ जानवर मात्र था, पर अब केवल हरिण रह गया है। रदन का अर्थ फाड़ने वाला था, अब दाँत मात्र रह गया है। सर्प का अर्थ रेंगने वाला था, पर अब रेंगने वाला एक विशेष कीड़ा मात्र रह गया है। भार्या का अर्थ जिसका भरण-पोषण किया जाए, था, पर अब पत्नी मात्र के लिए भार्या शब्द का प्रयोग होता है, भले ही वह उलटे पति का भरण-पोषण करे। वर का अर्थ चुना हुआ या माँगा हुआ था, अब दूल्हा या देवालयों का दान (वर-) ही रह गया है। श्रद्धा से किया जाने वाला प्रत्येक कार्य श्राद्ध था, अब पितरों के लिए श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणों को प्रतिवर्ष कराए जाने वाले भोजन को श्राद्ध कहते हैं। घृत का अर्थ सींचने वाला था और पानी तक के लिए इसका प्रयोग होता था, अब केवल घी के लिए ही यह शब्द चलता है। हिन्दी की बोलियों में मिठाई, गुड़ तथा हलवाई दोनों की मिठाइयों के लिए प्रयुक्त होता था, पर खड़ी बोली में वह केवल पिछले अर्थ में सीमित हो चला है। चाटने योग्य किसी चीज को चटनी कहते थे पर अब एक विशेष प्रकार के लेह्य पदार्थ को चटनी कहते हैं। ब्रील के अनुसार प्रत्यक्षतः पर्यायवाची शब्द भी कालांतर में विभिन्न अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। एक मन् धातु से बने मनस्, मनुष्, मति, मनन, मन्यु आदि उदाहरण लिए जा सकते हैं। क्रमशः कुछ पर्यायवाची शब्द भी अर्थ की एक विशेष दशा ही तक सीमित रह जाते हैं, इसी से इसे विभेदीकरण भी कहते हैं।

3. अर्थादेश : कभी-कभी प्रधान अर्थ के साथ-साथ साहचर्य के कारण किसी शब्द का एक गौण अर्थ भी उसी शब्द से व्यक्त होने लगता है। क्रमशः प्रधान अर्थ तो लुप्त हो जाता है और गौण अर्थ ही सब कुछ बन जाता है। असुर शब्द ऋग्वेद की आरम्भिक ऋचाओं में देववाची था, पीछे से राक्षसवाची हो गया। मौन शब्द से पहले मुनियों के विशुद्ध आचरण का अर्थ निकलता था, अब वह चुप्पी साधने के अर्थ में आता है। अशोक को देवानां प्रिय कहा जाता है, पर पीछे चलकर देवानां प्रिय शब्द का अर्थ मूर्ख हो गया। तारतम्य शब्द का अर्थ पहले कम-अधिक था, पर आज यह क्रम वाचक हो गया है। बंगला में संस्कृत शब्द वाटिका से निकले बाड़ी शब्द का तो अर्थ घर है और गृह शब्द से निकले घर शब्द का अर्थ कमरा। माहुर शब्द तुलसी ने विष के लिए प्रयुक्त किया है, परन्तु यह माधुर से निकला है—शायद विषों को मिठाई में मिलाकर दिया जाता होगा।

इसके साथ ही अर्थ का अपकर्ष और उत्कर्ष भी होता है। छिपाने और पालने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द जुगुप्सा का घृणा के अर्थ में अपकर्ष हो गया। चिह्न वाचक लिंग शब्द का इन्द्रिय के अर्थ में अपकर्ष हो गया है। इसी प्रकार अन्य

अनेक शब्दों का अश्लील अर्थ में अपकर्ष हो जाता है और वे सभ्य समाज की चर्चा में से उठ जाते हैं। अब अर्थोत्कर्ष को लें। साहसिक संस्कृत में डाकू को कहते थे और साहस शब्द का भी वैसा ही अर्थ था, पर अब साहस का अर्थ बड़ा उदात्त हो गया है। इसी प्रकार फिरंगी शब्द पुर्तगाली में डाकू के लिए था, पर हमारे यहाँ उसका अर्थ यूरोपियन हो गया। इसी प्रकार संस्कृत में चिथड़े के लिए आने वाला कर्पट शब्द हिन्दी में कपड़ा बनकर सभी वस्त्रों का सामान्य द्योतक बन गया है। इस प्रकार बदलती परिस्थिति के अनुसार अर्थ में उत्कर्ष-अपकर्ष होता रहता है।

मानवीय-मनोविज्ञान भी कोई स्थायी वस्तु नहीं है और उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। मनुष्य के विचारों में होने वाले उन परिवर्तनों का प्रभाव उसके विचारों की वाहिका भाषा पर भी पड़ता है और तदनुसार ही सारे अर्थ-परिवर्तन हुआ करते हैं।

भोलानाथ तिवारी ने अर्थ-परिवर्तन के 25 विस्तृत कारण गिनाए हैं, जो निम्नांकित क्रम से हैं: (1) **बल का अपसरण**—बल के प्रधान ध्वनि से हटकर गौण पर आने से उपाध्याय जी झा बन गए, इसी प्रकार गोस्वामी शब्द में अर्थ की दृष्टि से बल का अपसरण हुआ है, इसमें क्रमशः गायों का स्वामी, धनी, माननीय और अन्त में धार्मिक दृष्टि से माननीय (सन्त) अर्थों का आगमन हुआ है। इसी प्रकार जुगुप्सा शब्द में गोपालन, केवल पालन, छुपाना, और फिर अन्त में घृणा-निन्दा अर्थ आए हैं। (2) **पीढ़ी परिवर्तन**—नई पीढ़ी नए परिवर्तनों के कारण पुराने अर्थों को ठीक अर्थ में ग्रहण नहीं कर पाती और अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। पत्र चिट्ठी को कहते हैं, आरम्भ में वह पत्ते पर लिखी जाती थी। अगली पीढ़ी यही अर्थ लेकर चली कि जिस पर लिखा जाता है वह पत्र होता है, अतः भोजवृक्ष की छाल भी भोजपत्र ही कही गई। पीछे यही बात ताम्रपत्र आदि धातु के पत्तरों के विषय में हुई और इसी से पातर और पतला शब्द भी आगे की पीढ़ियों ने निकाले। पालि में पण्णाकार शब्द, शायद पत्तों से उपहारों के ढके जाने के कारण उपहार अर्थ में चल निकला था। आज तो ताश के भी पत्ते होते हैं। (3) **विभाषा से शब्दों का ऋण**—लेने में भी मूल अर्थ परिवर्तित होकर नई भाषा में जाता है। फारसी दरिया (नदी) गुजराती में समुद्र अर्थ देता है। फारसी मुर्ग (पक्षी) अब एक विशेष पक्षी का वाचक हो गया है, यद्यपि मुर्गाबी अब भी पानी की चिड़िया मात्र के लिए प्रयुक्त होता है। (4) **एक भाषा-भाषियों का विभिन्न प्रदेशों में विकास**—संस्कृत वाटिका (बगीची) से निकला बारी शब्द भोजपुरी में बगीचे के ही अर्थ में है और पश्चिमोत्तर उत्तर-प्रदेश में हरे शाकों के खेत के अर्थ में, परन्तु बंगला में बाड़ी का अर्थ घर है। संस्कृत नील हिन्दी में तो नीले के ही अर्थ में है, पर गुजराती में लीली होकर हरा अर्थ देने लगा है। संस्कृत युग (दो) और अंग्रेजी योक शब्दों में भी ऐसा ही अन्तर है। (5) **वातावरण में परिवर्तन**—भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि वातावरणों में अन्तर होने से भी अर्थ में परिवर्तन हो

जाता है। एडम स्मिथ के शब्दों में मैक्समूलर का कहना है कि इंगलैण्ड वासी दूसरी बड़ी नदी देख उसे अन्य टेम्स बताते हैं। इंगलैण्ड में कार्न (corn) गल्ले का अर्थ देता है, अमरीका में वह मक्का के अर्थ में आता है। तारापोरवाला के अनुसार ऋग्वेद की प्राचीन ऋचाओं में उष्ट्र शब्द भैंसे के लिए आया है, पीछे से शायद आर्यों ने राजस्थान मरुस्थल में पहुँचकर वास्तविक ऊँट देखा और वही शब्द उसके लिए चल निकला। अंग्रेजी शब्द सिस्टर का अर्थ घरों में तो बहिन रहता है, पर गिरिजाघरों और अस्पतालों में कुछ और हो जाता है। हिन्दी में भी बहिन जी शब्द की यही दशा है और आर्यसमाज आदि के जलसों और कन्या-विद्यालयों में उसके अर्थ कुछ विभिन्न होते हैं। मुश्किल से मिल सकने के कारण वर दुर्लभ (दूलह) था, आज दूलह ही नहीं, दुलहिन भी चल गया है। जजमानी शब्द केवल ब्राह्मणों की जजमानी के ही लिए नहीं, नाइयों-बारियों की भी जजमानी के लिए प्रयुक्त होता है। (6) **नई वस्तुओं का निर्माण**—होने पर जिन पदार्थों से वे बनती हैं, उनका प्रयोग ही उन वस्तुओं के लिए भी होने लगता है। ग्लास (Glass) से बनने वाले पात्र को गिलास, और ग्रथन (ग्रंथ) करके बनने वालों को ग्रंथ (पुस्तक) कहते हैं। (7) **नम्रता प्रदर्शन**—के लिए भी मूल अर्थ बदल जाता है। उर्दू की बातचीत में पराए घर को दौलतखाना और अपने घर को गरीबखाना कहते हैं। पधारिए, भोजन पा लीजिए, अब आप फरमाइए, आदि में भी यही बात है। राजाओं के लिए गरीबपरवर, अन्नदाता आदि सम्बोधन भी इसी कोटि में आते हैं। (8) **अशोभन के लिए शोभन भाषा का प्रयोग**—भी अर्थपरिवर्तन का कारण बनता है। डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में वैधव्य को चूड़ी फूटना और मर जाने को स्वर्गवास होना, पंचतत्त्व को प्राप्त होना आदि कहा जाता है। उर्दू में वह बीमार है न कहकर उनके दुश्मनों की तबियत नासाज है, कहते हैं। अश्लील शब्दों और कृत्यों को भी घुमा-फिरा कर कहते हैं। टट्टी जाने को बाहर (या मैदान) जाना, शौच (या दिशा) जाना, विलायत जाना, पाकिस्तान जाना आदि कहते हैं। गर्भिणी को 'इसके पाँव भारी हैं' कहते हैं। भयंकर और अप्रिय पदार्थों के लिए भी ऐसे ही शब्द प्रयुक्त होते हैं। लाश को मिट्टी, साँप को कीड़ा, रस्सी, जेवरी और उसके काटने को छूना, सूँघना कहते हैं और बिच्छू को टेढ़की। चेचक को सीतला या माता भी कहते हैं। पत्नियाँ पति का नाम न लेकर पंडित जी, बाबू जी, लाला, बच्ची (या बच्चों के नाम) के बापू आदि नामों से पुकारती हैं या केवल सर्वनामों या सुननाजी का प्रयोग चलता है। इसी प्रकार निम्न कार्यों और उनसे सम्बद्ध व्यक्तियों आदि के लिए भी उदात्त सम्बोधन प्रयुक्त होते हैं। भंगी को मेहतर (महत्तर) या जमादार, चमार को रैदास, खाना पकाने वाले को महाराज (बंगला में ठाकुर), क्लर्कों को बाबू, दर्जी को खलीफा, अंधे को सूरदास और मुंसिफ को जज साहब आदि सम्बोधन —इन्हीं कारणों से दिए जाते हैं। (9) **अधिक शब्दों के लिए एक शब्द**—ध्वनि-विचार में मुख-सुख के कारण होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का उल्लेख किया गया था,

उसी प्रकार सुविधा के लिए भी दो-तीन शब्दों के स्थान पर केवल एक शब्द से काम चला लिया जाता है । रेलगाड़ी के लिए रेल मात्र बहुधा चलता है, कभी-कभी गाड़ी शब्द भी प्रयुक्त होता है । रेलवे स्टेशन को स्टेशन मात्र कहते हैं । इसी प्रकार बाइसिकिल को साइकिल या बाइक मात्र कहने लगे हैं । अन्य अनेक शब्द भी इसी प्रकार संक्षिप्त करके बोले जाते हैं । (10) **सादृश्य**—के कारण भी कभी-कभी अर्थ बदलता है । गोस्वामी (गायों का स्वामी-धनी और इन्द्रियों का स्वामी-ईश्वर) शब्द से निकलने वाला गोसाईं शब्द भी सादृश्य के कारण दोनों अर्थों में चल निकला । (11) **कवि-निरंकुशता**—कविगण चमत्कार के लिए कुछ शब्दों का असाधारण अर्थ प्रयोग करते हैं । अज्ञेय जी द्वारा आशंका शब्द का आशा के अर्थ में प्रयोग करने का उदाहरण भोलानाथ तिवारी ने दिया है । (12) **पुनरावृत्ति**—विन्ध्याचल पर्वत इसका अच्छा उदाहरण है, अचल से पर्वत का अर्थ स्पष्ट होने पर भी पर्वत फिर जोड़ा गया और विन्ध्याचल पूरा का पूरा विन्ध्य का नाम मात्र रह गया । (13) **एक शब्द के दो रूप**—एक ही समय एक ही भाषा में एक शब्द के दो रूप भी चलने लगते हैं । डा० गुणे के शब्दों में मूलतः दोनों का अर्थ वही रहता है, परन्तु बाद में इसकी अनावश्यकता दोनों के अर्थों में कुछ भेद करा देती है । देखा यह गया है कि इनमें से तत्सम शब्द तो उदात्त मूल अर्थ में फैलता रहता है, पर तद्भव शब्द का अर्थ कुछ भिन्न हो जाता है । गर्भिणी (मानुषी), गाभिन (गाय आदि), ब्राह्मण (शिक्षित), बाम्हन (अपढ़), स्तन (स्त्री), थन (गाय), स्थान (देव, मानव), थान (पशु) आदि । (14) **अज्ञान-असावधानी**—(अं० मैलाप्रोपिज्म)—आलस्य या कभी-कभी शौकिया भी शब्दों का गलत अर्थ में प्रयोग होता है । तारतम्य का मूल अर्थ अपेक्षतया अधिक और सबसे अधिक होने का क्रम था, पर अब लोग उससे तांता बांधने का अर्थ लेने लगे हैं । धन्यवाद मूलतः प्रशंसा के लिए था । उपसर्गों का अकारण प्रयोग भी इसी ओर जा रहा है । (15) **शब्दों का अधिक प्रयोग**—किसी शब्द के अतिशय प्रयोग से भी उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है । बहुत और अधिक शब्दों का प्रयोग अब उतना जोरदार नहीं रहा और अत्यधिक, अत्यन्ताधिक आदि प्रयोग बढ़ रहे हैं । बाबू शब्द की शान भी अब घिस गई है । यही दशा पंडित जी शब्द की है । (16) **किसी राष्ट्र या जाति के प्रति सामान्य मनोभाव**—के आधार पर भी शब्दों के अर्थों का उत्कर्ष-अपकर्ष होता है । मुंडा परिवार में पिल्ला बच्चे को कहते हैं, पर आर्य भाषा में वह कुत्ते के बच्चे के लिए चलता है । इसी प्रकार मुसलमान, पूँजीवादी, सामंत, ताल्लुकेदार और कांग्रेसी शब्द तक की प्रतिष्ठा आज परिस्थितियों के कारण कम हो गई है । (17) **एक वर्ग के एक शब्द का अर्थ परिवर्तन**—भी उसके निकट के सभी शब्दों पर प्रभाव डालता है । सर्प (सांप) का अर्थ सरकने वाला न रहकर एक कीड़ा विशेष हो गया, तो सर्पिणी, सांपिन, सपेरा आदि शब्दों में भी नया अर्थ आ गया । (18) **साहचर्य**—के कारण भी कुछ शब्दों में अनजाने ही नया अर्थ आ जाता है । सिन्धु (बड़ी नदी, समुद्र) नाम आर्यों ने भारत में आने

पर मिलने वाली पहली बड़ी नदी को दे दिया। कालांतर में उसके निकट प्रदेश का नाम भी सिन्धु हो गया और वहाँ नमक और घोड़ों के आधिक्य से नमक और घोड़ा दोनों का नाम सैंधव हो गया। कालांतर में इसी साहचर्य के कारण वहाँ के निवासी भी सिन्धु (हिन्दू) हो गए। (19) **वर्ग विशेष की एक प्रधान वस्तु में प्रतीकत्व का आरोप**—जैसे कांग्रेस को गांधी टोपी, समाजवादी दल को लाल टोपी, साम्यवादी दल को लाल-झंडा, पुलिस को लाल पगड़ी, पुरोहित को सफेद पगड़ी आदि कहते हैं। (20) **व्यंग्य**—में काकु आदि के सहारे उल्टी बात कहकर अभिप्राय प्रकट किया जाता है, आप बड़े विद्वान् या बड़े अक्लमन्द या तीन हाथ की बुद्धि वाले हैं आदि का अर्थ है आप मूर्ख हैं। पूरे युधिष्ठिर या हरिश्चन्द्र के अवतार के नाम से उसी प्रकार बिलकुल झूठ बोलने वाले को पुकारा जाता है। (21) **भावावेश**—में लोग बच्चों को पाजी, शैतान, बदमाश, दुष्ट, पागल आदि कहते हैं। यह सब स्नेहातिशय के ही कारण चलता है, अन्यथा मित्रों को परस्पर साला, गदहा, आदि कहना वस्तुतः खतरनाक हो जाए। (22) **व्यक्तिगत योग्यता**—टकर के अनुसार शब्द ऐसा सिक्का है, जिसका मूल्य निश्चित नहीं और बोलने-सुनने वाले के अन्तर से उसके मूल्य में ह्रास-वृद्धि होती रहती है। नैतिकता के निर्देशक अच्छा, बुरा आदि शब्दों का अर्थ विभिन्न कोटियों के व्यक्तियों के निकट विभिन्न प्रकार का होता है। (23) **शब्दों में अर्थ का अनिश्चय**—उपर्युक्त कारण से व्यक्ति के मनोविज्ञान पर जोर देता था, परन्तु अहिंसा, आर्य, भद्रपुरुष, सेठ, आदि शब्दों का अर्थ ही सुनिश्चित नहीं है और ऐसे शब्दों में अर्थ के परिवर्तन की गुंजाइश अधिक रहती है। (24) **वर्ग की एक वस्तु का नाम वर्ग को देना**—स्याही का अर्थ काला था, पर सभी रंगों की स्याहियाँ चलती हैं। बंगला में तो स्याही को काली कहते हैं और लाल स्याही को लाल काली। शाक या सब्जी शब्द केवल भोज्य हरे पत्तों आदि के लिए थे, अब ये सभी तरकारियों के लिए ही नहीं उनके निष्पन्न (पकाए गए) रूप के लिए भी है, जब कि उनके जल-भुन जाने पर सब्जीपन (हरापन) उनमें नाम को भी नहीं रहता। पशु-पक्षियों के कुछ नामों में भी केवल एक ही लिंगवाचक शब्द चलता है—लोमड़ी और मैना सदा स्त्रीलिंग ही चलते हैं और गीदड़ और तोता सदा पुल्लिंग। चींटा, चींटी, कौआ, बाज, चील, छिपकली आदि अनेक अन्य नाम भी केवल एक ही लिंग में चलते हैं और नर-मादा दोनों के लिए प्रयुक्त होते हैं। (25) **अलंकार-प्रयोग**—मैक्समूलर के शब्दों में आलंकारिक रूपकात्मक प्रयोग का मानव भाषा के निर्माण में विशेष हाथ रहता है और हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसके बिना कोई भाषा पर्याप्त रूपेण विकसित हो सकती है। मैक्समूलर के ही शब्दों में रूपकात्मक प्रयोग का अर्थ है किसी पदार्थ विशेष से सामान्यतः संबद्ध नाम का किसी दूसरे पदार्थ के लिए प्रयोग।[1] अर्थ विचार के जनक ब्रील का विचार है कि अन्य कारणों से तो शब्दों में अर्थ परिवर्तन धीरे-धीरे होता है, पर अलंकारों के कारण एक क्षण में

1. मैक्समूलर, लेक्चर्स जिल्द 2, पृष्ठ 385।

अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। मीठी बात, कड़वी बात में मिठास और कड़वाहट का अर्थ भली और बुरी लगने वाली बात से ही है। इसी प्रकार टेढ़ा आदमी और सीधा आदमी आदि प्रयोग हैं। 'देवदत्त गधा (गधे के समान मूर्ख) है' के लक्षणा नामक शब्द शक्ति के सहारे निकलने वाले अर्थ की चर्चा साहित्य शास्त्र का एक प्रमुख विषय है। डा० गुणे ने सज्ज और चर्चित-चर्वण शब्दों के उदाहरण दिए हैं, जिनका अर्थ अब क्रमशः तैयार और दुहराना रह गया है। पहले शब्द का प्रयोग मूलतः बाण चलाने के लिए तैयार होने में और दूसरे का चबाई हुई चीज चबाने के लिए होता था। विशेषण विपर्यय का प्रयोग भी आधुनिक कविता में ही नहीं, आधुनिक बोलचाल में भी खूब होता है, रूखी बात, सूखी हँसी, गहरे विचार आदि इसके उदाहरण हैं। बच्चे लकड़ी के घोड़े पर चढ़ते हैं, इसी प्रकार नारियल की जटा, घड़े का पेट, शरीफे की आँखें, ईख की आँख आदि अनेक प्रयोग दैनिक व्यवहार में चलते हैं। बिच्छू नामक एक औषधि भी होती है और साँप मसाले के और लकड़ी के भी होते हैं। महाराज (रसोइया), रैदास (चमार), सूरदास (अंधा), भैंस या बैल (मूर्ख), गाय (सज्जन), कौआ (चालाक), सियार (डरपोक) आदि आलंकारिक प्रयोग भी खूब प्रचलित हैं। भोलानाथ तिवारी द्वारा बताए गए इन पच्चीस प्रमुख कारणों के अतिरिक्त विशेषण के संज्ञा, संज्ञा के क्रिया, भाववाचक के जातिवाचक आदि बनने से भी अर्थ-परिवर्तन होता है। दुनीचन्द्र ने भी उपमा, संसर्ग, कारण भाव, कार्यभाव, रूप, आकृति और क्रिया में सादृश्य साम्य आदि अनेक अन्य कारण गिनाए हैं। चारपाँव शब्द से चौपाया और चारपाई दो विभिन्नार्थक शब्द निकले हैं। आदि ग्रंथ को नगर मानकर उसको मुहल्ला, घर और पौड़ियों में बाँटा गया है। बिन्दु शब्द से बिन्दी, बूँदी (मिठाई) और पंजाबी बूँद (छींट कपड़ा) शब्द निकले हैं। मूंड—मूंडना से-मुंडा (बालक, प्रायः मुंडा रहने से) शब्द निकला है।

कभी-कभी नवीन अर्थ आ जाने पर भी कुछ शब्द प्राचीन अर्थ नहीं छोड़ते और इस प्रकार नानार्थक शब्दों की उत्पत्ति होती है। नलिनीमोहन सान्याल ने घर शब्द के कई प्रयोग दिखाए हैं।[1] सब घर खपरैल के हैं। यह सौ घर की बस्ती है। इस मकान में आठ घर हैं। वह घर में नहीं है। वह घर गया है। वह घर-बार छोड़ भाग गया। धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। वह बड़े घर का लड़का है। इन वाक्यों में सामान्यतः एकार्थक घर शब्द ने भी अनेक अर्थ ग्रहण किए हैं। इसी प्रकार पेड़ की जड़, रोग की जड़, बबूल का कांटा, तराजू का कांटा आदि शब्दों में अर्थ बदलते रहते हैं। पैसा रोटी आदि शब्द भी नानार्थक बन जाते हैं। इन प्रचलित प्रयोगों में आलंकारिक प्रवृत्ति का बहुत हाथ रहता है। पर अमरकोष के तृतीय कांड के तृतीय वर्ग (नानार्थक वर्ग) में नानार्थक शब्दों की बहुत लम्बी सूची दी गई है और संस्कृत तो श्लिष्टार्थता के लिए सदैव प्रसिद्ध रही है। वहाँ एक-एक श्लोक के दो-दो अर्थ कभी-

1. नलिनीमोहन सान्याल, भाषा विज्ञान, पृष्ठ 192।

कभी पूरे सर्ग तक निकलते चला जाना सामान्य बात है,[1] कुछ काव्य ही इस रूप में लिखे गए हैं कि वे विष्णु और शिव दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं। संस्कृत के अनेक नानार्थक शब्द हिन्दी में भी नानार्थक रह गए हैं। कुछ शब्द एकमूल के होने पर भिन्नार्थक हो जाते हैं। ऊपर (13) में एक शब्द के दो अर्थों के प्रचलन में स्थान-थान, गर्भिणी-गाभिन आदि बताए गए हैं। कुछ शब्दों में ध्वनिसाम्य होने पर भी भिन्नार्थकता होती है जैसे आम (फल, साधारण), कुल (वंश, समस्त), सहन (सहना, आंगन) आदि शब्द समध्वनि होने पर भी भिन्नार्थक हैं।

अर्थ-विचार से राष्ट्र की सांस्कृतिक विचारधारा के विकास पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अर्थगत परिवर्तनों के सहारे राष्ट्र की उस चेतना का भी पता चल जाता है जो युग विशेष में उस परिवर्तन का कारण बनती रहती है।

अर्द्ध तत्सम—प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के तत्सम शब्दों से आधुनिक काल में विकृत होने वाले शब्दों को डा० धीरेन्द्र वर्मा अर्द्ध तत्सम नाम से पुकारते हैं जैसे कृष्ण शब्द का कान्ह या कन्हैया तो तद्भव शब्द है, पर आधुनिक युग में विकृत होने वाला 'किशन' शब्द अर्द्ध तत्सम है। ये अर्द्ध तत्सम शब्द मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में होते हुए विकसित नहीं हुए हैं, बल्कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में सीधे लिए गए हैं और उनमें कुछ ध्वनि-गत परिवर्तन भी हो गए हैं।

अर्द्धस्वर—हिन्दी की य और हलंत अक्षर के बाद शब्द के मध्य में आने वाली व् ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं। इनके उच्चारण में मुखद्वार संकीर्ण तो करते हैं, पर इतना नहीं कि रगड़ (संघर्ष) हो। इन्हें अर्द्धस्वर या व्यंजन और स्वर के बीच की ध्वनि माना जाता है। वैसे इनकी गणना व्यंजनों में होती है। इन ध्वनियों पर पृथक् टिप्पणियाँ यथास्थान देखिए।

अलवरी—1954 में प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 667 है और यह भारत के पश्चिमोत्तर भाग में बोली जाती है।

अलिजिह्व—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में उवुला कहते हैं और हिन्दी में अलिजिह्व, कौआ या घंटी। विशेष दे० ध्वनि अवयव।

अलौकिक व्युत्पत्ति—व्युत्पत्ति के सामान्य नियमों का पालन करते हुए की जाने वाली व्युत्पत्ति को ऐतिहासिक व्युत्पत्ति या अलौकिक व्युत्पत्ति कहते हैं। विशेष दे० व्युत्पत्ति शास्त्र।

अल्पप्राण—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण और य, र, ल और व अल्पप्राण होते हैं। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

अल्पप्राण और महाप्राण का पारस्परिक भेद यही है कि जिनमें ह ध्वनि नहीं होती,

1. देखिए नैषधीयचरित (स्वयंवर में पाँच नलों का वर्णन) और शिशुपालवध में दूत की द्व्यर्थक बातचीत।

जैसे क् ग् त् द् आदि, उनको अल्पप्राण कहते हैं और जिनमें इनके विपरीत ह् ध्वनि होती है जैसे ख् घ् थ् ध् आदि उन्हें महाप्राण कहते हैं। लैरिंगोस्कोप यन्त्र की सहायता से इनका भेद स्पष्ट समझा जा सकता है।

अल्पप्राणीकरण—उच्चारण की सुविधा के लिए महाप्राण वर्णों को अल्पप्राण बना देने की प्रवृत्ति, जैसे संस्कृत लिट् प्रथमा एक वचन में भ् भूव का बभूव और धध्मौ का दध्मौ आदि होना। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

अवधी—उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में बोली जाने वाली हिन्दी की एक क्षेत्रीय बोली। अवध के एक जिले हरदोई में कनौजी (दे० यथा०) बोली जाती है। शेष भाग में अवधी बोली जाती है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी में तो बोली ही जाती है, इसके अतिरिक्त दक्षिण में गंगापार इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, मिर्जापुर और जौनपुर के कुछ हिस्सों में भी बोली जाती है। बिहार के मुसलमान भी मुजफ्फरपुर तक अवधी बोलते हैं। ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी का भी साहित्य के क्षेत्र में समुचित उपयोग हुआ था, पर बाद में वह उसके सामने न ठहर सकी।

1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या 3001 है; जिनमें से 189 उत्तर भारत में रहते हैं और शेष 2812 भारत के मध्य भाग में।

अवृत्ताकार स्वर—अग्रस्वर, पश्चस्वर और मध्यस्वरों की विवेचना (दे० यथा०) में जीभ के भागों पर और संवृत, अर्द्धसंवृत, अर्द्धविवृत तथा विवृत प्रयत्नों की विवेचना (दे० यथा०) में जीभ के ऊपर उठने वाले भाग के परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। इन दोनों बातों के अतिरिक्त स्वरों के उच्चारण से होठों की स्थिति का भी सम्बन्ध है। बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में स्वरों का उच्चारण करते समय वे स्वाभाविक अर्थात् उदासीन अवस्था में रहते हैं, अथवा इस प्रकार संकुचित हो जाते हैं कि उनके बीच में कभी गोल और कभी लम्बा विवृत बन जाता है। मूलस्वरों (दे० यथा०) में परिगृहीत अग्र स्वरों में ज्यों ही हम विवृत से संवृत की ओर बढ़ते हैं, होंठ अधिकाधिक फैलते जाते हैं। मूलस्वरों में ई और ए अवृत्ताकार स्वर हैं और शेष स्वर वृत्ताकार स्वर हैं।

अव्यक्त योगात्मक—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

अश्लिष्ट योगात्मक भाषा—आकृतिमूलक वर्गीकरण की दृष्टि से किया जाने वाला भाषा का एक उपभेद। डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में अर्थतत्त्व के साथ सम्बन्ध तत्त्व जुड़ता है, पर दोनों की सत्ता स्पष्ट झलकती है। इस स्पष्टता के कारण इन भाषाओं की रूप रचना अत्यन्त सरल हो जाती है। आदर्श कृत्रिम विश्व भाषा एसपिरेंतो का निर्माण भी इसी आधार पर किया गया है।

डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार हिन्दी में इसके उदाहरण शिशुत्व, सु-जन-ता, करे-गा आदि होंगे। तुर्की के एव (=घर) का उदाहरण बहुत-से भाषा वैज्ञानिकों ने दिया है—

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	एव	एव-लेर
कर्म	एव-ई	एव-लेर-ई
सम्प्रदान	एव-ए	एव-लेर-ए
अपादान	एव-देन	एव-लेर-देन
सम्बन्ध	एव-इन	एव-लेर-इन
अधिकरण	एव-दे	एव-लेर-दे

इसी प्रकार एव-इम (=मेरा घर) एव-लेर-इम (=मेरे घर) आदि बनते हैं। और देखिए—एल=हाथ, एल-इम (=मेरा हाथ), एल-इम-दे (=मेरे हाथ में) एल-इम-दे-की (=मेरे हाथ में होने से) आदि।

अश्लिष्ट भाषाओं में जोड़े जाने वाले सम्बन्ध तत्त्व के स्थान की दृष्टि से इसके कई उपभेद हो जाते हैं—

1. पूर्व योगात्मक—इन भाषाओं में उपसर्ग से प्रत्यय का काम चलाया जाता है। शब्द वाक्य में बिलकुल पृथक् बने रहते हैं। पर रचना में बस सम्बन्धतत्त्व उनके आरम्भ में जोड़ दिया जाता है। अफ्रीका के बाँटू परिवार की भाषाएँ इस कोटि में आती हैं।

काफिर भाषा में कु सम्प्रदान कारक का चिह्न है और ति=हम और नि=उन होता है। इनके योग से—

कु ति—हम को
कु नि—उन को

इसी प्रकार जुलू में भाषारहस्यकार के शब्दों में न्तु (आदमी), तु (हमारा) चिल (सुन्दर, भला) और यबो नकल (मालूम होना)—इन चार शब्दों में पूर्व में प्रत्ययों का योग कर देने से एक वाक्य बन जाता है उगुन्तु वेतु ओगुचिल उयबोनकल (अर्थात् हमारा आदमी भला मालूम होता है।) इन्हीं पूर्व प्रत्ययों में परिवर्तन कर देने से वाक्य बहुवचन में परिवर्तित हो जाता है—अबन्तु बेतु अबचिल बयबोनकल (अर्थात् हमारे आदमी देखने में भले हैं)।

2. मध्ययोगात्मक—मुंडा कुल की संथाली भाषा में मंझि=मुखिया और प बहुवचन का चिह्न है। मपंझि का अर्थ होता है, मुखिया गण। दल=मारना, दपल=परस्पर मारना। बंटू भाषा का भी भोलानाथ तिवारी ने उदाहरण दिया है—

सि-तन्दा—हम प्यार करते हैं।
सि-म-तन्दा—हम उसे प्यार करते हैं।
सि-ब-तन्दा—हम उन्हें प्यार करते हैं।

पूर्वान्तर्योगात्मक—डा० बाबूराम सक्सेना ने न्यूगिनी की मफोर भाषा के ये उदाहरण दिए हैं—

ज-म्नफ—मैं सुनाता हूँ ।

ब-म्नफ—तू सुनता है ।

सि-म्नफ—वे सुनते हैं ।

ज-म्नफ-उ—मैं तेरी बात सुनता हूँ ।

ये पूर्वान्तियोग के उदाहरण हैं ।

4. अन्तयोगात्मक—तुर्की तथा द्राविड़ भाषाएँ इस प्रकार के प्रत्ययों के लिए प्रसिद्ध हैं। भाषारहस्यकार और डा० सक्सेना के आधार पर संस्कृत की तुलना करते हुए सेवक शब्द के बहुवचन रूपों के द्राविड़ भाषाओं से उदाहरण दिए जाते हैं—

	संस्कृत	**कन्नड़**	**मलयालम**
कर्त्ता	सेवकाः	सेवक-स	सेवकन्-मार्
कर्म	सेवकान्	सेवक रन्नु	सेवकन्-मारे
करण	सेवकैः	सेवक-रिन्द	सेवकन्-माराल्
सम्प्रदान	सेवकेभ्यः	सेवक-रिगे	सेवकन-मारकु सेवकन्-मारकाइ
सम्बन्ध	सेवकानाम्	सेवक-र	सेवकन्-मारुटे
अधिकरण	सेवकेषु	सेवक-रल्ली	सेवकन्-मारुइल

परन्तु नलिनीमोहन सान्याल के अनुसार द्राविड़ भाषाएँ संस्कृत की भाँति ही विभक्ति प्रधान हैं (दे० विभक्ति प्रधान भाषा) ।

परन्तु तुर्की के उद्धरण के बिना अन्तयोगात्मक अश्लिष्ट भाषाओं की कहानी अधूरी ही रह जाएगी । बहुजन उद्धृत 'एव' का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है ।

5. आंशिक योगात्मक—ये भाषाएँ वस्तुतः योगात्मक और अयोगात्मक भाषाओं के बीच में पड़ती हैं तथा योग और अयोग दोनों ही के चिह्न इन भाषाओं में देखे जाते हैं। पर योगात्मक अश्लिष्ट से विशेष साम्य होने की दृष्टि से इनको इस वर्ग में रखा गया है । हवाई और न्यूजीलैंड आदि द्वीपों की पोलीनेशियन भाषाएँ इस कोटि में आती हैं ।

असनरी—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है । वह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है ।

असावर्ण्य—दो समान या अनुरूप या सवर्ण व्यंजनों के पास-पास रहने पर एक का असमान हो जाना, इसे विषयीकरण या असावर्ण्य या अनुरूपता कहते हैं । यह व्यंजन के बदलने पर पूर्व या पुरोगामी और पिछले-व्यंजन के बदलने पर पर या पश्च ये दो भेद हो जाते हैं । यह ध्वनि परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि परिवर्तन ।

असुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या 1510 है जो निम्न प्रकार से बंटी हुई है; पूर्वी भारत 1492 और भारत का मध्य भाग 18।

अहीर—अहीरी नामक बोली या उपभाषा का एक अन्य नाम। विशेष दे० अहीरी।

अहीरानी—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 6454 है, जिसमें 6163 पश्चिमी भारत में रहते हैं और शेष 291 भारत के मध्य भाग में।

अहीरी—इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की जनसंख्या कुल 15 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है। इसे अहीर भी कहते हैं।

आ

आ—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कंठ, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह दीर्घ आ उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अनुनासिक तथा अननुनासिक होने से छः प्रकार का होता है। आधुनिक भाषाशास्त्रियों के मत से यह विवृत पश्चस्वर है। उनके मत से इसके उच्चारण में ह्रस्व अ की अपेक्षा दूना समय या दो मात्राओं जितना काल ही नहीं लगता, बल्कि उससे इसके उच्चारण स्थान में भी कुछ भेद है। बाबू श्यामसुन्दर दास और डा० धीरेन्द्र वर्मा दोनों के ही मत से यह प्रधान स्वर आ से बहुत मिलता-जुलता है। ह्रस्व अ के उच्चारण में जीभ बीच में रहती है और दीर्घ आ के उच्चारण में पीछे। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में जीभ के नीचे रहने पर भी उसका पिछला भाग कुछ अन्दर की तरफ ऊपर उठ जाता है। होंठ बिलकुल गोल नहीं किए जाते, पर ह्रस्व अ की अपेक्षा कुछ खुल अवश्य जाते हैं। इस ध्वनि का उच्चारण आदमी, काला, स्थान, बादाम आदि में देखा जा सकता है।

ऑ—यह मूल अंग्रेजी ध्वनि है, परन्तु उसके कुछ तत्सम शब्द हिन्दी में आ जाने से प्रधान स्वर आ के ऊपर बिन्दुरहित अर्द्ध चन्द्र बना कर इसे स्पष्ट किया जाता है। इस अंग्रजी ऑ का स्थान डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से हिन्दी आ से काफी ऊँचा है और प्रधान स्वर ओ से कुछ नीचा है। इसके उदाहरण लॉर्ड, कॉन्फ्रेंस आदि हैं।

आंध्र—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की संख्या केवल 20 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

आंधी—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा को बोलने वाले व्यक्तियों की संख्या केवल 37 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

आइसोग्लोस—किसी भाषा या बोली के कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग या किसी एक शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में ही होता है। भाषा या बोली के मानचित्र में ऐसे शब्द या शब्दों के प्रयोग-स्थल को मिलाते हुए खींची जाने वाली रेखा को आइसोग्लोस (सम शब्द) रेखा कहते हैं, जैसे एक प्रकार के तापक्रम को द्योतित करने वाली रेखा को भूगोलज्ञ आइसोथर्म (समताप) रेखा कहते हैं।

ब्लूमफील्ड आदि विद्वान् इस शब्द का प्रयोग अपेक्षतया व्यापक अर्थ में करते हैं। उनके अनुसार वे रेखाएँ जो किसी भाषा या बोली के क्षेत्र में भाषा सम्बन्धी किसी

भी विशेषता को प्रदर्शित करने के लिए खींची जाती हैं, आइसोग्लोस रेखाएँ कही जाती हैं।

आइसोफोन—किसी भाषा या बोली की किसी क्षेत्र-विशेष में कुछ एक-सी विशेषताएँ पायी जाती हैं। भाषा या बोली के मानचित्र में इन स्थलों को मिलाते हुए जो रेखा खींची जाती है, उसे आइसोफोन कहते हैं। ब्लूम फील्ड आदि विद्वानों ने आइसोग्लोस (दे० यथा०) की जो परिभाषा की है, उसके अनुसार आइसोफोन भी एक प्रकार की आइसोग्लोस ही है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण—डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में केवल पद रचना अर्थात् सम्बन्धतत्त्व की समता पर निर्भर भाषाओं का वर्गीकरण आकृतिमूलक वर्गीकरण कहलाता है। इसे रूपात्मक वर्गीकरण या रचना या शब्दाकृति की दृष्टि से किया जाने वाला वर्गीकरण भी कहते हैं। यह वाक्य तथा रूप बनाने की शैली के ऊपर आधारित रहता है। अतः इसमें पहले तो वाक्यों में शब्दों के परस्पर सम्बन्ध को देखा जाता है और दूसरे वे किस प्रकार से ग्रन्थित किए गए हैं, यह देखा जाता है। अर्थात् "मैंने संसद् देखी" वाक्य में मैं, संसद् और देखना तीन अर्थ-तत्त्वों का सम्बन्ध किस प्रकार बाँधा गया है और दूसरे मैंने, संसद् और देखी, इन तीनों शब्दों में धातु, प्रत्यय या उपसर्ग आदि किस प्रकार प्रयुक्त किये गए हैं। इस प्रकार यह वर्गीकरण मुख्यतः रूप विचार (दे० यथा०) और वाक्य विचार (दे० यथा०) पर निर्भर रहता है।

• आकृतिमूलक वर्गीकरण में भाषाओं को पहले दो वर्गों में बाँटा जाता है—अयोगात्मक और योगात्मक (दे० यथा०)। अयोगात्मक को व्यास प्रधान, स्थान प्रधान, एकाक्षर, एकाच्, धातुप्रधान, निरिंद्रिय, निरवयव या निर्योग भी कहते हैं। योगात्मक को प्रत्यय प्रधान, संयोगी, संयोग प्रधान, व्यक्तियोग, योगात्मक, उपचयात्मक, संचयात्मक, संचयोन्मुख अथवा प्रकृति प्रत्यय प्रधान भी कहते हैं। अयोगात्मक भाषा (दे० यथा०) का सर्वोत्तम उदाहरण चीनी भाषा है। इसके अन्य उपभेद नहीं होते। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार योगात्मक भाषाओं के पहले तीन उपभेद होते हैं:—अश्लिष्ट, श्लिष्ट और प्रश्लिष्ट। इनमें भी अश्लिष्ट भाषाओं के अवांतर भेद पूर्वयोगात्मक, मध्ययोगात्मक, अन्त या पूर्वान्तियोगात्मक और आंशिक योगात्मक आदि होते हैं। श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के भी दो उपभेद होते हैं, बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी और ये दोनों भी संयोगात्मक तथा वियोगात्मक होने से चार प्रकार के हो जाते हैं। प्रश्लिष्ट भाषा के भी दो भेद होते हैं—पूर्ण प्रश्लिष्ट और आंशिक प्रश्लिष्ट। भेदों के वर्णन के लिए दे० अयोगात्मक भाषा, योगात्मक भाषा, अश्लिष्ट योगात्मक भाषा, श्लिष्ट योगात्मक भाषा और प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा।

डा० पी० डी० गुणे आदि विद्वानों ने आकृतिमूलक वर्गीकरण की दृष्टि से भाषाओं के चार भेद माने हैं—योगात्मक, श्लिष्ट योगात्मक, अयोगात्मक और विभक्ति प्रधान। उन्होंने पहले में तुर्की, दूसरे में सेमेटिक अरबी आदि, तीसरे

में चीनी और चौथे वर्ग में भारोपीय और द्राविड़ भाषाओं को रखा है। भाषा रहस्यकार भी निम्न चार भेद निरूपित करते हैं—व्यास प्रधान, समास प्रधान, प्रत्यय प्रधान और विभक्ति प्रधान। इनमें व्यास प्रधान के लिए दे० अयोगात्मक और प्रत्यय प्रधान के लिए दे० योगात्मक। शेष दोनों यथास्थान देखिए। डा० मंगलदेव शास्त्री रचना या शब्दाकृति की दृष्टि से अयोगात्मक, योगात्मक और विभक्ति-युक्त तीन प्रकार के भाषा वर्ग बताते हैं और क्रमशः चीनी, तुर्की और संस्कृत भाषाएँ उनके आदर्श उदाहरण के रूप में उद्धृत करते हैं।

डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार भाषाओं का आकृतिमूलक वर्गीकरण विभिन्न भाषाओं में किसी एक लक्षण की प्रधानता पर (न कि सम्पूर्णता पर) निर्भर है। भाषाओं का इतिहास बताता है कि एक श्लिष्ट भाषा कालान्तर में अयोगात्मक हो जाती है और संश्लेषण विश्लेषण में बदल जाता है। संस्कृत के 'जिगमिषति' और हिन्दी के 'वह जाना चाहता है' या अंग्रेजी के 'ही डिजायर्स टु गो' का उदाहरण इसे स्पष्ट कर देता है। भाषा वैज्ञानिकों का कहना है कि संस्कृत के 'मि सि ति' आदि प्रत्ययांश पूर्वकालिक सर्वनामों के अवशेष हैं। स्वतन्त्र शब्द कालान्तर में प्रत्यय का रूप धारण कर लेते हैं। चीनी में भी सम्बन्ध सूचक तत्व किसी समय पूरे अर्थतत्त्व थे, यह अनुमान किया जाता है। इन्हीं आधारों पर कुछ विद्वानों ने भाषाचक्र की कल्पना की है कि भाषा संहिति से व्यवहिति की ओर जाती है। हिब्रू और अरबी दोनों पहले संहित और संयुक्त थीं, आज हिब्रू अरबी की अपेक्षा अधिक व्यवहित पर व्यासप्रधान है। फारसी भी पहले वैदिक संस्कृत की भाँति संहित थी, मध्यकाल में वह कुछ व्यवहित हुई और आज पूर्णतः व्यवहित हो गई है। इसी प्रकार संस्कृत और अवेस्ता पहले अधिक संहित थीं, पीछे वियुक्त होती गईं। डा० बाबूराम सक्सेना का अनुमान है कि प्रश्लिष्ट से श्लिष्ट, उससे अश्लिष्ट योगात्मक और अन्त में अयोगात्मक अवस्था आती है। और फिर अयोगात्मक से अश्लिष्ट योगात्मक, उससे श्लिष्ट और उससे फिर प्रश्लिष्ट अवस्था आती है। कालचक्र में भाषा का विकास इसी क्रम से होता चला आ रहा है।

डा० मंगलदेव शास्त्री ने इस प्रकार के वर्गीकरण के कुछ दोष गिनाए हैं। पहले तो संसार की सैकड़ों भाषाओं को केवल तीन वर्गों में बाँटने से उनके स्वरूप को समझने में विशेष सहायता नहीं मिलती और प्रायः परस्पर सर्वथा असम्बद्ध भाषाएँ एक में आ जाती हैं। इस वर्गीकरण का उनके अनुसार दूसरा दोष यह है कि इसे हम ऐकान्तिक और निश्चित नहीं कह सकते। कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिनको किसी एक ही वर्ग के अन्दर लाना कठिन है। इसी प्रकार एक वर्ग की भाषा की शब्द-रचना दूसरे वर्ग की भाषा की शब्द-रचना के अनुकूल होती है। अतः निश्चित सीमा बाँधना कठिन ही नहीं असम्भव-सा है। असाहित्यिक भाषाओं में तो यह कहना भी कठिन होता है कि कहाँ तक अयोगात्मकता है और कहाँ तक योगात्मकता।

आकृतिमूलक वर्गीकरण निम्न चित्र से स्पष्ट हो जाएगा—

- भाषा
  - अयोगात्मक
  - योगात्मक
    - श्लिष्ट
      - बहिर्मुखी
        - वियोगात्मक (हिन्दी आदि)
        - संयोगात्मक (संस्कृत आदि)
      - अन्तर्मुखी
        - वियोगात्मक (परावर्ती हिब्रू आदि)
        - संयोगात्मक (अरबी आदि)
    - अश्लिष्ट
      - पूर्वयोगात्मक (काफिरी आदि)
      - मध्य तथा पूर्वान्त योगात्मक (संथाली आदि)
      - अन्त योगात्मक (तुर्की आदि)
      - आंशिक योगात्मक (पौलीनेशियन आदि)
    - प्रश्लिष्ट
      - पूर्ण प्रश्लिष्ट (ग्रीनलैंडी आदि)
      - आंशिक प्रश्लिष्ट (बास्क आदि)
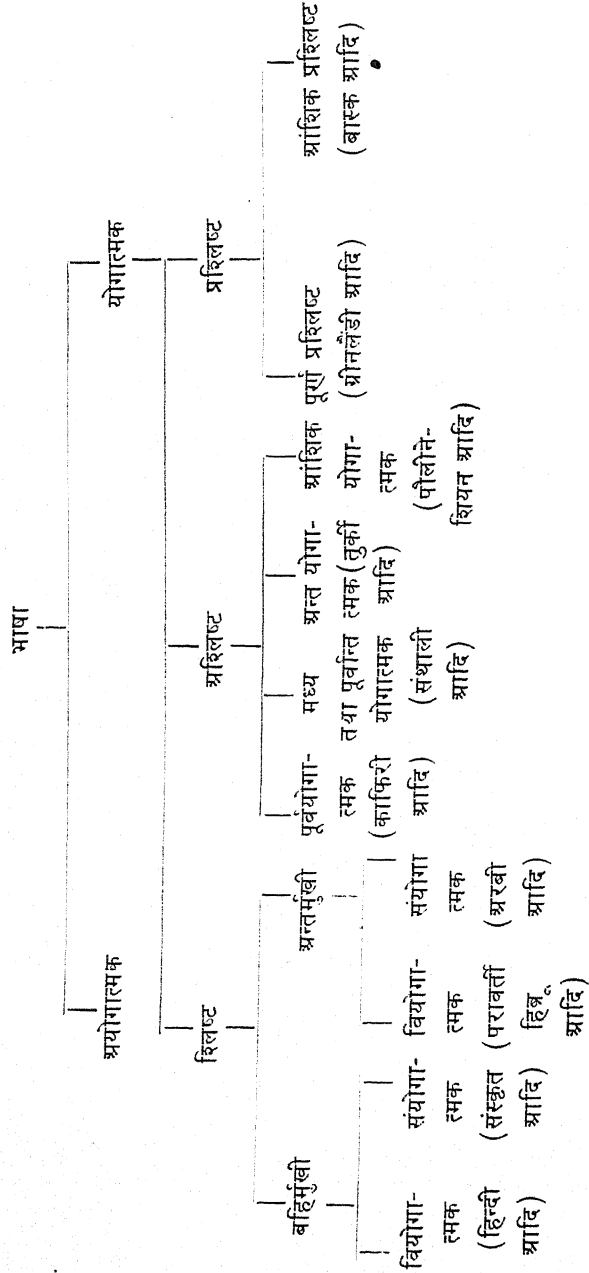
आगम—उच्चारण की सुविधा आदि की दृष्टि से नए स्वरों या व्यंजनों का शब्दों के आदि, मध्य या अन्त में आ जाना। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

आग्नेय परिवार—श्मिट ने इसे आस्ट्रिक (दक्षिणी) परिवार संज्ञा दी है। प्रशान्त सागरीय द्वीपों और यूरेशिया खण्ड में बोले जाने के कारण इसके ये दो वर्ग हो जाते हैं। भारत में इस परिवार की जिन्हें मुण्डा भाषा-परिवार भी कहते हैं, भाषाएँ मुख्यतः छोटा नागपुर, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, मध्य प्रदेश और द्राविड़ प्रदेश के उत्तर में बोली जाती हैं। इनके बोलने वाले संथाल आदि आदिम जातियों के लोग ही हैं। उनकी शरीराकृति आदि भी द्राविड़ भाषियों जैसी ही होती है। शायद दोनों वर्ग परस्पर मिल-जुल गये थे। स्याम बर्मा के जंगलों में, नीकोबार, खासी-जयंतिया पहाड़ियों पर भी ये भाषाएँ बोली जाती हैं।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार इस परिवार की मुख्य विशेषताएँ उनकी वियोगावस्था की ओर क्रमशः बढ़ने वाली अश्लिष्ट योगात्मकता, धातुओं व दो अक्षरों का होना और आदि, मध्य और अंत तीनों ही स्थानों पर सम्बन्ध तत्त्व का लगाया जाना है।

यूरेशिया के आग्नेय परिवार का विभाजन तिवारी जी ने पहले इंडोनेशियन, मान-ख्मेर और मुण्डा इन तीन वर्गों में किया है। इंडोनेशियन में मलय और नीकोबारी और मान ख्मेर में मान-ख्मेर के अतिरिक्त पलौंगबा और खासी भाषाएँ आती हैं। मंगलदेव शास्त्री के अनुसार मान-ख्मेर अलग भाषा परिवार है। मान-ख्मेर और मुण्डा दे० यथास्थान।

आर्य भाषा-परिवार—भारोपीय परिवार का एक प्राचीन नाम। विशेष दे० भारोपीय परिवार।

आट्—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या केवल 43 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

आदर्श भाषा—मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने की दृष्टि में और सभ्यता के विकास की दृष्टि में यह आवश्यक हो जाता है कि कई बोलियों के क्षेत्र में एक बोली आदर्श मान ली जाए और इन सभी क्षेत्रों के लोग पूरे क्षेत्र से सम्बन्धित सामाजिक राजनीतिक आदि कार्यों में उसी का प्रयोग करें। साहित्य आदि में प्रयोग के सहारे एक बोली अन्य बोलियों से आगे निकल जाती है। वह उच्च वर्ग के लोगों की भाषा तथा शिक्षा के माध्यम की भाषा बन जाती है और प्रदेश की राजनीतिक हलचलों में योगदान देती हुई समूचे प्रदेश के शासन तन्त्र की भी भाषा बन जाती है। सामान्यतः प्रदेश के साहित्य और उच्च और शिक्षित वर्ग के व्यवहार की भाषा होना, शिक्षा के माध्यम की भाषा होना और शासन-तन्त्र की भाषा बन जाना—इन तीन मापदण्डों से ही हम उस प्रदेश की आदर्श भाषा को मापते हैं। राजधानी के निकट की बोली

ही प्रायः इस दौड़ में सबसे ग्रागे रहती हैं। अंग्रेजी लन्दन क्षेत्र की बोली मात्र थी ग्रौर इसी प्रकार फ्रेंच पेरिस क्षेत्र की, लेटिन रोम क्षेत्र की, हिंदी (खड़ी बोली) दिल्ली क्षेत्र की बोलियाँ मात्र थीं।

ग्रादर्श भाषा के रूप के स्थिर हो जाने के बाद वह बोली पड़ौसी छोटी - मोटी बोलियों को दबा देती है ग्रौर उससे कम शक्तिशाली बोलियों पर भी थोड़ा-बहुत प्रभाव डालती है। जैसे खड़ी बोली ने ब्रज, ग्रवधी, भोजपुरी सभी को प्रभावित किया है। परन्तु शक्तिशाली बोलियाँ उसके इस शासन को मौन रहकर नहीं मान लेतीं, इसी कारण ग्रादर्श भाषा के रूप पूरे क्षेत्र में मौखिक रूप में एक से ही नहीं होते। इन बोलियों का प्रभाव भी उस पर पड़ता है। यह व्याकरण, उच्चारण ग्रौर शब्द समूह तीनों रूपों में मुखरित होता है। हिंदी खड़ी बोली के रूपों पर भोजपुरी, ग्रवधी, पंजाबी ग्रादि से पड़ता हुग्रा प्रभाव प्रायः दृष्टिगोचर होता है।

ग्रादर्श भाषा के ग्रपने व्याकरण, उच्चारण ग्रौर शब्द-समूह भी तात्कालीन बोली से निश्चित कर दिए जाते हैं। परन्तु इतना सब होने के बाद ग्रादर्श भाषा स्थिर हो जाती है ग्रौर उसकी ग्रपनी बोली विकसित होती रहती है। यद्यपि वह ग्रपनी बोली से बाद में भी ग्रहण करती रहती है, ग्रौर यदि वह यह न करे, तो वह चिरकाल तक जीवित भी नहीं रह सकती, परन्तु फिर भी इन बातों में वह ग्रपेक्षतया स्थिर हो जाती है ग्रौर कम से कम उसका लिखित रूप रूढ़िगत हो जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि ग्राज की हिंदी खड़ी बोली का रूप बोलचाल से 40 वर्ष पीछे है।[1]

प्रायः प्रत्येक भाषा का लिखित रूप मौखिक रूप की ग्रपेक्षा कृत्रिम होता है। बोलियों में उच्चारण मात्र का ग्राधिक्य रहने से यह कठिनाई पैदा नहीं होती, पर ग्रादर्श भाषा में यह कृत्रिमता ग्रधिक स्पष्ट हो जाती है यद्यपि उस रूप के ग्रादर्श रूप रहने के कारण वह खटकती नहीं है। इस प्रकार ग्रादर्श भाषा के दो रूप हो जाते हैं— (1) ग्रादर्श उच्चरित रूप ग्रौर (2) ग्रादर्श लिखित रूप। इन दोनों रूपों में कुछ न कुछ ग्रन्तर तो रहता ही है।

ग्रादिवासी—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना पत्र के ग्रनुसार इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की जनसंख्या कुल 1 है ग्रौर यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

ग्राधार सिद्धान्त—हाल में ग्राधार सिद्धान्त (या सब्सट्रेटम थ्योरी) को बहुत महत्त्व दिया गया है। एक वयस्क व्यक्ति दूसरी भाषा सीखते समय नवीन भाषा पर ग्रपनी मातृभाषा (पहली भाषा) के उच्चारण विषयक ग्रनेक गुण ग्रारोपित कर देता है ग्रौर उसका सुर, बल, लहजा ग्रादि पुरानी भाषा के ही रहते हैं। इस प्रकार

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ 40।

प्रत्येक देश की भाषा का प्रभाव वहाँ आई हुई विदेशी भाषा पर पड़ता है।[1] यही आधार सिद्धान्त है। प्रथम जर्मन वर्ण परिवर्तन के मूल में आदिवासी जनता की ध्वनि सम्बन्धी इसी आदत को कारण स्वरूप उद्धृत किया जाता है।

इस प्रकार भाषा के परिवर्तन में इसका विशेष हाथ माना जाता है। बोलियों के बनने में भी यह योग देता है। इसके कारण वर्ग विशेष की भाषा में स्थानानुसार अन्तर आ जाता है। एक ही लैटिन के स्पेनिश और फ्रेंच (गालिश) दो बोलियों में बदल जाने में यह भी एक कारण था। अंग्रेजी की कुछ ध्वनियों (जैसे त् थ् ट्) के उच्चारण हमने अपनी ध्वनियों के प्रकाश में सीखे हैं और इस कारण हमारी अंग्रेजी मूल अंग्रेजी ध्वनियों से भिन्न हो गई है।

जैस्पर्सन आदि ने भाषा के विकास में इस सिद्धान्त की महत्ता मानी है। परन्तु इस स्वयंसिद्धि का आधार लेने से पहले जीवित जनसमुदाय में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या कर लेना आवश्यक है।

आधारी—इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या 2 है और यह भारत के मध्यभाग में बोली जाती है।

आधियाना—1954 में प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की जनसंख्या 2 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

आबू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 100 है। यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

आर्मेनियन—भारोपीय परिवार के सतम् वर्ग की एक शाखा। कुछ लोग ईरानी शब्दों की प्रचुरता के आधार पर इसे ईरानी भाषा के अंतर्गत भी रखते हैं। इसमें प्राचीन साहित्य के चिह्न मिलते हैं। कुछ कीलाक्षर लेख भी मिले हैं। पर आजकल इसमें चौथी-पाँचवी शताब्दी का ईसाई साहित्य ही उपलब्ध होता है। प्रमाणित लेख तो 11वीं सदी से मिलते हैं। 9वीं सदी में इंजील का अनुवाद किया गया था। धार्मिक कार्यों में आज भी प्राचीन आर्मेनियन का प्रयोग होता है। इसके व्यंजन संस्कृत से बहुत मिलते-जुलते हैं जैसे संस्कृत दशन् और फारसी दह के स्थान पर आर्मेनियन तस्न, पर इसके स्वर ग्रीक से मिलते-जुलते हैं।

फ्रिजियन (जो हालैण्ड की ट्यूटानिक भाषा फ्रिजियन से भिन्न है) भी इससे सम्बद्ध मानी जाती है। आर्मेनियन स्लैवोनिक और भारत-ईरानी शाखाओं के बीच की कड़ी मानी जाती है। वर्तमान आर्मेनियन के दो रूप हैं। अराराट (एशिया) और स्तंबुल (यूरोप)। इनका क्षेत्र कृष्ण सागर और कुस्तुनतुनियाँ के पास है। स्तंबुल साहित्य की भी भाषा है।

आर्य भाषा—डा० सुनीति कुमार चटर्जी के शब्दों में आर्य भाषा हमारे लिए एक सबसे बड़ी विरासत या रिक्थ है। भारत में विगत लगभग 3500 वर्षों से इसका

1. ब्रिटिश विश्वकोष।

अनवरत विकास हो रहा है। इसके पूर्व प्रायः 1000 वर्ष तक का इसका धूमिल इतिहास एशिया माइनर, ईराक और ईरान में उपलब्ध है। उससे भी प्रायः 500 या 1000 वर्ष के इतिहास का अन्दाज भी भाषा-सम्बन्धी सामग्री के आधार पर विद्वानों द्वारा लगाया गया है। डा० चटर्जी के अनुसार 500 ई० पू० के आस-पास प्राचीन भारतीय आर्यभाषा मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषा में परिवर्तित हो गई और 1000 ई० के आस-पास नव्य-भारतीय आर्यभाषाएँ विकसित हुई।

आसामी—आसामी या असमिया आसाम प्रदेश की भाषा है और प्राच्य क्षेत्र की (बाहरी विभाग की) सबसे आखिरी भाषा है। यह व्याकरण और शब्दसमूह की दृष्टि से बंगला के बहुत निकट है, परन्तु दोनों का भेद भी स्पष्ट है और यह भी उड़िया की भाँति बंगला की बहन ही है, बेटी नहीं। यह बंगला लिपि के ही एक सुधारे गए रूप में लिखी जाती है।

आस्ट्रेलिया परिवार—प्रशान्त महासागरीय भाषा खण्ड का यह भाषा परिवार, जैसा नाम से ही प्रकट है, आस्ट्रेलिया महाद्वीप में फैला हुआ है। पहले टस्मानिया में भी इस परिवार की बोलियाँ बोली जाती थीं, पर वे अब लुप्त हो गई हैं और आस्ट्रेलिया में भी इस परिवार की बोलियों का प्रयोग कम होता जा रहा है। इस परिवार की प्रमुख भाषा मैक्वारी झील के आस-पास बोली जाने वाली मैक्वारी भाषा है। इसके निकट ही एक कपिलरोई भाषा भी बोली जाती है। इस परिवार का सम्बन्ध द्राविड़ परिवार से जोड़ने के लिए किये गए प्रयत्नों में सफलता नहीं मिली। ये भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक हैं, जिनमें प्रत्यय अन्त में लगता है।

आस्ट्रोनेशिया परिवार—प्रशान्त महासागरीय भाषा खण्ड की भाषाओं के परिवार का एक नाम। विशेष दे० प्रशान्त महासागरीय खण्ड।

इ

इ (1)—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अननुनासिक तथा अननुनासिक होने से छः प्रकार की होती है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह संवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। बाबू श्यामसुन्दरदास के मत से इसके उच्चारण में जिह्वा स्थान ई की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा पीछे मध्य की ओर रहता है और होंठ फैले और ढीले रहते हैं। उदा० इमली, बधिर, गति।

इ (2)—उच्चारण की दृष्टि से इसका इ (1)से कोई भेद नहीं है। डा० बाबूराम सक्सेना के मत से (दे० अवधी का विकास) यह अवधी, ब्रज आदि बोलियों के शब्दों के अन्त में आने वाली ध्वनि है। बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार इसमें और 'इ' में इतना ही अन्तर है कि इ नाद और घोष ध्वनि है, जब कि यह जपित (फुसफुसाहट वाली) ध्वनि है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार भी इसके उच्चारण में स्वर तन्त्रियाँ घोष ध्वनि उत्पन्न नहीं करतीं, बल्कि फुसफुसाइट वाली ध्वनि उत्पन्न करती हैं। उदा० ब्रज—आवत्इ; अवधी—गोल्इ।

इंडो-कैल्टिक परिवार—भारोपीय परिवार का एक प्राचीन नाम। विशेष दे० भारोपीय परिवार।

इंडो-जर्मन भाषा-परिवार—भारोपीय परिवार का एक अन्य नाम। विशेष दे० भारोपीय परिवार।

इंडोनेशिया परिवार—प्रशान्त महासागरीय भाषा खण्ड के इस परिवार का एक अन्य नाम मलायन परिवार भी है। यह परिवार विशेष विकसित नहीं हुआ है। एक ही शब्द से संज्ञा, क्रिया और क्रिया विशेषण आदि सभी कार्य लिए जाते हैं। बहुवचन के लिए प्रायः वीप्सा का प्रयोग होता है। संस्कृत शब्द भी मिलते हैं और पोर्चुगीज, डच, अरबी और फारसी का भी प्रभाव है, जो इस प्रदेश के इतिहास की देन है। थोड़े से परिवर्तन के साथ देवनागरी, रोमन और अरबी तीनों लिपियों का प्रयोग किया जाता है। पद-रचना आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में सम्बन्ध-तत्व जोड़कर की जाती है। मलय वर्ग में मलय (मलाया प्रायद्वीप, सुमात्रा का भाग और बोर्नियो में), बत्तक (जिसकी बत्तक, आकीनोज और लपोग बोलियाँ सुमात्रा में बोली जाती हैं), जावानीज (जिसके उच्च राजकीय रूप क्रोमो और निम्न रूप न्गोको जावा में ही बोले जाते हैं), सुन्दीयन (जावा में ही), दयक (बोर्नियों में) और बुघी और

मकासार भाषाएँ सेलीबीस में बोली जाती हैं। दूसरा वर्ग तगाल भाषाओं का है—जिसमें तगाल (फिलीपीन्स), फारमोसन (फारमोसा), हॉवा (मैडागास्कर में) और लदोर्नी (लदोर्न द्वीप में) भाषाएँ आती हैं।

इंदोई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 33 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

इंपुइरो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 337 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

इडो—यह भाषा एसपिरेंतो (दे० यथा०) भाषा से पैदा हुई है और एसपिरेंतो के इडो (बच्चा, जन्म हुआ) शब्द के अनुसार ही उसे यह नाम दिया गया है। काटुरट आदि विद्वानों का विचार था कि ऐसपिरेंतो को और भी सरल बनाया जा सकता है। इन लोगों की चेष्टाओं के फलस्वरूप ही नवीन परिवर्तन और अपेक्षतया अधिक उपयोगी 'इडो' भाषा का जन्म हुआ। इस भाषा में एसपिरेंतो की कुछ कठिनाइयों को दूर कर दिया गया है और यह अपेक्षतया अधिक उपयोगी बन गई है। पर इतना सब होने पर भी किसी भी कृत्रिम भाषा का विश्व भाषा बन सकना संदेहास्पद ही है। (विशेष दे० एसपिरेंतो)।

इनकारी भाषा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 946 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

इनको—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 22 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

इमग्राओ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

इलीरियन—भारोपीय परिवार के सतम् वर्ग की एक शाखा। अब इसमें एल्बेनियन ही प्रमुख भाषा है। उसके कारण इस शाखा को भी एल्बेनियन शाखा कहते हैं। पहले ये भाषाएँ एड्रियाटिक सागर के आस-पास इटली के दक्षिणी पूर्वी भाग में बोली जाती थीं। एल्बेनियन भाषी अल्बेनिया और यूनान के मध्य भागों में रहते हैं। उत्तर में घेघ और दक्षिण में टोस्क वर्ग की बोलियाँ बोली जाती हैं। 17वीं सदी से पूर्व का सामग्री के अभाव के कारण कोई अध्ययन नहीं हो सका है। एल्बेनियन पर तुर्की, स्लावोनिक, लैटिन और ग्रीक शब्द भंडारों का बहुत प्रभाव पड़ा है। वे शब्द बिलकुल घुल-मिल गए हैं।

इलीरियन शाखा में इलीरिन और एपिरा दो वर्ग हैं। पहले में वेनेटियन और लिबर्नियन भाषाएँ आती हैं और दूसरी में उक्त घेघ और टोस्क बोलियों वाली एल्बेनियन तथा मेस्सापियन आती हैं।

ई

ई—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु है, आभ्यंतर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह उदात्त अनुदात्त और स्वरित के अनुनासिक और अननुनासिक होने से छः प्रकार का होता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह संवृत दीर्घ अग्र स्वर है और इसके उच्चारण में जीभ का अगला भाग इतना ऊपर उठ जाता है कि कठोर तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। बाबू श्यामसुन्दरदास के मत से यद्यपि जिह्वाग्र कठोर तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है, तो भी वह प्रधान स्वर 'ई' की अपेक्षा नीचा ही रहता है और होंठ भी फैले रहते हैं। उदा० ईख, अहीर, आती।

ईषत्स्पृष्ट—एक आभ्यन्तर प्रयत्न। य, र, ल और व का आभ्यन्तर प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

ईषद्विवृत—कुछ वैयाकरणों के मत से श, ष, स और ह का आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद्विवृत है। अन्य विद्वान् स्वरों के साथ इनका भी आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत ही मानते हैं। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

उ

उ (1)—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह उदात्त अनुदात्त और स्वरित के अनुनासिक और अननुनासिक होने से छः प्रकार का होता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से यह संवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। बाबू श्यामसुन्दर दास के मत से इसके उच्चारण में जिह्वामध्य अर्थात् जीभ का पिछला भाग कण्ठ की ओर काफी ऊँचा उठा रहता है। पर दीर्घ ऊ की अपेक्षा नीचा तथा आगे मध्य की ओर झुका रहता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसके साथ होंठ गोल किए जाते हैं। उदा० उस, मधुर, ऋतु।

उ (2)—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिन्दी की कुछ बोलियों में फुसफुसाहट वाला उ भी पाया जाता है। बाबू श्यामसुन्दर दास के मत से यह जपित (दे० यथा०) ह्रस्व संवृत पश्च वृत्ताकार स्वर है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से यह अघोष उ ब्रज तथा अवधी में शब्दों के अन्त में आता है। उदा० ब्रज—जातउ, आवत्उ, अवधी—ऊँटउ, भोरउ।

उच्चारण स्थान—वर्णों के उच्चारण के लिए जीभ के साथ-साथ प्रयुक्त होने वाले मुख के अन्य अंग। विशेष विवरण के लिए दे० स्थान, सवर्ण।

उड़िया—उड़िया या ओड़िया का प्राचीनतम रूप 13वीं सदी के एक शिलालेख में देखने को मिलता है। इसका व्याकरण बंगला से मिलता-जुलता होने के कारण कुछ विद्वान् इसे बंगला की एक बोली मानते रहे थे, परन्तु वे दोनों परस्पर बहनें हैं। तेलंग और भोंसले नरेशों तथा मुसलमानों और अंग्रेजी राज्य के कारण तेलुगू, मराठी, अरबी, फारसी और अंग्रेजी ने इसके शब्द समूह पर प्रभाव डाला है। उड़िया लिपि काफी कठिन है।

उत्तरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

उत्क्षिप्त—हिंदी की ड़, ढ़ ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं। चटर्जी और कादरी आधुनिक र् को भी उत्क्षिप्त (अंग्रेजी फ्लेप्ड) मानते हैं, लुंठित नहीं। इनका उच्चारण डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार जीभ की नोक को उलट कर नीचे के हिस्से से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है। ये हिंदी की नवीन ध्वनियाँ हैं। इन ध्वनियों पर पृथक् टिप्पणी यथास्थान देखिए।

उदात्त—स्वरों का एक बाह्य प्रयत्न। तालु आदि स्थानों में ऊर्ध्व भाग में निष्पन्न होने वाला स्वर उदात्त होता है। दे० पाणिनिसूत्र 'उच्चैरुदात्त : 1/2/29/' विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

उपचयात्मक—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अश्लिष्ट योगात्मक।

उपध्मानीय—कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च (पाणिनि सूत्र 8/3/37) के अनुस्वार पवर्ग से पहले आने वाली विसर्ग विकल्प से एक बार ≍ हो जाती है। इसे उपध्मानीय कहते हैं।

उपसर्ग—क्रिया से पहले लगाए जाने वाले परिगणित निपात उपसर्ग कहे जाते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में उपसर्ग उस अक्षर या अक्षर समूह को कहते हैं, जो शब्द रचना के लिए शब्द के पहले लगाया जाता है। उपसर्ग से धातु का अर्थ बदल जाता है; यह अन्तर प्रहार, आहार, संहार, विहार और परिहार में भली भाँति प्रकट है—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।

तत्सम उपसर्ग कुल 22 हैं : प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि और उप।

पाणिनि इनको गतिसंज्ञक[1] भी बताते हैं। कामताप्रसाद गुरु द्वारा हिंदी के कुछ तद्भव उपसर्ग गिनाए गए हैं (दे० हिन्दी व्याकरण § 435क) और डा० धीरेन्द्र वर्मा ने उनको उद्धृत किया है :—

1. अ या अन; (निषेधात्मक); अजान, अनमोल, अनचाहा।
2. अध (आधा); अधपका, अधबूढ़ा।
3. उन (एक कम); उन्तीस, उनसठ।
4. औ (हीन); औगुन।
5. दु (बुरा); दुकाल, दुबला।
6. दु (दो); दुधारा, दुमुहा।
7. नि (रहित); निडर, निकम्मा।
8. बिन (अभाव); बिन व्याहा।
9. भर (पूरा); भरसक, भरपेट।

फिर कुछ अरबी-फारसी या अंग्रेजी के उपसर्ग हिंदी के प्रचलित उपसर्ग बन गए हैं।

अरबी-फारसी

1. कम (थोड़ा); कमजोर, कम दाम।
2. खुश (अच्छा); खुशदिल, खुशकिस्मत।

---

1. 'उपसर्ग : क्रियायोगे' पाणिनिसूत्र 1/4/59 तथा 'गतिश्च' पाणिनिसूत्र 1/4/60।

3. गैर (भिन्न); गैरहाजिर।
4. दर (में); दरअसल।
5. ना (अभाव); नापसंद, नालायक।
6. ब (अनुसार); बदस्तूर, बदौलत।
7. बद (बुरा); बदमाश, बदनाम।
8. बिला (बिना); बिलाकसूर, बिलाशक।
9. बे (बिना); बेकार, बेईमान।
10. ला (बिना); लाचार, लावारिस।
11. सर (मुख्य); सरपंच, सरदार।
12. हम (साथ); हमदर्दी, हमउम्र।
13. हर (प्रत्येक); हरघड़ी, हररोज।

अंग्रेजी

1. सब (छोटा); सब रजिस्ट्रार।
2. डिप्टी (छोटा); डिप्टी कलक्टर।
3. हेड (मुख्य); हेड पंडित, हेडमास्टर।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से संस्कृत के तत्सम उपसर्ग आधुनिक भाषाओं में आते-आते नष्टप्राय हो गए हैं, किन्तु अब भी कुछ ऐसे हैं, जो थोड़े या अधिक परिवर्तनों के साथ आधुनिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। कुछ काल से हिंदी में तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ जाने के कारण उपसर्गों के तत्सम रूपों का फिर व्यवहार होने लगा है।

उभेंड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे उभाड़ी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

उमतवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 184 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

उरस्य—काकल में उत्पन्न होने वाली ध्वनि (हिंदी ह्, अंग्रेजी एच) को काकल्य के साथ-साथ उरस्य भी कहते हैं।

उराव—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

उरानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

उर्दू—हिंदी (दे० यथा०) के एक दूसरे साहित्यिक रूप या शैली का नाम उर्दू है, जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग और संस्कृत शब्दों का बहिष्कार होता है। हिंदी प्रदेश के मुसलमानों और हिंदी के उत्तर पश्चिमी भाग में इस शैली का विशेष प्रयोग देखा जाता है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से दोनों भाषाओं में विशेष अन्तर नहीं है। परन्तु शब्दसमूह, लिपि और प्रेरणा की दृष्टि से यह अन्तर विशेष बढ़ जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में हिंदी इन सब बातों के लिए भारत की

प्राचीन संस्कृति तथा उसके वर्तमान रूप की ओर देखती है, उर्दू भारत के वातावरण में उत्पन्न होने और पनपने पर भी फारस और अरब की सभ्यता और साहित्य से जीवन श्वास ग्रहण करती है । उर्दू का प्रयोग उर्दू-ए-मुअल्ला (शाही फौजी बाजार) में सबसे पहले हुआ था, जहाँ तुर्की-फारसी-अरबी विदेशियों की सुविधा के लिए प्रचलित राष्ट्रभाषा खड़ी बोली हिंदी की भूमि पर इन विदेशियों के शब्दसमूह के फल खिलाये गये ।

ऊ

ऊ—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा वाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के अनुनासिक और अननुनासिक होने से छः प्रकार का होता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से यह संवृत दीर्घ पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में बाबू श्यामसुन्दर दास के मत से ह्रस्व उ की अपेक्षा ओठ भी अधिक संकीर्ण (बन्द से) और गोल हो जाते हैं तथा यह वृत्ताकार स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग उठकर कोमल तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। उदा० ऊसर, मसूर आलू।

ऊष्म—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार श ष स ह ऊष्म वर्ण हैं (दे० शषसहा ऊष्माणः—सिद्धान्त कौमदी)। उनके उच्चारण में बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार 'शी-शी' के समान ऊष्मा निकलता है, अतः इन्हें ऊष्म ध्वनि कहते हैं।

ऊष्मीकरण—कण्ठ्य आदि ध्वनियों को ऊष्म कर देने की प्रवत्ति। यह ध्वनि परिवर्तन की एक दिशा है। (विशेष दे० ध्वनि परिवर्तन)

ए

ए (1)—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कण्ठ तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अनुनासिक और अननुनासिक होने से छः प्रकार का होता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में यह अर्द्ध संवृत दीर्घ अग्र स्वर है और इसका उच्चारण स्थान प्रधान स्वर ए से कुछ नीचा है। इसके उच्चारण में होंठ प्रधान स्वर ई की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं। उदा० एटा, अनेक, गए।

ए (2)—डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से यह अर्द्ध विवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में जिह्वाग्र ए की अपेक्षा कुछ नीचा तथा अन्दर की ओर झुका रहता है। हिन्दी का संयुक्त स्वर ऐ शीघ्रता से बोलने में मूल ह्रस्व स्वर ए हो जाता है। इसका प्रचुर प्रयोग ब्रजभाषा काव्य में दिखाई देता है। उदा० 'सुत गोद कै भूपति लै निकसे' में 'कै' में।

ए (3)—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह अर्द्ध विवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इसका उच्चारण स्थान प्रधान स्वर 'ए' से कुछ ऊँचा है। यह ब्रजभाषा की ही विशिष्ट ध्वनि है। उसमें संयुक्त स्वर ऐ (अ ए) के स्थान पर यह मूल स्वर ही बोला जाता है। उदा० ऐसो, कैसो।

हिन्दुस्तानी के संयुक्त स्वर 'ऐ' को कादरी (हिन्दुस्तानी फोनेटिक्स पृ० 51) संयुक्तस्वर न मान कर मूल स्वर ही मानते हैं। डा० सुनीति कुमार चटर्जी भी बंगला ऐ को मूल स्वर मानते हैं (बंगाली लैंग्वेज §140)। बेली ने भी पंजाबी ऐ को मूल स्वर माना है। डा० धीरेन्द्र वर्मा इन सबके उद्धरण देते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वास्तव में हिन्दी ऐ साधारणतः संयुक्त स्वर है किन्तु जल्दी बोलने में इसका मूल ह्रस्व स्वर ए जैसा उच्चारण हो जाता है।

ए (4)—घोष ए का यह जपित (फुसफुसाहट वाला) रूप है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में इसका उच्चारण स्थान ए के समान ही है और भेद केवल घोष ध्वनि और फुसफुसाहट वाली ध्वनि का है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार साहित्यिक हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी में इसका प्रयोग न होने तथा केवल पूर्वी हिन्दी में (जो एक स्वतन्त्र भाषा है) इसका प्रयोग होने के कारण इसका विवेचन यहाँ अनावश्यक है। डा० बाबूराम सक्सेना इसे अवधी की ध्वनि बताते हैं (दे० अवधी का विकास §58)। ब्रजभाषा में शायद यह ध्वनि नहीं मिलती। उदा० कहेसए।

ए (5)—इस ध्वनि का प्रयोग साहित्यिक हिन्दी में तो नहीं, पर उसकी विभाषाओं और बोलियों में होता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह अर्द्धसंवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का अग्र भाग ए की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा बीच की ओर झुका हुआ रहता है। उदा॰ ब्रज—अवधेस के द्वारे सकारे गई (कवितावली—1) अवधी—ओहि केर बेटवा।

एकाच्—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अयोगात्मक।

एकाक्षर—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अयोगात्मक।

एकाक्षर-परिवार—सम्पूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया—चीन, तिब्बत, बर्मा, स्याम, अनाम और हिमालय के अन्दर के प्रदेश में बोली जानी वाली भाषाओं का परिवार। कुछ विद्वान् जापान तथा कोरिया की भाषाओं की गणना भी इसी परिवार में करते हैं, अन्य उन्हें यूराल-अल्टाइक परिवार में रखते हैं। बोलने वालों की जनसंख्या की दृष्टि से एकाक्षर-परिवार विश्व में सबसे बड़ा है।

इस परिवार की मुख्य भाषा चीनी है। वह शेष में से अधिकांश आर्य-परिवार की भाषाओं से प्रभावित हो चुकी है। चीनी में 3,000 ई० पू० तक का प्राचीन-साहित्य मिलता है। ई० पू० की 5वीं सदी में चीन के वेदव्यास महात्मा कनफ्यूशियस ने चीन के प्राचीन इतिहास ग्रन्थों (शु किंग) का सम्पादन किया था। प्राचीन और नवीन चीनी विशेष भिन्न नहीं हैं, न लिपि ही विशेष विकसित हुई है। चीनी में लिपि की विशेष कठिनाई है और इससे भाषाओं में व्यक्ति वाचक नाम तक अनुवाद करके लिखने पड़ते हैं क्योंकि चीनी लिपि वर्णमाला पर आधारित न होकर शब्द लिपि पर आधारित है। परन्तु इससे एक लाभ, यदि इसे लाभ कहा जाए, रहता है कि विदेशी भाषाओं के शब्द नहीं मिल पाते और शब्द समूह शुद्ध रहता है। अब रोमन लिपि में चीनी भाषा के लिखे जाने के बारे में प्रयत्न किए जा रहे हैं। चीनी में लगभग छः मुख्य बोलियाँ हैं, जिनमें मन्दारिन, कैंटनी और फुकिनी के नाम लिए जा सकते हैं। मन्दारिन साहित्यिक भाषा है, जिसमें 40-42 हजार अर्थ बताने वाले लगभग चार सौ शब्द हैं। चीनी में बोलने की भाषा लिखने की भाषा से भिन्न है।

इस परिवार की दूसरी मुख्य भाषा अनामी है, जो कोचीन, चीन और कम्बोडिया में बोली जाती है। इसका शब्द समूह चीनी के कुछ उधार लिए गए शब्दों को छोड़ सर्वथा अपना है। प्राचीन लिपि भी चीनी ही थी, अब रोमन लिपि अपना ली गई है। इसके बाद स्यामी या थाई (तई) भाषा का उल्लेख किया जा सकता है। इसकी एक बोली खम्ती आसाम और बर्मा की सीमा पर भी बोली जाती है।

इस परिवार की तिब्बती या भोट भाषा में यह एकाक्षरता या अयोगात्मकता चीनी की अपेक्षा कुछ कम है। इसकी लिपि भी ब्राह्मी से प्रभावित है और भारत की समीपता के कारण आर्य-परिवार का भी इस पर बहुत प्रभाव पड़ा है। मुण्डा

भाषाओं के बहुत से लक्षण भी इसने आत्मसात् कर लिए हैं। इन बोलियों के सार्व-नामिक और असार्वनामिक दो वर्ग किये गए हैं, पहले में किरात और कनौरदामी उपवर्ग आते हैं, दूसरा वर्ग नेपाल, भूटान, सिक्किम की बोलियों का है। इसका एक अन्य वर्ग बर्मी, आसामी भी है। मनीपुर की प्राचीन साहित्यिक भाषा पेईथेई भी इसी में आती है। इस भाषा की प्रमुख विशेषता क्रियार्थक संज्ञाओं का प्रचलन और शुद्ध क्रियाओं का अभाव है। बर्मी लिपि भी तिब्बती की भांति ब्राह्मी से प्रभावित है।

भोलानाथ तिवारी ने इस परिवार की भाषाओं का विभाजन निम्न प्रकार से किया है। पहले चीनी, अनामी, स्यामी और तिब्बती-बर्मी वर्ग आते हैं। चीनी में मन्दारिन, फुकिनी, कैंटनी और हक्का बोलियाँ हैं। अनामी में टोंकनी, कोचीन-चीनी और कम्बोडियाई बोलियाँ हैं। स्यामी में स्यामी, शान, अहोम और खम्ती बोलियाँ हैं। तिब्बती-बर्मी ने पहले तिब्बती और बर्मी-आसामी दो उपवर्ग हैं। तिब्बती में तिब्बती, वाल्दी, लदखी और सर्वनामिक और असर्वनामिक दो हिमालयी भाषा-वर्ग आते हैं। बर्मी-आसामी में बोदो, नागा, कचिन, कुकीचिन (मेई थेई), बर्मी (अरा-कानी और दावे) तथा लोलो भाषाएँ आती हैं।

इस परिवार की विशेषताओं के लिए विशेष दे० अयोगात्मक भाषाएँ। इसमें शब्द प्राय: एक अक्षर (सिलेविल) के होते हैं, जो सुर या लहजे से अनेक अर्थ प्रकट करते हैं। दो-दो अक्षरों के साहचर्य से भी नये अर्थ घोषित किये जाते हैं। अनुनासिक ध्वनियों का प्रचुर प्रयोग होता है। व्याकरण का प्राय: अभाव है। कुछ अक्षर ही कभी सहायक शब्द के रूप में सम्बन्ध-तत्व का कार्य वहन करते हैं।

एक्सरे—स्पर्श ध्वनियों के उच्चारण स्थान तो कृत्रिम तालु की सहायता से जाने जा सकते हैं, पर अन्य अस्पर्श व्यंजनों और स्वरों के उच्चारण स्थानों और उनके उच्चारण में जीभ की स्थिति का पता इससे नहीं चल सकता। इसके लिए एक्सरे की सहायता ली जाती है और फोटो लेने पर प्रत्येक ध्वनि के उच्चारण में जीभ के स्थान का पता चल जाता है। वैसे एक्सरे मूलत: चिकित्साशास्त्र के ही उपयोग का यंत्र है, पर ध्वनियों के ज्ञान में सहायक सिद्ध होने के कारण भाषा-विज्ञान के अध्ययन में भी उसने पर्याप्त योगदान दिया है।

एत्रुस्कन—विश्व की उन अनिश्चित और प्राचीन भाषाओं में से एक जो अब तक किसी भी परिवार में वर्गीकृत नहीं की जा सकी है। यह रोमन साम्राज्य की स्थापना से भी पूर्व इटली के उत्तरी और मध्य भाग में बोली जाती थी। पहले कुछ विद्वान् इसका सम्बन्ध भारोपीय परिवार से ही लगाते थे, परन्तु कुछ शिलालेखों आदि से यह धारणा बदलनी पड़ी है। खोज के अभाव में इस भाषा के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

एनू—विश्व की उन वर्तमान अनिश्चित भाषाओं में से एक, जिनका किसी भाषा परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। यह भाषा उत्तरी जापान के कुछ द्वीपों में बोली जाती है। इसमें साहित्य का विशेष अभाव है। यह अश्लिष्ट योगात्मक है।

एलामाइट—विश्व की उन अनिश्चित और प्राचीन भाषाओं में से एक, जिनका किसी भाषा-परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। इस भाषा की विशेष सामग्री उपलब्ध न होने से इसके बारे में विशेष कुछ कह सकना सम्भव नहीं है।

एलामी— 1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

एसरगेही—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 6 हैं। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

एसपिरेंतो—प्रसिद्ध भाषा विज्ञान विशारद डा० एल० एल० जमेनहाफ ने बहुत-सी भाषाओं के व्याकरणों के विश्लेषण के बाद 1887 में यह भाषा गढ़ी। इससे पहले भी एक विश्वभाषा गढ़ने के लिए कई प्रयत्न किये गए थे, पर इनमें यह सर्वाधिक सफल रहा। एसपिरेंतो लेटिन शब्द है, जिसका अर्थ है 'आशापूर्ण'। इस भाषा में कुल 16 ऐसे नियम थे जिन्हें एक साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी सरलता से आध घंटे में सीख सकता था। तुर्की की भाँति स्पष्ट सम्बन्ध तत्वों और सादृश्य के सहारे इसका भवन-निर्माण किया गया था। इसमें अपवाद नहीं होते और सप्ताह भर में इसे आसानी से सीखा जा सकता है। लिपि रोमन अवश्य है, पर इसके सर्वथा ध्वन्यनुकूल होने से पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। शब्द समूह का आधार भारोपीय है और वह धातुओं पर आधारित है। आधी से अधिक धातुएँ लेटिन से और शेष आधी से कुछ अधिक ट्यूटानिक भाषाओं से ली गई हैं। शेष 10 प्रतिशत धातुएँ अन्य भाषाओं की हैं।

उदाहरण के लिए—

कैट (Ket) बिल्ली
इन (in) स्त्रीलिंग का चिह्न
इड (id) बच्चों का चिह्न
एट (et) छोटे का चिह्न
ओ (o) संज्ञा का चिह्न

तदनुसार—

केट-इन-ओ (Ket-in-o)—एक बिल्ली (स्त्री)
कैट-इड-ओ (Ket-id-o)—एक बिल्ली का बच्चा
कैट-इन-एट-इड-ओ (Ket-in-et-id-o)—एक छोटी बिल्ली का बच्चा। (स्त्री०)

जैसा प्रत्येक नए आविष्कार के साथ होता है, पहले कोई इसकी ओर आकर्षित नहीं हुआ। बाद में लोगों को इसके महत्त्व का ज्ञान हुआ और बड़े-बड़े विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की। राष्ट्रसंघ ने सभी राष्ट्रों से इसे अपनाने के लिए प्रार्थना की। अन्तर्राष्ट्रीय टेलीग्राफिक संघ ने भी 1925 में इसकी सराहना करते हुए इसे उपादेय

बताया। 1927 में संसार के 44 रेडियो स्टेशनों से इस के सम्बन्ध में और इस भाषा में भाषण दिये गए। इसमें कुछ मौलिक पुस्तकें निकलीं। अनुवाद बहुत अधिक हुए। इसमें कुछ समय पहले तक 100 से अधिक पत्रिकाएँ निकलती रही हैं और इसमें अब तक सब मिलाकर लगभग पाँच हजार पुस्तकें और पत्रिकाएँ हैं। परन्तु इसकी सबसे बड़ी कमी यही है कि यह किसी भी राष्ट्र की जीवित भाषा नहीं है। इसी कारण विश्वभाषा तो क्या यह एक भी देश की भाषा न बन सकी। आज सभी जानते हैं कि संयुक्तराष्ट्र संघ का काम पाँच भाषाओं में होता है।

एसपिरेंतो की कुछ कठिनाइयाँ दूर करने के लिए उससे उसके बच्चे 'इडो' का भी जन्म हुआ है। विशेष दे० इडो।

ऐ

ऐ—संस्कृत-वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कंठतालु, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। यह अनुदात्त और स्वरित के अनुनासिक तथा अननुनासिक होने से छः प्रकार की होती है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से यह संयुक्त स्वर हिन्दी में शीघ्रता से बोलने में ए मूल ह्रस्व-स्वर हो जाता है। कादरी हिन्दुस्तानी में, वेली पंजाबी में और चटर्जी बंगला में इसे संयुक्त स्वर न मानकर मूल ह्रस्व स्वर ही मानते हैं। और दे० 'ए'।

ऐतिहासिक वर्गीकरण—अर्थ तत्व और भाषा-सामग्री और उसके ऐतिहासिक विकास और सान्निध्य आदि को ध्यान में रखकर किया जाने वाला भाषाओं का एक प्रकार का वर्गीकरण। इसे पारिवारिक वर्गीकरण भी कहते हैं। विशेष दे० पारिवारिक वर्गीकरण।

ऐतिहासिक व्युत्पत्ति—व्युत्पत्ति के सामान्य नियमों का पालन करते हुए की जाने वाली व्युत्पत्ति को ऐतिहासिक व्युत्पत्ति या अलौकिक व्युत्पत्ति कहते हैं। विशेष दे० व्युत्पत्ति शास्त्र।

ऐमोल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 335 है और यह पूर्वी भारत में बोली जाती है।

ओ

ओ (1)—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कंठोष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न उदात्त, अनुदात्त और स्वरित है (जो अनुनासिक तथा अननुनासिक के भेद से छः प्रकार का हो जाता है।) आधुनिक भाषाशास्त्रियों के मत से यह अर्द्धविवृत दीर्घ पश्च स्वर है। संस्कृत में यह संयुक्त स्वर था (अ+उ या आ+उ; दे० पाणिनि सूत्र 'आद्गुणः 6/1/87)। संस्कृत के इस नियम के अनुसार अब भी हिन्दी में कुछ लोग इसे संयुक्त-स्वर या संध्यक्षर मानते हैं, पर यह भ्रम मूलध्वनि के प्रभाव में ही चला जा रहा है। अन्यथा संस्कृत और हिन्दी दोनों में ही अब यह मूल स्वर या समानाक्षर है। इसके उच्चारण में होंठ स्पष्ट रूप में गोल हो जाते हैं। उदा० घोड़ा, ओला, ओस, बोतल, ओर, हटो।

ओ (2)—यह ब्रजभाषा की ध्वनि है। बाबू श्यामसुन्दरदास और डा० धीरेन्द्र वर्मा दोनों के ही मत से यह अर्द्धविवृत ह्रस्व पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग अर्द्धविवृत पश्च प्रधान स्वर (आ) की अपेक्षा थोड़ा ऊपर तथा अन्दर की ओर दबा हुआ रहता है। होंठ खुले गोल रहते हैं।

उदा०—अवलोकि हौं सोच विमोचन को (कवितावली रामायण, बालकांड 1); बरु मारिए, मोंहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू। (कवितावली रामायण, अयोध्याकांड 6)।

ओ (3)—यह भी ब्रजभाषा की ध्वनि है। बाबू श्यामसुन्दरदास के मत से यह अर्द्धविवृत दीर्घ पश्च वृत्ताकार स्वर है। प्रधान स्वर ओ से इसका स्थान कुछ ऊँचा है। इसके उच्चारण में होंठ कुछ अधिक खुले गोल रहते है। देवनागरी लिपि में पृथक् चिह्न न होने से इसे ओ या औ लिख देते हैं, ऐसा डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है। उदा० वाको, ऐसो, गयो, भयो आदि।

ओ (4)—बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा दोनों के मत से यह अर्द्धसंवृत ह्रस्व पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में होंठ काफी अधिक गोल किए जाते हैं। प्रधान स्वर ओ की अपेक्षा इसका स्थान अधिक नीचा तथा मध्य की ओर झुका रहता है। ब्रजभाषा और अवधी में इसका प्रयोग पाया जाता है। क्रमशः उदाहरण देखिए—पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं (कवितावली, बालकांड 4), ओहि केर बिटिया (अवधी)।

ओझी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 176 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ओड़िया—उड़िया भाषा का ही रूपान्तर या अन्य नाम । विशेष दे० उड़िया ।

ओडिआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं ।

ओडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

ओडे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है । ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

ओनंगाद—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 32 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

ओरला—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 286 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

ओरहला—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

ओरांव—कुरुख नामक द्रविड़ भाषा का अन्य नाम (दे० कुरुख) । 1954 में प्रकाशित जनगणना-पत्र के अनुसार आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 6,44,042 है । इसे कुरुख भी कहते हैं । यह जनसंख्या निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है : पूर्वी भारत—5,61,441, मध्य भारत—92,537 और अंडमान तथा निकोबार—64 ।

ओरिग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

ओवरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है । ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

ओष्ठ—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला मुख का सबसे बाहर का अंग । विशेष दे० ध्वनि-अवयव ।

ओष्ठ्य—स्पर्श ध्वनियों का पाँचवाँ विभाजन । इनके उच्चारण में जीभ से बिलकुल सहायता नहीं ली जाती । दोनों होठों को छुआकर और श्वांस को रोककर निकालते हुए इनका उच्चारण होता है । संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार उ, पवर्ग, उपध्मानीय ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं । डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार अंत्य ओष्ठ्य ध्वनियों में स्फोट नहीं होता । अंग्रेजी में इन ध्वनियों को लेबिअल कहते हैं ।

औ—इसका उच्चारण-स्थान और प्रयत्न 'ओ' जैसे हैं । विशेष दे० 'ओ' । उदा० और ।

क

क्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कण्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट और बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के मत से यह अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है और इसका उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआकर किया जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है कि प्रा० भा० आ० काल में कवर्ग का उच्चारण कोमल तालु के स्थान की दृष्टि से आजकल की अपेक्षा कदाचित् कुछ अधिक पीछे से होता था, अतः क् उस समय क़् के अधिक निकट रहा होगा। इसलिए कवर्ग का उच्चारण कंठ्य माना जाता था। आजकल उसका उच्चारण स्थान कुछ आगे हट आया है। बाबू श्यामसुन्दर दास ऋक्प्रातिशाख्य से उद्धरण देकर (ऋकारलकारावथ षष्ठ ऊष्मा जिह्वामूलीया, प्रथमश्च वर्गः—पृष्ठ 41) बताते हैं कि पहले कवर्ग जिह्वामूलीय माना जाता था, पीछे कंठ्य हो गया। कंठ्य का अर्थ भी उनके विचार से 'कोमल तालव्य' है, गले से उत्पन्न नहीं। उदा० कल, विकल, पाक।

क़्—यह अरबी-फारसी की ध्वनि है, और जो लोग अरबी-फारसी के शब्दों का तत्सम प्रयोग करना पसन्द करते हैं, वही इसे अपनाए चले आ रहे हैं, अन्यथा हिन्दी की प्राचीन बोलियों में तो क़् का क् हो ही जाता था, आज की साहित्यिक हिन्दी में भी इसे बिना नीचे बिन्दी दिए ही लिखा जाता है। यह बात केवल लिखने की प्रणाली को ही लेकर नहीं है, बोलने में भी हिन्दी ने इसे आत्मसात् कर लिया है, और साधारणतः इसका उच्चारण अरबी-फारसी जैसा नहीं होता। अस्तु, वस्तुतः यह विदेशी ध्वनि है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह तत्सम रूप में अल्पप्राण, अघोष, जिह्वामूलीय, स्पर्श व्यंजन है। इसका स्थान जीभ तथा तालु दोनों की दृष्टि से सबसे पीछे है। इसका उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु के पिछले भाग से छुआ कर किया जाता है। उदा० क़ाबिल, मुक़ाम, ताक़।

कंकन्नी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 29 है। ये लोग अण्डमान-निकोबार में रहते हैं।

कंकेरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9 है। इन में से 7 व्यक्ति भारत के पश्चिमोत्तर और शेष मध्य भाग में रहते हैं।

कंजरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,976 है। इनमें से 22 व्यक्ति भारत के उत्तरी भाग, 13 पश्चिमी भाग, 854 मध्य भाग और 4087 उत्तर पश्चिमी भाग में रहते हैं।

कंठ—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में गटर कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

कंठपिटक—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे स्वर यन्त्र, या कंठपिटक या ध्वनि यन्त्र कहते हैं। अंग्रेजी में इसे लैरिंक्स कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि अवयव।

कंठ्य—स्पर्श ध्वनियों का पहला विभाजन। इनके उच्चारण में ध्वनि यन्त्र से आने वाले घोष या अघोष श्वास को कंठ के पास रोक कर झटके के साथ मुक्त किया जाता है। आधुनिक विद्वान् इन ध्वनियों को कंठ्य स्पर्श न मानकर 'कोमल तालव्य स्पर्श' मानते हैं। इसका कारण यह है कि वस्तुतः इनके उच्चारण में जीभ के पिछले भाग से कोमल तालु का स्पर्श किया जाता है। अ, कवर्ग, ह और विसर्ग इस कोटि में आते हैं। अंग्रेजी में इन ध्वनियों को वेलर कहते हैं।

कचारी दोन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,306 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कचीन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 192 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कच्छी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 74,159 है। इनमें से 661 भारत के पूर्वी भाग, 67,376 पश्चिमी भाग और शेष मध्य भाग में रहते हैं।

कछवाही—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 266 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कटिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,265 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कठोर तालु—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। अंग्रेजी में इसे हार्ड पैलेट कहते हैं। यह जीभ की छत का आगे से कुछ बीच का भाग है। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

कड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 25 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

कताबा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कतवार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 40 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कनवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलनें वालों की संख्या 224 है। ये लोग भारत के उत्तरी भाग में रहते हैं।

कनारी—द्राविड़ परिवार की एक मुख्य भाषा कन्नड़ का एक अन्य नाम। विशेष दे० कन्नड़।

कनौजी—यह ब्रजभाषा और अवधी के बीच के कन्नौज के आसपास के क्षेत्र में, जो जयचन्द्र आदि का राज्यक्षेत्र था, बोली जाती है। यह हिन्दी की एक क्षेत्रीय बोली है। डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है कि इसका विशेषतः इटावा और पीलीभीत की बोली का झुकाव ब्रजभाषा की ओर अधिक है। ब्रजभाषा के सान्निध्य के कारण कनौजी को सबसे बड़ी हानि यह उठानी पड़ी कि वह साहित्य के क्षेत्र में कभी प्रयुक्त न हो सकी। सभी ने ब्रजभाषा को ही अपनाया। कन्नौज वर्तमान फर्रुखाबाद जिले की एक तहसील है। वैसे यह भाषा हरदोई, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, इटावा और कानपुर जिला या उनके भागों में भी बोली जाती है।

कन्नड़—द्राविड़ परिवार (दे० यथा०) की मुख्य भाषाओं में से एक है। यह कुर्ग के पूर्वी भाग, मैसूर (कुछ पूर्वी और दक्षिणी प्रदेश को छोड़कर), पश्चिमी मद्रास, हैदराबाद और बम्बई के कुछ भागों में बोली जाती है। अब प्रायः ये सभी प्रदेश मैसूर राज्य में आ गए हैं। इसकी लिपि पर तो तेलुगु लिपि का प्रभाव पड़ा है, पर भाषा पर तमिल की छाप है। इसकी प्राचीनता का भी दावा किया जाता है। इस भाषा में उत्कीर्ण चौथी-पाँचवीं शताब्दी तक के शिलालेख पाये जाते हैं। इसमें भी पर्याप्त साहित्य है।

कप्सरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

कपेवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

करकुट—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

करमा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

करमाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 7,424 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

करवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

करूम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 105 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

करेनी—बर्मा के उत्तर-पूर्व के करेन प्रदेश की वर्तमान भाषा करेनी को विश्व के

किसी निश्चित भाषा परिवार में नहीं रखा जा सका है। ग्रियर्सन ने पड़ोस की मानी भाषा के साथ इसे पृथक् परिवार में रखा है।

कर्नाटकी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 185 है। ये लोग निम्न प्रकार से बंटे हुए हैं : पूर्वी भारत 38, भारत का मध्य भाग 140 और अंडमान नीकोबार 7।

कलवेली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 59 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कलार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

कलारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 746 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कलिंग लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार[1] यह लिपि मद्रास के चिकाकोल और गंजाम के बीच के प्रदेश में गंगा वेशी राजाओं के दानपत्रों में 7वीं शताब्दी के आसपास से 11वीं शताब्दी तक मिलती है। पहले इसके अक्षरों में मध्य-प्रदेशीय लिपि का अनुसरण दिखाई देता है, पीछे परिवर्तन होता गया। परवर्ती दान-पत्रों में यह अन्तर अधिक स्पष्ट हो जाता है। उनमें अक्षर समकोण रूप नहीं, बल्कि तेलुगु, कन्नड़ी लिपि की भाँति गोलाईदार मिलते हैं। साथ ही वे ग्रंथ और नागरी लिपि से भी कुछ प्रभावित मालूम पड़ते हैं।

कवाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कष्टम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

कसारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,093 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कहारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 673 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कांगड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 807 है। ये लोग भारत के उत्तरी भाग में रहते हैं।

काकल—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे स्वरयंत्रमुख या काकल (अँग्रेजी में ग्लौटिस) कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि अवयव।

काकल्य—काकल में उत्पन्न होने वाली ध्वनि को काकल्य कहते हैं। जैसे हिन्दी 'ह' और अंग्रेजी एच। इन्हें उरस्य ध्वनि भी कहते हैं।

काकेशस-परिवार—इस परिवार में कैस्पियन और काला सागरों के बीच में

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपि माला पृष्ठ 44, 92।

काकेशस के पर्वतीय प्रदेशों की जार्जियन आदि भाषाएँ आती हैं । पर्वतों के कारण बोलियों में इतना अन्तर आ गया है कि एक परिवार में उनको रखने में भी विद्वानों को हिचकिचाहट मालूम होती है । वैसे इन भाषाओं को उत्तरी और दक्षिणी दो वर्गों में बाँटा जाता है । उत्तरी वर्ग में सिरकैसियन, किस्तिअन, लैस्पिअन आती हैं और दक्षिण में जार्जियन, सुआनियन और मिंग्रोलियन भाषाएँ । उत्तरी वर्ग की भाषाओं में लिपि, साहित्य आदि नहीं है और परस्पर भिन्न अनेक बोलियाँ हैं । दक्षिणी वर्ग की जार्जियन का साहित्य विशेष विकसित हुआ है । उत्तरी वर्ग में स्वरों की कमी है। इस परिवार की कुछ बोलियों में छः लिंग तक होते हैं । और विभक्तियाँ तीस-तीस तक ।

वैसे भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक हैं, पर वास्क की भाँति सर्वनाम और क्रिया का योग होने से आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक हो जाती हैं । कुछ बोलियों में तो क्रिया इतनी विकसित हो जाती है कि मूल धातुरूप का पता तक नहीं चलता ।

काकेशियन-परिवार—भारोपीय परिवार का एक अन्य नाम, जो प्रचलित न हो सका । विशेष दे० काकेशस परिवार, भारोपीय परिवार ।

कागाते—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 380 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

काचा—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 911 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

काट्या—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,829 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

काठियावाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,339 है । ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

काढ़ाही—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

कापरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

काबुई—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 18,627 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

कायमोग्राफ—ध्वनियों के उच्चारण के अध्ययन में यह यन्त्र विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है । इसमें एक छोर पर एक नली होती है, जिसे मुँह में लगाया जाता है और अनुनासिक शब्दों के लिए एक पृथक् नली नाक में और लगायी जाती है । दूसरे छोर पर सिगरेट के गोल डिब्बे जैसा एक गोला होता है, जिस पर चिकना काला किया हुआ कागज लपेट दिया जाता है । यह गोला बिजली की सहायता से घूमता है और नली के सहारे आने वाली ध्वनियों के सहारे एक सुई इस पर रेखाएँ खींचती है । इन रेखाओं से ही ध्वनियों का ज्ञान हो जाता है ।

पहले तो घोष और अघोष ध्वनियों का पूरा ज्ञान इस यन्त्र की सहायता से हो

जाता है। अघोष ध्वनियों के उच्चारण में सीधी रेखा बनती है, घोष ध्वनियों में कम्पन के कारण लहरदार। इन रेखाओं के मण्डलों के अधिक सीधे और कम सीधे होने से अल्पप्राण और महाप्राण का भेद जाना जाता है। इसी प्रकार स्पर्श, स्पर्श संघर्षी, पार्श्विक, लुंठित आदि का सूक्ष्म अन्तर भी जाना जाता है। अनुनासिक वर्णों के प्रदर्शन के लिए नाक वाली नली एक पृथक् लहरदार रेखा बनाती है। उच्चारण समय की मात्रा के ज्ञान के लिए भी एक पृथक् सुई का उपयोग किया जाता है, जो एक सेकिंड में सौ निशान बनाती है। साथ ही संगीतात्मक और बलात्मक स्वराघात का भेद भी इस यन्त्र की सहायता से स्पष्ट हो जाता है।

कारंडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कारा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

कालाहांडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 49 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

काशातांब—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

किरारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 211 है। है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

किलांग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

किशन गढ़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17,254 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

किसान—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 66,428 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कीपगेन—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक अन्य नाम थाडो है, बोलने वालों की संख्या 224 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कुंबी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 64 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कुई—द्राविड़ परिवार की एक भाषा। इसका सम्बन्ध तेलुगु से जोड़ा जाता है। 1954 में प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 2,06,509 है, जो सारी की सारी पूर्वी भारत में उड़ीसा के जंगलों में रहती है।

कुटिल लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार ईसवी सदी की छठी से नवीं शताब्दी तक की प्रायः सारे उत्तरी भारत की लिपि का कल्पित नाम कुटिल लिपि है। विक्रमांक-देवचरित तथा शिलालेखों में इस लिपि का और कुटिलाक्षरों का

उल्लेख भी मिलता है। डा० ओझा का अनुमान है कि वर्णों और विशेषकर मात्राओं की कुटिल आकृतियों के ही कारण यह नाम पड़ा है। इस लिपि के अक्षरों के सिर बहुधा ऐसे होते हैं, परन्तु वे कभी-कभी छोटी आड़ी लकीर से भी बनाए जाते हैं। अ, आ, घ, प, म, य, ष और स में ऊपर का अंश दो भागों वाला होता है और बहुधा प्रत्येक विभाग पर उपर्युक्त सिर का चिह्न जोड़ा जाता है।[1]

मंदसोर, बुद्धगया, बसंतगढ़, कुदारकोट, झालरापटण, चम्बा और राजपूताना मालवा आदि के शिलालेखों और हर्ष आदि राजाओं के दान पत्रों के आधार पर इस लिपि की रूपकल्पना की गई है।

कुड़कू—कोड़कू नामक आदिम जाति भाषा का अन्य नाम। विशेष दे० कोड़क।

कुडागु—यह कुर्ग की भाषा है, जिसका सम्बन्ध द्राविड़ परिवार (दे० यथा०) से है। यह पड़ोसी कन्नड़ और तुलु भाषाओं से प्रभावित है। इसका क्षेत्र भी उक्त दोनों भाषाओं के मध्य में पड़ता है।

कुनबी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कुन्नर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कुमाउंनी—एक माध्यमिक पहाड़ी भाषा। इस उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 5,71,401 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है: उत्तर भारत—5,71,348 (उत्तर प्रदेश का कुमाऊं क्षेत्र) और मध्य भारत—53।

कुमारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 25 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कुम्हारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 510 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कुरती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कुरमाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,348 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कुरुख—एक आदिम जाति भारतीय भाषा। कुरुख या ओरांव द्राविड़ परिवार की एक भाषा है। इसके बोलने वाले बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के सीमा प्रदेश पर रहते हैं। इसमें कई महत्त्वहीन शाखाएँ हैं। और दे० ओरांव।

कुरुमाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 331 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कुर्गी—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस

1. दे० डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ 42, 62—63.

बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 68,799 है, जो निम्नांकित प्रकार से बँटी हुई है :

उत्तर भारत 20, पूर्वी भारत 11, दक्षिण भारत 68,530, पश्चिमी भारत 116, भारत का मध्य भाग 65, अंडमान नीकोबार 57 ।

कुलूई—एक पश्चिमी पहाड़ी भाषा । यह कुलू क्षेत्र में बोली जाती है । विशेष दे० पहाड़ी ।

कूकरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 91 है । ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

कूकी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 35,603 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

कूलाशी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है । यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है ।

कूमी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 33 है । ये लोग भारत के दक्षिणी भाग में रहते हैं ।

कूरमी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे भूमिज भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 450 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

कृत्रिम तालु—प्रयोगात्मक ध्वनिविज्ञान में इस यंत्र का उपयोग किया जाता है । पहले यह डाक्टरों के (विशेषतः दांत के रोगों में) काम आता था, पर 1871 में कोट्स ने प्रयोगात्मक भाषा विज्ञान में भी इसका प्रयोग किया । प्रयोग करने वाला इसे अपने मुख की नाप से बनवाता है और दाँतों की जड़ों में ठीक से बैठने के लिए दोनों और कोण निकले रहते हैं । इसकी सतह पर प्रयोग से पहले खड़िया पोत देते हैं । जब जीभ स्वभावतः ध्वन्यनुसार तालु का स्पर्श करती है, तो उस स्थान की खड़िया जीभ से लगकर छूट जाती है । बाद में उसे बाहर निकालकर उस स्थान का अध्ययन किया जा सकता है । जैसे 'क' के उच्चारण में कंठ के पास का तालुभाग बिना खड़िया के दिखाई देगा । इस प्रकार सभी स्पर्श वर्णों के स्थान का अध्ययन किया जा सकता है ।

विभिन्न भाषाओं की प्रत्यक्षतः एक ही स्थान से उच्चरित प्रतीत होने वाली ध्वनियों के उच्चारण स्थान में क्या अंतर होता है, इसका ज्ञान भी इससे हो जाता है । हिन्दी के मूर्धन्य 'ट्' और अंग्रेजी की वर्त्स्य 'टी' का अन्तर इससे स्पष्ट हो जाता है ।

कृत्रिम भाषा—कुछ छोटे मोटे समुदायों द्वारा पारस्परिक गुप्त और साभिप्राय व्यवहार के लिए गढ़ी गई भाषा । ब्रिटिश सरकार की दृष्टि से बचने के लिए क्रांतिकारियों और आतंकवादियों ने अपनी कुछ गुप्त भाषा गढ़ रखी थी, यद्यपि वह समूचे देश में एकरूप हो, ऐसी बात नहीं । यदि किसी नेता का बुलाना आवश्यक होता, तो तार या पत्र में स्पष्ट लिख भेजने में भारी खतरा था, अतः गुप्त शब्द

संकेतों का प्रयोग किया जाता था। इसी प्रकार विभिन्न सेनाएँ संदेश भेजने के लिए अपनी-अपनी गुप्त भाषाएँ व्यवहार में लाती हैं, जिसे संहिता-भाषा (कोड लैंग्वेज) भी कहते हैं, क्योंकि विभिन्न गुप्त संहिताओं के अनुसार ही उनका निर्वचन हो सकता है। देश का अन्तरिक्ष विभाग (मैटरोलौजी) यद्यपि असैनिक विभाग है, तथापि एक दूसरे केन्द्र तक जो ऋतु वृत्त प्रसारित किए जाते हैं, वे इसी प्रकार की संहिता के सहारे बनी हुई अंकों की भाषा में प्रसारित किए जाते हैं। इस प्रकार कुछ गुप्त भाषाएँ अक्षरों में नहीं बल्कि अंकों में लिखी जाती हैं। भोलानाथ तिवारी ने बंगला, अंग्रेजी, उर्दू और देवनागरी लिपियों से मिलाकर लिखी जाने वाली कई लिपियों के सम्मिश्रण वाली लिपि का भी एक उदाहरण दिया है (भाषा विज्ञान, पृष्ठ 43)।

चोरों-डाकुओं आदि अन्य ऐसे लोगों में भी, जो अपना गुप्त-व्यापार चलाते हैं, ऐसी भाषाओं का प्रचलन रखा जाता है। ब्रिटिश विश्वकोष ने ऐसी भाषाओं को 'आर्गोट' नाम दिया है। इसे हम दस्युभाषा कह सकते हैं। प्रसिद्ध अंग्रेजी कोषकार वेब्सटर के अनुसार कैंट (उपभाषा, कल्पित वर्गीय भाषा), जार्गन (अनर्गल भाषा), 'आर्गोट (दस्यु भाषा) और लिंगो (परभाषा) मूलतः एक विशेष वर्ग की शब्दावली मात्र हैं। इनमें कैंट शब्द सामान्यतः उपहास और घृणा के लिए प्रयुक्त किया जाता है, और बहुधा रूढ़िगत, सचाई रहित धार्मिक शब्दावली के लिए प्रयुक्त होता है। जार्गन उस विशेष वर्ग या शास्त्र की भाषा न समझने वालों के लिए बोधगम्य नहीं होती है। लिंगो उपहास के लिए किसी भी विदेशी भाषा या विशिष्ट बोली के लिए प्रयुक्त होती है और पारिभाषिक कैंट भी इसी नाम से पुकारी जाती है। स्लैंग या गँवारू भाषा को बहुधा जार्गन और कैंट का पर्याय माना जाता है पर यह बहुत कुछ स्थल विशेष से सम्बन्ध रखने वाली भाषा होती है, और प्रायः लोकप्रचलित परन्तु अनधिकृत शब्दों के उपयोग का निर्देश करती है। स्लैंग शब्द गाँवों की (गँवारू बोली) ही नहीं, नगरों की बोली के लिए और कालेजों की बोली के लिए भी चलता है। परन्तु ये पिछली प्रकार की भाषाएँ कृत्रिम भाषा की परिभाषा में नहीं आती हैं, फिर भी दस्युभाषा के साथ विभेदीकरण के लिए उनका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ कर दिया गया है।

उक्त गुप्त गोष्ठियों के अतिरिक्त विद्यालयों के छात्र भी अपनी कुछ गुप्त-गोष्ठियाँ बनाकर मनोरंजन के लिए साधारण भाषा के शब्दों में ही कुछ जोड़-तोड़ करके एक भाषा गढ़ लेते हैं, जैसे

1. रफ लगाकर, हरफम तुरफम-हम तुम;
2. फुल लगाकर, फुलरा फुलम-राम इत्यादि।

इन कृत्रिम गुप्त भाषाओं के अतिरिक्त कुछ सामान्य कृत्रिम भाषाएँ भी गढ़ ली जाती हैं। इन दोनों में भेद यही है कि कृत्रिम भाषा गुप्त व्यवहार के लिए बनायी जाती है और प्रचलित भाषा से गुप्त रखने की चेष्टा इसमें सर्वत्र स्पष्ट रहती है। सामान्य

कृत्रिम भाषा लोक व्यवहार के ही लिए बनायी जाती है। डा० जमेन हाफ ने ऐसी ही एक कृत्रिम भाषा एसपिरंतो (दे० यथा०) बनाई थी। यह दुनिया भर के लिए बनाई गई थी। स्वाभाविक और जीवित भाषा न होने के कारण ये कृत्रिम भाषाएँ बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहती हैं और न उनका प्रचलन ही व्यापक हो पाता है।

कॆंटुम् वर्ग—भारोपीय परिवार (दे० यथा०) की भाषाओं का एक वर्ग। अस्कोली ने 1870 में कुछ भारोपीय भाषाओं की कंठ्य ध्वनि (क आदि) के स्थान पर अन्य भारोपीय भाषाओं में ऊष्म ध्वनि (श आदि) का उल्लेख किया था, जिसके आधार पर ब्राडके ने भारोपीय परिवार की भाषाओं को दो वर्गों कॆंटुम् और शतम् में बाँटा। यह वर्गीकरण उन भाषाओं में सौ शब्द के रूप के आधार पर किया गया है। कॆंटुम् शब्द लेटिन में सौ का पर्याय है। इस वर्ग में केल्टिक, ट्यूटानिक, लेटिन, हेलेनिक, हिट्टाइट और तोखारी भाषाएँ (दे० यथा०) आती हैं। एशिया माइनर की हिट्टाइट (हित्ती) और मध्य एशिया (तुरफान) की तोखारिश भाषाओं की खोज ने इस वर्ग का पश्चिमी वर्ग नाम भ्रामक सिद्ध कर दिया है।

केवती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,517 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

केशम्मा—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 38 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कैकाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,344 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कैल्टिक—भारोपीय परिवार के कॆंटुम् वर्ग की एक शाखा। प्राय: दो हजार वर्ष पूर्व इस शाखा की भाषाएँ एशिया माइनर, मध्य यूरोप, उत्तरी इटली, फ्रांस (तत्कालीन गेलेटिया), स्पेन और इंगलैण्ड आदि में रहते थे, पर अब तो वह यूरोप के पश्चिमोत्तर कोने से भी लुप्त हो रही है। यह शाखा इटालियन (लेटिन) शाखा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। दोनों में पुल्लिग और नपुंसकलिंग ओकारान्त संज्ञाओं के लिए 'ई' का प्रयोग होता है। कर्मवाच्य की रचना प्राय: एक-सी होती है। इटालियन की भाँति कैल्टिक में भी उच्चारण-भेद से दो विभाग किए जाते हैं—'क' वर्ग और और 'प' वर्ग। कुछ भाषाओं में जहाँ 'प' होता है, दूसरी भाषाओं में 'प', जैसे पाँच के लिए वेल्श में पम्प शब्द पाया जाता है और आइरिश में कोइक। 'प' वर्ग को ब्रिटानिक और 'क' वर्ग को गायलिक कहते हैं। साथ ही प्राचीन गाल राज्य की भाषा गालिश या गालिक जोड़ देने से निम्न तीन वर्ग हो जाते हैं—

(1) गालिक (लुप्त) 'प' वर्गीय।

(2) ब्रिटानिक जिसमें सिमरिक या वेल्श, कार्निश और ब्रेटन या आर्मोरिकन हैं।

(3) गायलिक (गायडेलिक) 'क' वर्गीय, जिसमें स्काच गायलिक, मैंक्स और आइरिश हैं।

इनमें से गालिक (गालिश) का पता स्थानों के नामों, सिक्कों और शिलालेखों से चलता है। सीजर द्वारा विजित गाल लोगों की यही भाषा थी। इन्हीं लोगों के कारण यह ईसा से 280 वर्ष पूर्व एशिया माइनर तक पहुँच गई थी। आज इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अब गाल देश के मुख्य भाग में रोमांस भाषाएँ बोली जाती हैं। रोमांस पूर्वी स्विटजरलैण्ड की एक भाषा भी है और फ्रेंच, प्रोवेंशल, इटालियन, पुर्त्तगीज, स्पेनिश, रूमानियन और रोमांस इन सब भाषाओं का सामान्य नाम भी।

वेल्श, कार्निश और ब्रेटन भी 'प' वर्गीय केल्टिक हैं। वेल्श साहित्यिक तथा अन्य दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। उसमें 8वीं शताब्दी तक के लेख मिलते हैं। 13वीं शताब्दी तक कविता आदि की रचना होने लगी थी, पर 19वीं सदी से साहित्य का नियमित प्रणयन हो रहा है। आज भी लाखों व्यक्ति उसे सगर्व व्यवहार में लाते हैं। कार्निश कार्नवाल की भाषा है, जो 1770 के लगभग पूर्णतः लुप्त हो गई। कुछ प्राचीन साहित्य उपलब्ध है। ब्रेटन (आर्मोरिकन) कार्निश की ही एक विभाषा है, जो पाँचवी सदी में पृथक् हुई। यह फ्रांस के पश्चिमोत्तर ब्रिटेनी प्रदेश में बोली जाती है। इसके दसवीं सदी तक के प्राचीन रूप मिलते हैं।

'क' वर्गीय केल्टिक में से स्काच उत्तर और पश्चिमोत्तर स्काटलैण्ड की बोली थी, जो अंग्रेजी के कारण लुप्त प्राय है। केवल कुछ पुरानी कविताएँ मिलती हैं। मैंक्स भी लुप्त प्राय है। आइल आफ मैन में ही कुछ लोग इसे बोलते हैं। इनमें प्रमुख भाषा आइरिश है, जो स्वतन्त्र आयरलैण्ड में पुनः अंग्रेजी को अपदस्थ कर समुचित स्थान प्राप्त करती जा रही है। प्राचीन उदाहरण ओधम के लेखों के रूप में (पाँचवी सदी के) मिलते हैं। अब साहित्य की उन्नति हो रही है।

कोंकणी (1)—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे ठाकुर भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 61 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोंकणी (2)—इस उपभाषा या बोली के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 6,39,020 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है—उत्तर भारत 132, पूर्व भारत 319; दक्षिण भारत 3,23,051; पश्चिम भारत 3,14,149; मध्य भारत 13,503; पश्चिमोत्तर भारत 3,58,422।

कोंड—उड़ीसा की पहाड़ियों की कुछ जंगली जातियों की बोली, जो द्राविड़ परिवार की भाषाओं में गिनी जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या बहुत कम है।

कोंडा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14,052 है। इनमें से केवल एक व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है, शेष पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोंढ—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 2,80,561 है, जो सारी की सारी पूर्व भारत में रहती है। इसे खोंड भी कहते हैं।

कोइरेंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 496 है ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोकणी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 308 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोकी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 7 है। ये भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोच—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5,208 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोड्डाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग्य में रहता है।

कोटा—यह द्रविड़ परिवार (दे० यथा०) की एक छोटी-सी भाषा है, जो नीलगिरी की जंगली-जातियों द्वारा बोली जाती है। परन्तु इसके बोलने वालों की संख्या के अनुदिन कम होते जाने के कारण यह अब समाप्तप्राय होती जा रही है।

कोटिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कोटि भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोटी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कोटिया भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोड़कू—1954 में प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषाको बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,70,607 है, जिसमें से 1,70,593 मध्य भारत में और शेष 14 पूर्व भारत में रहती है। इसे कुड़कू भी कहते हैं।

कोडा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,647 है। इनमें से 4,553 भारत के पूर्वी भाग और शेष मध्य भाग में रहते हैं।

कोतली—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कोथिलो भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 74 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोतानी भील—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोथिली—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कोतली भी कहते हैं. बोलने वालों की संख्या 74 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोनडा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

कोन्याक—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8,814 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,490 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोमताउ—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक अन्य नाम कोमती भी है, बोलन वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोमती—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक अन्य नाम कोमताउ

भी है, बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोमल तालु—ध्वनियों के उच्चारण में प्रयुक्त होने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में सौफ्ट पैलेट कहते हैं यह मुख की छत का सबसे पिछला भाग है। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

कोया—1954 में प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार इस आदिम जाति भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,37,358 है। यह निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है:—पूर्व भारत—37,139; दक्षिण भारत—66,511 और मध्य भारत 33,708।

कोरथा—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कोरथी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोरथी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कोरथा भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोरवा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,629 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 734 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोरावा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,629 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोरियाई—विश्व की उन वर्तमान अनिश्चित भाषाओं में से एक, जिनका किसी भाषा-परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। यह कोरिया की भाषा है, जैसा नाम से भी स्पष्ट है। इस पर जापानी और चीनी भाषाओं की भी, पड़ोस के कारण, छाप पड़ी है, यद्यपि इसकी वर्तमान लिपि का सम्बन्ध ब्राह्मी से जोड़ा जाता है। अश्लिष्ट योगात्मक होने पर भी इसे यूराल अल्टाइक परिवार में नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि इसमें उस परिवार के अन्य लक्षण नहीं मिलते हैं।

कोल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 50,743 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोल भाषा—आग्नेय परिवार की मुंडा भाषाओं का अन्य नाम। विशेष दे० मुंडा।

कोलामी—द्रविड़ परिवार की एक भाषा। यह बरार के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। मध्य प्रदेश की भीली बोलियों का भी इस पर प्रभाव पड़ा है, ऐसा भोलानाथ तिवारी का मत है। इसमें साहित्य नहीं है और अब यह मरणोन्मुख है।

भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 42,678 है। इनमें केवल एक व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में और शेष मध्य भाग में रहते हैं।

कोलावी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोलासी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोलिल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,106 है। इनमें से 3,012 व्यक्ति भारत के मध्य भाग और शेष पूर्वी भाग में रहते हैं।

कोल्हाटी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक अन्य नाम बोइमारी भी है, बोलने वालों की संख्या 995 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोसरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,766 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोसी—विश्व की उन अनिश्चित और प्राचीन भाषाओं में से एक, जिनका किसी परिवार में वर्गीकरण नहीं हो सका है। इस भाषा की विशेष सामग्री न मिलने से इसके बारे में विशेष कुछ कह सकना सम्भव नहीं है।

कोस्टी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10,550 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

कोहाटी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

कौआ—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में उवुला कहते हैं और हिन्दी में अलिजिह्वा, कौआ या घंटी। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

क्चीमदन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

क्यासानलिन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

क्योंथली—शिमला के आस-पास बोली जाने वाली एक पश्चिमी पहाड़ी भाषा। विशेष दे० पहाड़ी।

क्लिक-ध्वनि—सामान्यत: सभी ध्वनियों के उच्चारण में श्वास भीतर से बाहर को फेंकी जाती है, पर कुछ विशेष प्रकार की ध्वनियों का बाहर से श्वास खींचकर उच्चारण किया जाता है, इनको क्लिक-ध्वनियाँ कहते हैं। दक्षिणी अफ्रीका की भाषाओं विशेषत: बुशमैन परिवार की भाषाओं में इनका विशेष प्रयोग देखा जाता है और भाषा शास्त्रियों ने उनका वर्गीकरण भी किया है। यह मूर्धन्य, तालव्य, पार्श्विक, दंत्य तथा ओष्ठ्य जैसे वर्गों में ही बाँटी गई हैं। इनके लिए क्रमश: ! ‡ ॥, । और . ध्वनि-चिह्नों का प्रयोग किया जाता है।

विद्वानों का विचार है कि प्रागैतिहासिक काल में भारोपीय परिवार में भी क्लिक

ध्वनियाँ रहीं होंगी। ग्राज चुम्बन एक ऐसी ध्वनि है जो प्रायः सारी दुनिया में प्यार के लिए उच्चरित की जाती है यद्यपि उसका कोई लिपि चिह्न नहीं है। दर्द में सी-सी सी-सी की ध्वनि, खेद में च् च् च् च् च् की ध्वनि, घृणा में छिः छिः छिः छिः की ध्वनि, ग्रौर टक् टक् टक् टक् या टिक् टिक् टिक् टिक् ग्रादि यदृच्छा ध्वनियाँ इसी कोटि में ग्राती हैं। इन ध्वनियों का उच्चारण ग्रन्य सामान्य ध्वनियों की भाँति जोर से नहीं किया जा सकता।

क्षत्रिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ख

ख्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण-स्थान कंठ, आभ्यंतर प्रयत्न स्पृष्ट और बाह्य प्रयत्न महाप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरण इसे महाप्राण, अघोष स्पर्श व्यंजन मानते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार ब्रजभाषा, अवधी आदि बोलियों में फ़ारसी, अरबी संघर्षी ख़् के स्थान पर बराबर स्पर्श ख् हो जाता है। वैसे क से इसका यही भेद है कि यह महाप्राण है, जब कि वह अल्पप्राण। उदा० खाट, भिखारी, दुःख।

ख़्—यह जिह्वामूलीय अघोष संघर्षी ध्वनि है, सामान्य स्पर्श ध्वनि नहीं। यह हिंदी में अरबी-फ़ारसी के तत्सम शब्दों के लिए ही प्रयुक्त होती है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण जिह्वामूल को कौए के निकट कोमल तालु से लगाकर किया जाता है किन्तु हलक का दरवाजा बिलकुल बन्द नहीं किया जाता, अतः हवा रगड़ खाकर निकलती है। हिन्दी में अब इसका उच्चारण सामान्य स्पर्श ध्वनि-सा होने लगा है और लिखने में तो वैसा रूप बहुत प्रचलित है। उदा० बुख़ार।

खंबू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खड़िया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 110 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

खड़ी बोली—ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिमी हिन्दी की पाँच बोलियों में से एक प्रमुख बोली। यह मुख्यतः रुहेलखण्ड, गंगा-यमुना के बीच के प्रदेश के उत्तरी भाग और अम्बाला डिवीजन की बोली है। राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में यह मूलतः मेरठ और उसके आस-पास के जिलों को मिलाकर कुल साढ़े तीन जिलों की बोली है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला, और कलसिया और पटियाला के पूर्वी भाग के गाँवों में बोली जाती है। इसमें अरबी-फ़ारसी के अर्द्धतत्सम या तद्भव रूपों का प्रयोग खूब होता है, परन्तु उन्हीं के तत्सम रूपों के प्रयोग से इसमें उर्दू की झलक आने लगती है।

हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी इन तीनों रूपों का मूल आधार यह खड़ी बोली ही है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव में खड़ी-खड़ी लगती है। कदाचित् इसी कारण इसका नाम खड़ी बोली पड़ा।

खजुना—बुरुशास्की भाषा का एक अन्य नाम । विशेष दे० बुरुशास्की ।

खड़िया—इस उपभाषा या बोली के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,10,592 है, जिसमें से 93,199 पूर्व भारत में, 17,175 मध्य भारत में और 218 अंडमान तथा नीकोबार द्वीपों में रहती है ।

खत्री—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,121 है । ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

खरोष्ठी—प्राचीन काल में भारत के पश्चिमोत्तर भाग में प्रचलित लिपि । अशोक कालीन लेख ब्राह्मी के साथ-साथ खरोष्ठी में भी पाये जाते हैं । ब्राह्मी राष्ट्रीय लिपि थी, पर खरोष्ठी केवल पश्चिमोत्तर भाग में प्रचलित थी । यह आधुनिक उर्दू लिपि की भाँति दाईं से बाईं ओर को लिखी जाती थी । यह तीसरी सदी ई० पू० से तीसरी सदी ईसवी तक प्रचलित रही । स्रोत एक होने पर भी उर्दू लिपि खरोष्ठी से विकसित नहीं हुई है । यह आर्य लिपि नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध सेमेटिक अर्मइक् लिपि से है । डा० प्रजिलुस्की के अनुसार गदहे की खाल पर लिखी जाने के कारण यह खरपृष्ठी और फिर खरोष्ठी कहलाई । डा० चटर्जी के अनुसार हिब्रू में खरोशेथ 'लिखावट' को कहते हैं । एक प्रसिद्ध चीनी कोष के अनुसार भारतीय विद्वान् खरोष्ठ ने इसे गढ़ा था । डा० ओझा के अनुसार ईरानियों के साथ उनकी अर्मइक् लिपि भी भारत में आई, परन्तु इसके 22 अक्षर केवल 18 भारतीय ध्वनियाँ व्यक्त कर सकते थे । ह्रस्व दीर्घ भेद न था और स्वरों की मात्राएँ न थीं, अतः यहाँ के विद्वानों में से खरोष्ठ या किसी और ने नये अक्षरों तथा ह्रस्व स्वरों की मात्राओं की योजना कर मामूली पढ़े-लिखे लोगों के लिए, जिनको शुद्धाशुद्ध की विशेष आवश्यकता नहीं रहती थी, कामचलाऊ लिपि बना दी । इसमें संयुक्ताक्षरों की कमी थी, पहली सदी तक यह लुप्त हो गई । आज केवल कुछ शिलालेख इसमें उपलब्ध हैं । और दे० लिपि, ब्राह्मी ।

खसकुरा—पूर्वी पहाड़ी भाषा का ही एक अन्य नाम । यह नेपाल में बोली जाती है । विशेष दे० पहाड़ी ।

खाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 7 है । ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

खातेहंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 170 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

खानगोई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है । ये लोग भारत के दक्षिणी भाग में रहते हैं ।

खानदेशी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 80 है । इनमें से 38 व्यक्ति भारत के मध्य और शेष पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं ।

खामकाप—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है । यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है ।

खाम्पती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,334 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खारम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 72 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खास—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालो की संख्या 8 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

खासी—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 2,30,982 है, जिनमें से 2,30,966 पूर्व भारत में, 8 दक्षिण और 8 पश्चिम भारत में रहते हैं।

खीचीवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,065 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

खूल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,154 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खूमशानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

खेरवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 96,621 है। इनमें से केवल 5 भारत के पश्चिमी भाग और शेष पूर्वी भाग में रहते हैं।

खेलमा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 352 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खोंगजई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,199 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खोंगयोंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 208 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खोंड—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम जलापू भी है, बोलने वालों की संख्या 37,518 है। इनमें से 8,204 भारत के मध्य और शेष दक्षिणी भाग में रहते हैं।

खोजा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

खोठा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1744 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

खोलचा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 108 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

खोवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 20 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

ग

ग्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कंठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के मत से यह अल्पप्राण, घोष स्पर्श व्यंजन है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण भी क् की भाँति जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआकर होता है। हिंदी की बोलियों में फारसी-अरबी जिह्वामूलीय ग़् के स्थान पर ग हो जाता है; साहित्यिक हिंदी में अरबी-फारसी के तत्समवादी तत्सम रूप को अपनाते रहे थे, पर अब नीचे बिंदी रहित हिंदी का तद्भव रूप ही अधिक प्रचलित हो चला है (देखिए गरीब आदि)। उदा० गरल, बिगाड़, उरग।

ग़्—इसका भी उच्चारण स्थान ख़् (दे० यथा०) सा ही है। भेद यही है कि यह घोष है और वह अघोष। यह जिह्वामूलीय, घोष संघर्षी ध्वनि है। अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों में ही इसका प्रयोग होता है। हिंदी की बोलियों में यह साधारण स्पर्शी (संघर्षी नहीं) ग् रह गया है। उदा० ग़रीब।

गंगटे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,538 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गंगापारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गंगाडी पारसी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 35 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गंजू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 47 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गँवारू भाषा—यह बहुत कुछ स्थल विशेष की भाषा होती है और शिष्ट संस्कृत भाषा में इसका प्रयोग उचित नहीं माना जाता। गँवारू भाषा (स्लैंग) शब्द केवल गँवारों की बोली के ही लिए नहीं, नगरों और कालेजों आदि की भाषा के लिए भी प्रयुक्त होता है। (विशेष दे० विशिष्ट भाषा)।

गडबा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 54,454 है। जो निम्न रूप में बंटी हुई है :

पूर्वी भारत 33,041, और दक्षिण भारत 21,413।

गडरिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 600 है।

ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। गडरिया और गडारी इसके दो नाम हैं।

गडारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 600 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। गडरिया और गडारी इसके दो नाम हैं।

गढ़वाली—एक माध्यमिक पहाड़ी भाषा, इस को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 4,84,261 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूपों में बंटी हुई है—उत्तर भारत 4,82,607, (गढ़वाल में) पूर्व भारत 863, दक्षिण भारत 89, मध्य भारत 407, पश्चिमोत्तर भारत 263 और अण्डमान तथा निकोबार 321, (विशेष दे० पहाड़ी)।

गरानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 378 है। ये लोग पश्चिमोत्तर भारत में रहते हैं।

गरोदी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गर्वी—भारत की इस कोहिस्तानी बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 2 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गवान—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गवानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 161 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,043 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति पूर्वी भारत में रहता है।

गारो—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जन-संख्या 2,39,816 है, जो दक्षिण भारत में रहने वाले एक व्यक्ति को छोड़कर सारी की सारी पूर्व भारत में रहती है।

गिरासिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 18,803 है। ये लोग पश्चिमोत्तर भारत में रहते हैं।

गीतात्मक स्वराघात—शब्दोच्चारण में उठाई गई लहरों के कारण कुछ शब्द गीतात्मक (सरगमपधनि के अनुकूल) या लयात्मक बन जाते है। ऐसे लहजे को ही गीतात्मक या संगीतात्मक स्वराघात कहते हैं। कुछ भाषाओं में संगीतात्मकता अधिक होती है। विशेष दे० स्वराघात।

गुजराती—सौराष्ट्र, कच्छ, बड़ोदा और बम्बई के कुछ भागों में गुजराती भाषा बोली जाती है। हेमचन्द्र नामक प्रसिद्ध वैयाकरण ने 12वीं शताब्दी में इसी प्रदेश में जन्म लिया था; उन्होंने गुजरात की नागर अपभ्रंश का उल्लेख किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में इस भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वैदिक काल से अब तक की भाषा के क्रमबद्ध उदाहरण इसी भाषा में मिलते हैं। अन्य स्थानों की आर्यभाषाओं में

यह क्रम किसी न किसी समय विच्छिन्न हो गया है गुजराती पहले कैथी लिपि में लिखी जाती थी; अब गुजराती लिपि में लिखी जाती है, जो देवनागरी से मिलती-जुलती है। गुजराती के आदि कवि नरसिंह मेहता का जन्म 1413 ईसवी में हुआ था। साहित्य के साथ ही पारसियों द्वारा अपनाये जाने के कारण गुजराती पश्चिम भारत में व्यवसाय की भाषा भी हो गई है।

गुप्त लिपि—गुप्त युग में प्रचलित ब्राह्मी लिपि के परिवर्तित रूप को डा० गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने यह नाम दिया है। यह लिपि गुप्तकालीन लेखों और तत्कालीन अन्य दानपत्रों आदि में मिलती है। डा० ओझा के अनुसार गुप्तों के समय में कई अक्षरों की आकृतियाँ नागरी से कुछ-कुछ मिलती हुई होने लगीं। सिरों के चिह्न जो पहले बहुत छोटे होते थे बढ़ कर कुछ लम्बे बनने लगे और स्वरों की मात्राओं के प्राचीन चिह्न लुप्त होकर नए रूपों में परिणत हो गए।[1] उन्होंने समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के स्तंभ लेख में तथा उदयगिरि आदि अन्य स्थानों के शिलालेखों में और महाराज लक्ष्मण और जयनाथ के दानपत्रों में मिलने वाले रूपों के अनुसार इस लिपि का ढाँचा तैयार किया है।

गुर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 134 है। ये पूर्वी भारत में रहते हैं।

गुरखिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14,089 है, जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है: उत्तर भारत 7,189; भारत का मध्य भाग 6,842; और अंडमान निकोबार 58। गोरखी, गुरखिया और गोरखाली इसके तीन नाम हैं।

गुराव—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गुरुंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 26,556 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

गुर्जर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गूँगी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

गूजर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 132 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गूजरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,814 है। इनमें से 1,502 भारत के मध्य भाग में और शेष 312 उत्तरी भारत में रहते हैं।

गूली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 72 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

---

1. डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० 42,60।

गैलोंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 39 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गोंडला—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 5 है। ये लोग पश्चिम भारत में रहते हैं।

गोंड—बुन्देल खण्ड (विन्ध्य प्रदेश) की कुछ जंगली जातियों की बोली, जो तामिल से मिलती-जुलती है और द्राविड़ परिवार में गिनी जाती है इसमें साहित्य नहीं है, न इसकी अपनी कोई लिपि ही है।

गोंडी (1)—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 12,32,886 है। यह निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है:—उत्तर भारत 875, पूर्व भारत—36,144, पश्चिम भारत—49, मध्यभारत 11,95,818।

गोंडी (2)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 22,157 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गोआनी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 613 है। जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है:—उत्तर भारत 126, पूर्वी भारत 222, दक्षिण भारत 24, भारत का मध्य भाग 236, पश्चिमोत्तर भारत 4 और अंडमान निकोबार 1।

गोटे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गोथी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

गोदवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 32 है, जिनमें 5 व्यक्ति दक्षिण भारत में और शेष 27 भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गोध्यानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गोपानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गोपाल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 199 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। गोपाल और गोपाली इसके दो नाम हैं।

गोपाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 199 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। गोपाल और गोपाली इसके दो नाम हैं।

गोयती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

गोर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 32 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गोरखपुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 29 है। ये लोग भारत के मध्य भाग (संभवतः गोरखपुर) में रहते हैं।

गोरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 7 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गोरखाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14,089 है, जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है : उत्तर भारत 7,189, भारत का मध्य भाग 6,842 और अंडमान निकोबार 58। गोरखी, गुरखिया और गोरखाली इसके तीन नाम हैं। (विशेष दे० पहाड़ी)।

गोरखी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14,089 है, जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है : उत्तर भारत 7,189, भारत का मध्य भाग 6,842 और अंडमान निकोबार 58। गोरखी, गुरखिया और गोरखाली इसके तीन नाम हैं।

गोलनगुना—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 69 है। ये लोग भारत के मध्य में भाग रहते हैं।

गोलारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,084 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। गोलारी और होलिया इसके दो नाम हैं।

गोवाचिन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गोवानिरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 133 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गोवानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 75 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गोवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,041 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

गोसाई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 356 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। इसे गोसावी भी कहते हैं।

गोसावी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल संख्या 356 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। इसे गोसाई भी कहते हैं।

गोहाती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,189 है। ये लोग पश्चिमोत्तर भारत में रहते हैं।

गोंडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 140 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

गौड़—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 215 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

ग्रंथ लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार[1] इस लिपि का प्रचार मद्रास के (वर्तमान आंध्र समेत) उत्तरी-दक्षिणी अर्काट, त्रिशिरापल्ली, मदुरा और

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ 43-44, 89-90।

तिन्नेवेल्लि जिलों में तथा त्रावणकोर कोचीन राज्य में 7वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक रहा। क्रमशः इसमें रूपान्तर हुए और तदनुसार वर्तमान ग्रंथ-लिपि बनी। मद्रास के तामिल लिपि वाले भागों में तामिल लिपि की अपूर्णता के कारण संस्कृत ग्रंथ उसमें नहीं लिखे जा सकते, इसी से वे इस लिपि में लिखे जाते हैं और डा० ओझा के अनुसार शायद संस्कृत ग्रंथों की लिपि होने के कारण ही इसका यह नाम पड़ा। यह पल्लव, पांड्य, चोल, चालुक्य और विजय नगर के यादवों आदि के शिलालेखों और दानपत्रों में मिलती है। पश्चिमी लिपि की भाँति सुन्दरता की दृष्टि से इसमें खड़ी और आड़ी लकीरों को खमदार और ग्रन्थियुक्त रूप दिये गए। जिससे वर्तमान ग्रन्थ लिपि वर्तमान तेलुगु और कन्नड़ लिपियों से भिन्न हो गई।

ग्रासमान नियम—साधारण ग्रिम नियम (दे० यथा०) के अनुसार क्, त्, प् का ह्, थ्, फ् होना चाहिए। इसलिए ग्रीक किग्खो तुख्लोस और पिथास से अंग्रेजी में हो, थम, और फोड़ी बनना चाहिए पर क्रमशः ग्रो, डम, बाडी बनते हैं। यह अपवाद खोज निकालने का श्रेय ग्रासमान को है और उन्हीं के नाम से यह नियम प्रसिद्ध हो गया है। ग्रासमान का निष्कर्ष यह है कि मूल भारोपीय भाषा में यदि शब्द या धातु (अक्षर) के आदि और अंत दोनों ही ओर महाप्राण हो, तो ग्रीक संस्कृत आदि भाषाओं में एक अल्पप्राण हो जाता है। इस कारण 'हा' और 'भी' आदि जुहात्यादि धातुओं में हहाति भिभोति रूप न बनकर जहाहि बिभेति आदि रूप बनते हैं। इसी प्रकार संस्कृत दुहिता का अंग्रेजी में डौटर (ड्) ग्रिम नियम विरुद्ध है। ग्रासमान के अनुसार दुहिता का द् मूल-भारतीय ध् का प्रतिनिधि है, जिसका समाधान काम-धुक्, दूध आदि में भी मिल जाता है। अतः मूल भारोपीय भाषा में प्रथमावस्था में दो महाप्राण होंगे, जो दूसरी अवस्था में नहीं रहे। अतः क् त् प् के स्थान में जहाँ अपवादस्वरूप ग् द् ब् मिलते हैं उस स्थिति में उनका मूल भारोपीय रूप घ् ध् प् रहा होगा, जिनका ग् ड् ब् होना नियमानुकूल है। ग्रीक संस्कृत में भ के ब या प हो जाने का समाधान इस नियम में मिलता है। विशेष दे० ग्रिम नियम, ध्वनि नियम, अल्पप्राणीकरण।

ग्रिम नियम—इस विषय की ओर डेनमार्क के विद्वान् रास्क (1787-1832) ने 1818 में और इहरे ने भी संकेत किया था, पर इसका पूर्ण वैज्ञानिक विवेचन जेकब ग्रिम (1785-1893) ने किया और इस कारण यह उनके ही नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने जर्मन व्याकरण के 1822 में निकलने वाले द्वितीय संस्करण में इसकी स्थापना की। उनके अनुसार भारोपीय भाषाओं में एक ओर ग्रीक-संस्कृत और दूसरी ओर जर्मन-ट्यूटानिक आदि भाषाओं में कुछ वर्ण-परिवर्तन दिखाई देते हैं। जर्मन भाषा में यह वर्ण-परिवर्तन दो बार एक-बार ईसा से कई शताब्दी पूर्व और दूसरी बार लगभग सातवीं आठवीं-शताब्दी में ऐंग्लो-सैक्शनों के जर्मनों से पृथक् होने के बाद हुआ। संस्कृत, ग्रीक, लेटिन और स्लेव्होनिक भाषाओं ने तो साधारण स्थानीय परिवर्तनों को छोड़ अन्यथा मूल व्यंजनों को बनाए रखा है, पर जर्मन आदि भाषाओं में पूरा परिवर्तन दिखाई देता है।

प्रथम वर्ण परिवर्तन

(1) मूल भारोपीय भाषा के क् त् प् (अघोष अल्पप्राण) का जर्मन आदि में ख् (ह्), थ्, फ् (घ, ध्, भ् भी) हैं संघर्षी अघोष महाप्राण) :—

(क) क से ह — कद् (संस्कृत) quod (लेटिन) hwas (गोथिक) was (जर्मन) what (अंग्रेजी), और दे० संस्कृत कः से अंग्रेजी who, संस्कृत शतम्[1] से अंग्रेजी hundred, संस्कृत श्वा से अंग्रेजी hound, संस्कृत शिरष् से अंग्रेजी horn आदि।

(ख) त् से थ् - त्रयः (संस्कृत), treis (ग्रीक) tres (लेटिन) tri (रूसी) threis (गोथिक) drei (जर्मन) thr (पुरानी अंग्रेजी) three (अंग्रेजी) और दे० संस्कृत तनु से अंग्रेजी thin, संस्कृत दंत से अंग्रेजी tooth, संस्कृत तृण से अंग्रजी thorn आदि।

(ग) प् से फ् : पशु (संस्कृत) pegnumi (ग्रीक) pecus (लेटिन) faihn (गोथिक) vich (जर्मन) fee (अंग्रेजी), और दे० संस्कृत पिता से अंग्रेजी father, संस्कृत पात् से अंग्रेजी foot, संस्कृत नपात् से अंग्रेजी nephew आदि।

(2) मूल भारोपीय भाषा के ग् द् ब् (घोष अल्पप्राण) जर्मन आदि में क् त् प् (अघोष अल्पप्राण) :—

(क) ग् से क्—युगम् (संस्कृत) zugon (ग्रीक) Ingum (लेटिन) Juk (गोथिक) Joch (जर्मन) yoke (अंग्रेजी), और दे० संस्कृत गो से अंग्रेजी Cow, संस्कृत जानु से अंग्रेजी knee, संस्कृत ज्ञान से अंग्रेजी know आदि।

(ख) द् से त् —दशन् (संस्कृत) deka (ग्रीक) decem (लेटिन) taihen (गोथिक) zehen (जर्मन) ten (अंग्रेजी) और दे० संस्कृत द्वि से अंग्रेजी two, संस्कृत अद् से अंग्रेजी eat, संस्कृत उद् से अंग्रेजी water, संस्कृत (नि) सीद् से अंग्रेजी sit आदि।

(ग) ब् से प् —संस्कृत के उदाहरण नहीं मिलते[2] लेटिन labuna का अंग्रेजी lip, लेटिन lubiicus का अंग्रेजी slippery आदि रूपों में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं।

(3) भारोपीय मूल भाषा के घ्, ध्, भ् (घोष महाप्राण) के स्थान पर जर्मन आदि में ग् द् ब् (घोष अल्पप्राण) :—

(क) घ (ह्) से ग्—हंस (संस्कृत), khen (ग्रीक) gans (पुरानी उच्च जर्मन) goose (अंग्रेजी) और दे० लेटिन hostis का अंग्रेजी guest, संस्कृत वह् से अंग्रेजी weigh, संस्कृत दुहिता का अंग्रेजी daughter आदि।

(ख) ध् से द् (ड्)—धूमः (संस्कृत) phumos (ग्रीक) pumus (लेटिन) Danst (जर्मन) dust (अंग्रेजी), और दे० संस्कृत धा से अंग्रेजी do, संस्कृत धिति से अंग्रेजी deed, संस्कृत विधवा से अंग्रेजी widow, संस्कृत द्वार से अंग्रेजी door आदि।

---

1. संस्कृत श् भी मूल भारोपीय 'क' का ही प्रतिनिधि माना जाता है।
2. मूल भारोपीय भाषा में ब् कम प्रयुक्त होता था, अतः आश्चर्य की बात नहीं।

(ग) भ् से ब्—भ्रातृ (संस्कृत) phrater (ग्रीक) frater (लै०) brother (गोथिक) bruder (जर्मन) brother (अंग्रेजी), और दे० संस्कृत भरामि से अंग्रेजी bear, संस्कृत भ्रू से अंग्रेजी brow, संस्कृत भूर्ज से अंग्रेजी birch आदि।

द्वितीय वर्ण परिवर्तन

ऐंग्लो-सेक्शन लोगों के जर्मन लोगों से पृथक् होने के बाद सातवीं शताब्दी में एक द्वितीय वर्ण परिवर्तन भी हुआ। प्रधान वर्ण परिवर्तन में जर्मन भाषा मूल भारोपीय भाषा से पृथक् हुई थी, द्वितीय वर्ण परिवर्तन में जर्मन भाषाओं में ही दो भेद उच्च जर्मन और निम्न जर्मन हो गए। उच्च जर्मन वालों के उसी स्थान पर बने रहने से वे इस द्वितीय वर्ण परिवर्तन से प्रभावित हुए, परन्तु उस स्थान से हट जाने के कारण निम्न जर्मन वाले (अंग्रेजी आदि वाले) अप्रभावित बने रहे। ग्रिम द्वारा दी गई तालिकाओं से पता चलता है कि निम्न जर्मन के रूप ऐंग्लो-सेक्शन और अंग्रेजी के रूपों से तो मिलते हैं, परन्तु उच्च जर्मन के रूपों से नहीं मिलते :—

(क) निम्न जर्मन (अंग्रेजी) P का उच्च जर्मन में pf या f

deep=teef
pound=pfund
sheep=schaf

T के स्थान में ts या s

tooth=zahn (z=ts)
ten=zehn
Foot=Fass
Let=Lessen

K के स्थान में ch

yoke=Joch
reckon=rechnen

F और V के स्थान में b

dove=taube
thief=dieb

D के स्थान में t

deed=tat
drink=trinken
daughter=tochter

Th के स्थान में d

three=dreh
brother=bruder
thorn=dorn

मैक्समूलर के शब्दों में ग्रिम नियम की साधारण तालिका निम्न प्रकार से है :

संस्कृत	घ् (ह्)	ध् (ह्)	द् (ह्)	ग	ड	ब	स	त	प
ग्रीक	खी	थेटा	फी	गाया	डेल्टा	बेटा	कप्पा	ताऊ	पी
लेटिन	h(g,u)	f(d,b)	f (b)	g	d	b	c, qu	t	p
पुरानी आयरिश	g	d	b	g	d	b(h)	c, ch	t, th	(p)?
पुरानी स्लेह्वोनिक	gz	d	b	gz	d	b	k	t	p
लिथुआनियन	gz	d	b	gz	d	b	k	t	p
गोथिक	g	d	b	k	t	p (?)	h, g(f)	th, d	f, b
पुरानी उच्च जर्मन	k	t	p	ch	zz	f, ph	h, gk	d	f, b

संक्षेपतः यह सारिणी यों भी चलती है :—

संस्कृत आदि में	K T P	G D B	Gh Dh Bh
अंग्रेजी आदि में	H Th F	K T P	G D B

अथवा

(1) अघोष	महाप्राण	सघोष
(2) महाप्राण	सघोष	अघोष
(3) सघोष	अघोष	महाप्राण

इसके आदि वर्णों को लेकर बाबू श्यामसुन्दर दास ने अमसमसासाम सूत्र बनाया है। यहाँ अघोष, सघोष तथा महाप्राण शब्द अपने व्यापक अर्थ में नहीं, बल्कि अंग्रेजी Tenues, Medeia और aspirate के लिए प्रयुक्त हुए हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री ने निम्न त्रिकोण का प्रयोग किया है :—
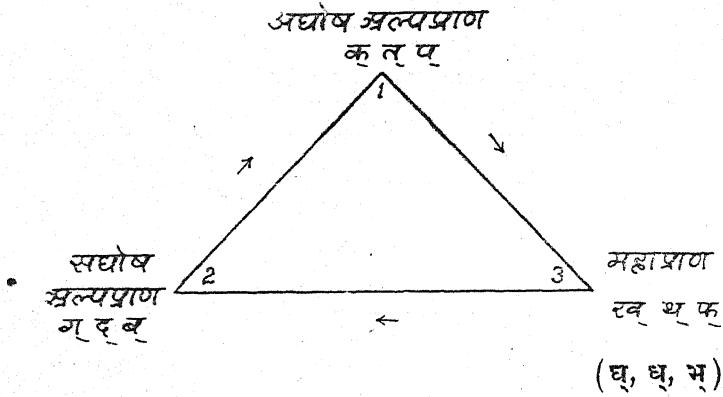
इसमें किसी एक कोण के शब्दों को मूल भारोपीय के शब्द मानकर अगले कोण पर प्रथम वर्ण परिवर्तन (निम्न जर्मन आदि में) तथा दूसरे कोण पर द्वितीय वर्ण परिवर्तन (उच्च जर्मन में) को देखा जा सकता है।

मैक्समूलर ने सुविधा के लिए तो इस नियम को यथावत् मानना विशेष बुरा नहीं समझा, परन्तु उसे पूर्ण नियम मानने के पक्ष में वह कभी न थे। उन्होंने अनेक उदाहरण देते हुए दो-तीन प्रश्न उठाए थे—क्या ग्रीक T गोथिक Th बन जाती है, गोथिक T के पुरानी उच्च जर्मन में Z बनाने का क्या अर्थ है, आदि। जेस्पर्सन के अनुसार ग्रिम ने जिन दो भिन्नकालीन वर्णपरिवर्तनों को एक सूत्र में ग्रथित करने की चेष्टा की है, उनमें दूसरे का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है, जितना ग्रिम महोदय समझते हैं। दूसरे यह वर्ण-परिवर्तन केवल ट्यूटानिक भाषा में ही हुआ था, और उसका मूल भारोपीय भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। तीसरे ग्रिम द्वारा अपने नियम की सीमाएँ स्पष्ट नहीं की गईं थीं, अतः कुछ अपवाद तो उसे स्वतः ही मिल गए (जैसे sk, st, sp

kt और pt के संयोगों में k, t, p के परिवर्तन नहीं होते, उदा० लेटिन piscis का उच्च जर्मन fisch, संस्कृत अस्ति का Ist, संस्कृत स्पश् का Spehon, संस्कृत अष्टौ का acht, संस्कृत नप्ता का nift आदि; और कुछ अन्य अपवादों की भी गुंजाइश बनी रही (दे० ग्रासमान नियम, वर्नर नियम)। डा० गुणे के शब्दों में हम कह सकते हैं कि ध्वनि-नियम सर्वथा पूर्ण नहीं होते और उनमें देश-काल की सीमा होती है। अतः कोई ध्वनि-नियम निश्चित करते समय हमें उसकी सीमाओं का स्पष्ट निरूपण कर देना चाहिए। वस्तुतः ध्वनि-नियम भाषा सम्बन्धी तथ्यों द्वारा निर्मित किया गया साधारण नियम मात्र होता है, और विहित दशाओं में ही वह सत्य सिद्ध हो सकता है। विशेष दे० ध्वनि-नियम, ग्रासमान नियम, वर्नर नियम, अन्य ध्वनि-नियम।

ग्रोइया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 97 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

ग्वालनाम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 136 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

घ

घ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कंठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरण इसे महाप्राण घोष स्पर्श व्यंजन मानते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका स्थान पिछले कवर्गीय व्यंजनों के समान ही है अर्थात् इसका उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआकर होता है।

उदा० घाट, चिंघाड़ना, करघा।

घंटी—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में उवुला कहते हैं और हिन्दी में अलिजिह्व, कौआ या घंटी। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

घरिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 278 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

घरेपाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

घर्ष-स्पर्शी—चवर्गीय ध्वनियों को कुछ विद्वान् स्पर्श-संघर्षी न कहकर घर्षस्पर्शी कहते हैं। बात वही है। विशेष विवरण के लिए देखिए स्पर्शसंघर्षी।

घशार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 156 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

घागोद—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 18 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

घाटोली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

घासी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 58 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

घिसाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,286 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

घुआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति पूर्वी भारत में रहता है।

घोष—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्णों य, र, ल, व,

और ह का बाह्य प्रयत्न घोष होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

आधुनिक विद्वानों के अनुसार ध्वनियंत्र तक आने तक श्वास विकारहीन और भेदरहित रहता है। ध्वनियंत्र में से स्वरतन्त्रियों के कड़े रहने पर श्वास को संघर्ष (रगड़) करके निकलना पड़ता है, अथवा उनके शिथिल रहने पर वह बिना रुकावट निकल जाती है। पहली स्थिति को घोष कहते हैं, क्योंकि श्वास संघर्ष (रगड़) के कारण घोष करता है। फुसफुसाहट वाले स्वरों को छोड़ सभी स्वर घोष हैं। घोष व्यंजन ऊपर बताए जा चुके हैं। कान बन्दकर और गले पर हथेली रखकर या लैरिंगो-स्कोप यंत्र की सहायता से इन वर्णों का अघोष वर्णों से भेद स्पष्ट समझा जा सकता है।

घोषीकरण—उच्चारण की सुविधा की दृष्टि से अघोष वर्णों को घोष कर देने की प्रवृत्ति, जैसे काक का काग, प्रकट का परगट कर देना आदि। यह ध्वनि परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

ङ

ङ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कंठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न, अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआकर होता है। कोमल तालु कौआ के साथ नीचे झुक जाता है और वायु नासिका विवर में पहुँच कर अनुनासिक ध्वनि (गूँज) पैदा करती है। सभी अनुनासिक व्यंजनों में इसी प्रकार गूंज पैदा होती है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार यह घोष, अल्पप्राण, कंठ्य अनुनासिक स्पर्श ध्वनि है। हिन्दी में आज इसका उपयोग केवल अनुस्वार के परसवर्ण में परिणत होने में (दे० पाणिनि-सूत्र "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः") ही दिखाई देता है, और वह भी अब अप्रचलित हो चला है। लोग अनुस्वार मात्र से काम चलाने लगे हैं। स्वरसहित या शब्दों के आदि या अन्त में किसी भी स्थान पर अब इसका प्रयोग नहीं होता।

उदा० अङ्क (अंक), गङ्गा (गंगा)।

च

च्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, विवार, श्वास और अघोष है। चटर्जी, बेली और सक्सेना के निष्कर्षों के आधार पर डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है कि चवर्गीय अक्षरों का उच्चारण जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। अतः यह स्पर्श-संघर्षी ध्वनि मानी जाती है। तालु के स्थान की दृष्टि से चवर्गीय व्यंजनों का स्थान टवर्गीय व्यंजनों की अपेक्षा आगे की ओर होने लगा है। प्राचीन काल में सम्भवतः पीछे की ओर होता था। तभी चवर्ग को टवर्ग से पहले रखा जाता था। बाबू श्यामसुन्दर दास भी इसी रगड़ के आधार पर इसे घर्ष-स्पर्श या स्पर्शसंघर्षी ध्वनि मानते हैं। इसी प्रसंग में वह तालव्य ध्वनियों के चार ऐतिहासिक कालों की चर्चा करते हैं। पहले भारोपीय काल में तालव्य कंठ के बहुत पास से उच्चरित होते थे। दूसरा काल भारतीय शुद्ध तालव्यों का, तीसरा घर्ष-स्पर्श तालव्यों का और चौथा दंततालव्य घर्ष-स्पर्श वर्णों का है। मराठी में आज भी अन्तिम दो प्रकार के तालव्य हैं। गुजराती, मारवाड़ी, पूर्वी बंगला में दंत तालव्य घर्ष-स्पर्ष हैं, पर हिन्दी में केवल तालव्य घर्ष-स्पर्श हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार हिन्दी की चवर्गीय ध्वनियाँ शुद्ध स्पर्श नहीं हैं, पर बेली उसे शुद्ध स्पर्श मानते हैं।

च् अल्पप्राण, अघोष, तालव्य, घर्षस्पर्श या स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है।

उदा० चम्मच, विचार, लालच।

चंडाल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चंबाली—एक पश्चिमी पहाड़ी भाषा। यह चम्बा क्षेत्र में बोली जाती है। विशेष दे० पहाड़ी।

चकिनांग—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 25,688 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चक्मा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 31 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चनारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चन्नेवरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 153 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चरबाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल दो है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चरोग्रा—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या एक है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

चांग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,053 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चाकमा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 23,118 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चामरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,871 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चिगपा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 39 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चिगारीपोचा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 67 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चितरानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1 है। यह व्यक्ति पश्चिमी भारत में रहता है।

चित्तौड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 53 है। ये लोग भारत के मध्य भाग (चित्तौड़) में रहते हैं।

चिन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 81 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चिरंजी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चिवंगी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 45 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चिस्ट—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 11 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चीरू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10,79 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चुक्कबोटला—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 53 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चुटिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,715 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं। इसके देउरी और चुटिया दो नाम हैं।

चेंचू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 68 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चोटे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 695 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चौभाषा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 860 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चौरंजी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

चौरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 61 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

चौरासी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 81 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

छ

छ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण-स्थान तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा वाह्य प्रयत्न महाप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह महाप्राण अघोष तालव्य स्पर्श संघर्षी व्यंजन है। च् (दे० यथा०) से इसका यही अन्तर है कि यह महाप्राण है, जबकि च् अल्पप्राण।

उदा० छितराना, कछुआ, कुछ।

छत्तीसगढ़ी—मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ में बोली जाने वाली हिन्दी की एक क्षेत्रीय बोली। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह रायपुर, विलासपुर, काँकेर, नन्दगाँव, खैरगढ़, रायगढ़, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर तथा जशपुर आदि में भिन्न-भिन्न रूपों में बोली जाती है। छत्तीसगढ़ी भी साहित्य की आदृत भाषा का स्थान कभी न पा सकी।

इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल संख्या 9,02,908 है। जो निम्न रूप से बँटी हुई है :—पूर्व भारत में 7 और मध्य भारत में 9,02,901 है।

ज

ज्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के मत से यह अल्पप्राण घोष तालव्य घर्ष-स्पर्श व्यंजन है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण भी जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है।

उदा० जगत, गरजना, गाज।

ज़्—यह वर्त्स्य, संघर्षी घोष ध्वनि है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार ज़् और स् (दे० यथा०) का उच्चारण स्थान एक ही है, बस यह घोष है और स् अघोष। यह स्पर्श ज् से नहीं बल्कि स् से अधिक मिलता है। यह हिन्दी में विदेशी ध्वनि है। अरबी-फारसी या अंग्रेजी के तत्सम शब्दों में ही इसका प्रयोग होता है। अत्र साधारण स्पर्शी ज् भी अरबी-फारसी शब्दों के लिए चल पड़ा है। उदा० ज़ालिम, बाज़, गुज़र।

जंगली—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम लंधा भी है, बोलने वालों की संख्या 37 है। इनमें से 16 भारत के पूर्वी और 21 मध्य भाग में रहते हैं।

जंगड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बालने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जगन्नाथी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 316 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जटकी—बांगरू भाषा का एक अन्य नाम। विशेष दे० बांगरू। इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

जटवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,079 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जतापू—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम खोंड भी है, बोलने वालों की संख्या 37,518 है। इनमें [illegible] भारत के मध्य और शेष दक्षिणी भाग में रहते हैं।

जनराचपरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जपित—फुसफुसाहट वाला स्वर। श्यामसुन्दर दास के अनुसार जब हम किसी

कान में कुछ कहते हैं, तो नाद ध्वनियाँ जपित हो जाती है और श्वास ज्यों की त्यों बनी रहती है। जपित स्वर के उच्चारण में जिह्वा द्वारा कोई अन्तर नहीं होता। केवल काकल की स्थिति कुछ भिन्न हो जाती है।

जफेटिक-परिवार—सेमेटिक और हैमेटिक भाषा-परिवारों की तुक पर दिया गया भारोपीय-परिवार का एक अन्य नाम। यह नाम प्रचलित न हो सका। विशेष दे० भारोपीय-परिवार।

जमतिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,750 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

जयपुरी—इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 15,88,069 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप से बँटी हुई है—उत्तर भारत 89, मध्य भारत 4,390 और पश्चिमोत्तर भारत 15,83,590। इसे ढूँढरी (या धूँधरी) भी कहते हैं।

जरुआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

जाटू—बांगरू भाषा का एक अन्य नाम। विशेष दे० बांगरू।

जाती—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम जातू भी है, बोलने वालों की संख्या 62 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जातू—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम जाती भी है, बोलने वालों की संख्या 62 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जादमी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, बोलने वालों की संख्या 51 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जापानी—विश्व की लब्धप्रतिष्ठ भाषाओं में से एक होने पर भी जापान की भाषा का किसी निश्चित भाषा-परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। यूराल-अल्टाइक परिवार से इसका सम्बन्ध जोड़ने के प्रयत्न भी विशेष सफल नहीं हुए। इसमें प्रायः हजार-डेढ़ हजार वर्ष पुराना साहित्य मिलता है। प्राचीनतम धर्म ग्रन्थ कोसिकी है, जो शिन्तो धर्म की पवित्रतम पुस्तक है। जापानी की लिपि चीनी है, पर उसमें जो अन्तर है, उसे देखने से पता चलता है कि किसी संस्कृतज्ञ विद्वान् ने चीनी लिपि को जापानी की लिपि का रूप दिया था। इस पर ब्राह्मी लिपि का प्रभाव काफी स्फुट है। यह अश्लिष्ट अन्तयोगात्मक भाषा है। लिखने और बोलने की बोलियों में बहुत अन्तर है, और बोलने में भी उच्च और निम्न वर्ग का अन्तर विशेष अधिक रहता है। संयुक्त व्यंजन तो कम हैं, पर ध्वनियाँ फिर भी जटिल हैं। बहुवचन के लिए वीप्सा (जैसे जामा=पहाड़, जामाजामा=अनेक पहाड़) जापानी का प्रसिद्ध गुण है। संज्ञाओं आदि का सम्बन्ध तत्त्व पर सर्गों से प्रकट किया जाता है।

जिह्वा—ध्वनियों के उच्चारण में जीभ की विशेष सहायता ली जाती है। इस दृष्टि से इसके निम्न छः विभाग किए जाते हैं :

1. जिह्वा

2. जिह्वानीक (या नोक)
3. जिह्वाग्र
4. जिह्वामध्य
5. पश्च जिह्वा (या जीभ की पीठ)
6. जिह्वामूल

विशेष दे० ध्वनि अवयव।

जिह्वामूलीय—कुप्वो : ≍ क ≍ पौ च (पाणिनि सूत्र 8/3/37) के अनुसार कवर्ग से पहले आने वाली विसर्ग विकल्प से एक बार ≍ में हो जाती है। इसे जिह्वा-मूल से उच्चरित होने के कारण जिह्वामूलीय कहते हैं।

जुआंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12,559 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

जुन्नी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जुबली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 516 है। ये लोग भारत के उत्तरी भाग में रहते हैं।

जेलिआंग—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,602 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

जेमी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,918 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

जैंतिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 23,652 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

जैनी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 149 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,062 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

जोगिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम जोगी भी है, बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जोगी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम जोगिया भी है, बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जोशी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

जौनसारी—उत्तर प्रदेश के जौनसार-बाबर क्षेत्र में बोली जाने वाली एक पहाड़ी भाषा। विशेष दे० पहाड़ी। इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 54,019 है।

झ

झ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, संवार नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार अन्य चवर्गीय (दे० च) ध्वनियों के समान ही इसका भी उच्चारण होता है और डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में यह महाप्राण, घोष, स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है। उदा० झाड़, झंझट, सूझ।

झरिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,539 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

झोरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 178 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

ञ

ञ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह घोष, अल्पप्राण, तालव्य अनुनासिक ध्वनि है। अन्य अनुनासिक व्यंजनों के भाँति इसके उच्चारण में भी कोमल तालु कौआ के साथ नीचे झुक जाता है और वायु नासिका विवर में पहुँचकर अनुनासिक ध्वनि (गूंज) पैदा करती है। ङ् (दे० यथा०) की भाँति इसका प्रयोग भी कुछ लोग परसवर्ण के लिखने के लिए करते हैं, पर डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार संस्कृत चञ्चल का उच्चारण हिन्दी में चन्चल की भाँति होता है। डा० बाबूराम सक्सेना ने अवधी में यह ध्वनि बताई है, पर उसके लिए दिए गए उदाहरणों से यही बात पुष्ट होती है। ब्रज में हवा की साञ् साञ् में यह ध्वनि सानुनासिक य् (यँ) से मिलती-जुलती होती है, ऐसा डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है। उदाहरण ऊपर स्पष्ट हैं।

ट

ट्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान मूर्धा, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के मत से यह अल्पप्राण, अघोष, मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन है। मूर्धा का अर्थ है, कठोर तालु का सबसे पिछला भाग। समस्त टवर्गीय ध्वनियों का उच्चारण डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार जीभ की नोक को उलटकर उसके नीचे के हिस्से से कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआकर किया जाता है। उच्चारण की कठिनाई के कारण बच्चे टवर्गीय व्यंजनों का उच्चारण बहुत देर में कर पाते हैं। अंग्रेजी में ट् ड् ध्वनियाँ नहीं हैं, और टी डी वर्त्स्य हैं, पर हिन्दी में वर्त्स्य ध्वनियाँ न होने से इनका उच्चारण मूर्धन्य हो जाता है। वर्त्स्य ध्वनियों का उच्चारण ऊपर के मसूड़े का बिना उल्टी हुई जीभ की नाक से स्पर्श करके किया जाता है। वेदों में मूर्धन्य वर्णों की संख्या कम है, अतः कुछ विद्वानों का विचार है कि ये ध्वनियाँ भारोपीय काल की नहीं हैं। बल्कि अनार्यों के सम्पर्क से प्रा० भा० आ० में इनका प्रयोग होने लगा था। बाबू श्यामसुन्दरदास का विचार है कि वर्णमाला के क्रम के अनुसार यह न समझना चाहिए कि कंठ के बाद तालु, और तब मूर्धा आता है, प्रत्युत कंठ्य और तालव्य (दाक् और वाच्) तथा मूर्धन्य और दंत्य (विकृत और विकट) वर्णों का सम्बन्ध देख कर ही वह वर्णक्रम रखा गया है। उदा० टमटम, टमाटर, सरपट।

टाट—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 24 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

टुडा—यह द्रविड़-परिवार (दे० यथा०) की एक छोटी-सी भाषा है, जो नीलगिरी की जंगली जातियों द्वारा बोली जाती है। परन्तु इसके बोलने वालों की संख्या अनुदिन कम होती जा रही है।

ट्यूटानिक—भारोपीय परिवार के केंटुम्‌वर्ग की एक महत्त्वपूर्ण शाखा। इसका एक नाम जर्मनिक अथवा जर्मन शाखा भी है। इन भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता इनका निराला ध्वनि-परिवर्तन है, जिसे ग्रिम नियम (दे० यथा०) द्वारा ग्रथित करने का प्रयत्न किया गया है। यह परिवर्तन प्रागैतिहासिक काल में हुआ था, और इसी से यह शाखा अन्य भारोपीय शाखाओं से भिन्न दीख पड़ती है। दूसरा वर्ण-परिवर्तन ईसा की सातवीं शताब्दी में पश्चिमी जर्मन भाषाओं में ही हुआ, जिनके उच्च और निम्न दो वर्ग हो गए। विशेष दे० ध्वनि-नियम।

प्राचीन काल से ही इस प्रणाली की भाषाएँ स्वीडिश को छोड़ कर संयोगात्मक से वियोगात्मक होती रही हैं। भारोपीय मूल भाषा में संयोगात्मक स्वराघात था, पर इन सबमें बलात्मक स्वराघात ही पाया जाता है। इस शाखा की भाषाओं के प्राचीनतम उदाहरण तीसरी शताब्दी के मिलते हैं, जो पुरानी ग्रीक और रोमन लिपियों से भिन्न रूनी लिपि में हैं। चौथी सदी में इंजील का अनुवाद भी हुआ। वैसे इस शाखा की भाषाओं में साहित्य रचना ईसा से लगभग एक हजार वर्ष बाद आरम्भ हुई है।

इस शाखा की भाषाओं का विभाजन पहले पूर्वी और पश्चिमी दो उपशाखाओं में किया जाता है। पूर्वी में गाथिक और उत्तरी ट्यूटानिक दो वर्ग है। उत्तरी ट्यूटानिक में भी पश्चिमी नार्स (आइसलेंडिक, नारवेजियन) और पूर्वी नार्स (स्वीडिश डैनिश) दो वर्ग हैं। पश्चिमी उपशाखा में भी एक वर्ग में यह निम्न जर्मन भाषा में आती है : प्राचीन सेक्सन (कांटीनेण्टल सेक्सन, प्राचीन अंग्रेजी या एंग्लो सेक्सन, मध्य अंग्रेजी और आधुनिक अंग्रेजी), प्राचीन फ्रिजियन (पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी फ्रिजियन भाषाएँ), प्राचीन फ्रैंक (उत्तरी निम्न फ्रैंक की डच, फ्लैमिश और बारबंत ही निम्न जर्मन में आती हैं) दूसरे वर्ग में ये उच्च जर्मन भाषाएँ आती हैं : प्राचीन फ्रैंक (मध्य फ्रैंक, दक्षिणी फ्रैंक); और प्राचीन उच्च जर्मन (बावेरियन, स्वाबियन, अलमानिक)।

पूर्वी उपशाखा की सबसे प्राचीन भाषा गाथिक है, जिसमें चौथी सदी में उलफिलास ने बाइबिल लिखी थी। कृष्णसागर के आस-पास 16वीं शताब्दी तक इसके रहने के संकेत मिलते हैं। संयोगात्मकता के कारण यह संस्कृत के बड़ी निकट की भाषा बतायी जाती है। इसमें द्विवचन भी है। प्राचीन नार्स के पांचवीं शताब्दी के शिलालेख रूनी लिपि में पाए जाते हैं। नार्स की पूर्वी-पश्चिमी दो शाखायें 10वीं शताब्दी के लगभग हो गईं। डेनिश डेनमार्क के साथ ही नार्वे के भी कुछ भाग में बोली जाती है। इसके 13वीं शताब्दी तक के उदाहरण मिलते हैं। इसमें ध्वनि का भी खूब विकास हुआ है। स्वीडिश स्वीडन और फिनलैंड के कुछ भाग में बोली जाती है, इसकी सबसे बड़ी विशेषता संगीतात्मक स्वराघात है, जो अन्य भारोपीय भाषाओं से लुप्त हो गया है। नार्वेजियन नार्वे में और आइसलैंडिक आइसलैंड और स्कॅंडेनेविया के पश्चिमी भाग में बोली जाती है।

प्राचीन सैक्सन की मध्यवर्ती शाखा में 1100 ई० के आस-पास अंग्रेजी का उद्भव हुआ। आज यह विश्व की सबसे समृद्ध भाषा है। इसकी तीन बोलियों में स्काटलैंड की नार्थम्बरियन मुख्य है। फ्रिजियन भाषायें 13वीं-14वीं शताब्दी से बोली जाने लगी थीं। अब ये जर्मनी और हालैंड के कुछ भागों में बोली जाती हैं, शेष भाग में डच भाषायें व्यवहृत होती हैं। फ्रैंक भाषाओं का प्राचीन क्षेत्र राइन से नीदरलैंड तक था। मध्यवर्ती शाखा में उच्च और निम्न दोनों वर्गों की कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं। इनमें भी तेरहवीं सदी से साहित्य मिलता है। उच्च जर्मन पूरे ट्यूटानिक परिवार में मूल भाषा से अपेक्षतया निकट है। यह सम्पूर्ण जर्मनी और आस्ट्रिया की भाषा है।

ठ

ठ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान मूर्धा, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह महाप्राण, अघोष, मूर्धन्य स्पर्श है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में स्थान की दृष्टि से ट् और ठ् में भेद नहीं है, बस ठ् महाप्राण है, जबकि ट् अल्पप्राण।

उदा० ठाट, कठोर, साठ।

ठकरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 69 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ठाकुर—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कोंकणी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या केवल 61 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ड

ड्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान मूर्धा, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट, तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के मत से यह अल्पप्राण घोष मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण (ट् की भाँति) जीभ की नोक को उलट कर उसे कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआ कर होता है।

उदा० डाक, टोडरमल, खड।

ड़्—यह अल्पप्राण, घोष, मूर्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर नीचे के हिस्से से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है। उनके विचार से न तो यह ड् की भाँति स्पर्श ध्वनि है और न र् की भाँति लुंठित ध्वनि है। यह हिन्दी के तद्भव शब्दों में ही नहीं पाई जाती, बल्कि संस्कृत के कुछ शब्दों में भी (उदा० निविड़) यह ध्वनि प्रयुक्त होने लगी है। यह हिन्दी की नई ध्वनि है। यह शब्दों के आदि में नहीं आती।

उदा० गड़बड़, पेड़, झगड़ा।

डिंगडैंगवाद—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि चोट लगने पर प्रत्येक पदार्थ में स्वभावतः अनुरणन होता है और इन झंकार ध्वनियों के सहारे ही आदि मानव ने ध्वनि संकेत निश्चित कर लिए, जो भाषा के जन्म का कारण बने। मैक्समूलर ने इसे डिंगडैंगवाद नाम दिया है। परन्तु भाषा के एक प्रतिशत शब्दों का भी समाधान इस सिद्धान्त से नहीं होता (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)।

डुकपा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,353 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

डूंगरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 424 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

डेरावाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 29 है। ये लोग उत्तर भारत में रहते हैं।

डोगरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 326 है। जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है: उत्तर भारत 175 पूर्वी भारत 21, दक्षिणी भारत 97, अंडमान-नीकोबार 1, भारत का मध्य भाग 32।

डोम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 24 है, ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते है।

डोयरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 693 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

डोहरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 837 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ढ

ढ्—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका उच्चारण स्थान मूर्धा, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह महाप्राण घोष मूर्धन्य स्पर्श है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में हिन्दी में इसका प्रयोग शब्दों के आरम्भ में ही पाया जाता है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार संस्कृत के तत्सम शब्दों (षंढ), अन्य भाषाओं के शब्दों (पंढरपुर-मराठी) तथा कुछ अन्य शब्दों (बेढंगा, मेढक आदि) में इसके अपवाद मिलते हैं।

उदा० ढपली, ढोर, ढीला।

ढ़्—यह महाप्राण, घोष, मूर्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। ड़् से इसका इतना ही अंतर है कि यह महाप्राण है, जबकि ड़् अल्पप्राण। ड़् की भाँति ही संस्कृत के तत्सम शब्दों में भी इसका प्रयोग होने लगा है (उदा० दृढ़, मूढ़)। यह भी हिन्दी की नई ध्वनि है, और इसका भी प्रयोग शब्दों के आदि में नहीं होता।

उदा० चढ़ना, बूढ़ा।

ण

ण—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान मूर्धा, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह अल्पप्राण, घोष, मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन है। अननुनासिक मूर्धन्य व्यंजनों की अपेक्षा इस अनुनासिक ण के उच्चारण में उलटी जीभ की नोक कठोर तालु का कुछ अधिक पीछे स्पर्श करती है और नासिका-विवर में हवा की गूँज होने देती है। हिन्दी में शब्दों के आदि में इसका प्रयोग नहीं मिलता और वस्तुतः यह ध्वनि संस्कृत तत्सम शब्दों में (उदा० व्याकरण, गुण, परिणाम) में ही मिलती है। अर्द्धस्वरों के पहले स्वर-रहित ण् की ध्वनि सुनने को मिलती है—उदा० तारुण्य, कण्व, परन्तु यह बात भी तत्सम शब्दों के ही विषय में हैं। हिन्दी की बोलियों में सर्वत्र ण् का 'न' होता रहा है, उदा० गनेस, गुन, पुन्य आदि। परसवर्ण के प्रसंग में भी न् की ही ध्वनि सुनने को मिलती है—उदा० घण्टा, ठण्डा। वस्तुतः अब परसवर्ण के लिए अनुस्वार का सीधा और सुविधाजनक प्रयोग सर्वप्रचलित हो गया है।

त

त्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान दंत, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, विवार, श्वास और अघोष है। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह अल्पप्राण, अघोष, दंत्य स्पर्श है। इसके उच्चारण में दांतों की ऊपर की पंक्ति का जीभ की नोक से स्पर्श किया जाता है।

उदा० तलवार, मतवाली घात।

तंगखुल—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 34,964 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तंबोली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तकनकारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 330 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तकारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 257 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तगबली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 214 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तत्सम—किसी भाषा के साहित्यिक रूप में विद्वान् अपनी विद्वत्ता प्रकट करने के लिए प्राचीन मूल भाषा के कुछ शब्दों का यथारूप प्रयोग करते हैं, वे शब्द उस प्राचीन भाषा के रूपों के समान होने के कारण तत्सम (तत् = उसके + सम = समान) कहे जाते हैं। अंग्रेजी आदि में लेटिन के अनेक तत्सम शब्द मिलते हैं। परन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर-प्रयोग देखने को मिलता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में साहित्यिक हिन्दी में तत्सम अर्थात् प्रा० भा० आ० के साहित्यिक रूप संस्कृत के विशुद्ध शब्दों की संख्या सदा से अधिक रही है। उनके विचार से इसमें लोगों की पांडित्य प्रदर्शन की भावना ने ही विशेष कार्य किया है। आधुनिक काल में पारिभाषिक शब्दों की बढ़ती हुई माँग के युग में हिन्दी में तत्सम शब्दों का भण्डार और भी बढ़ता चला जा रहा है। आधुनिक युग में विकृत होने वाले शब्दों का डा० धीरेन्द्र वर्मा अर्द्धतत्सम कहते हैं, जैसे कृष्ण तत्सम शब्द है, कान्ह तद्भव, परन्तु कृष्ण से आधुनिक काल में बनने वाला 'किशन' अर्द्धतत्सम।

तदावी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 458 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तद्भव—वैयाकरणों के शब्दों में प्राचीन मूल भाषा के शब्दों से भाषा विज्ञान के नियमों के अनुसार विकसित होने वाले शब्दों को तद्भव (तद्=उससे+भव=पैदा होने वाले) शब्द कहते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिन्दी शब्द समूह में सबसे अधिक संख्या ऐसे ही शब्दों की है, जो प्राचीन आर्यभाषाओं से मध्यकालीन आर्य-भाषाओं में विकसित होते हुए चले आ रहे हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है कि यह अनिवार्य नहीं कि प्रत्येक तद्भव शब्द का सम्बन्ध संस्कृत शब्द से निकल आए। जिन शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत से नहीं जुड़ता उनमें ऐसे शब्द भी हो सकते हैं, जिनका उद्गम प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के ऐसे शब्दों से हुआ हो, जिनका व्यवहार उस समय इस साहित्यिक रूप में न होता हो। बहुत से शब्दों में भाषा विज्ञान के नियमों के कारण बहुत परिवर्तन हो गए हैं। साहित्यिक हिन्दी में ऐसे शब्दों का प्रयोग इसलिए कम होता है कि इनको गँवारू माना जाता है, पर देखा जाए तो वस्तुतः ये ही हिन्दी के अपने शब्द हैं। जनता की बोलचाल में तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में व्यवहृत होते हैं।

तमंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 58,228 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तमरिआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8,017 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तरोआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 160 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तलाबी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 70 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तलामी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 37 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तहसील—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 172 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ताई—भारत की इस अनिर्दिष्ट बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तामिल—द्राविड़ परिवार (दे० यथा०) की भाषाओं में सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण भाषा। यह भारत में मद्रास के उत्तर से लेकर कुमारी अन्तरीप तक और लंका में उत्तरी भाग में बोली जाती है। इसकी साहित्यिक बोली में, जिसे शेन (पूर्ण) कहते हैं, संस्कृत शब्द प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह कोडुन (ग्रामीण) नामक बोलचाल की बोली से पृथक् है। साहित्य की दृष्टि से यह बड़ी समृद्ध भाषा है और भारत की समृद्ध साहित्यिक भाषाओं में गिनी जाती है।

तामिल लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार[1] मद्रास के ग्रन्थ लिपि (दे० यथा०) वाले क्षेत्रों में तथा मालाबार प्रदेश में मिलने वाले पल्लवों, चोलों, राष्ट्रकूटों, चालुक्यों आदि के शिलालेखों और दानपत्रों में सातवीं शताब्दी से इस लिपि के दर्शन होते हैं। इस लिपि में स्वर तो अ से औ तक हैं (यद्यपि औ के विषय में मतभेद है), पर व्यंजन केवल 18 ही हैं, जिनमें भी चार ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनका संस्कृत से कोई सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार शेष 14 व्यंजन संस्कृत ध्वनियों को व्यक्त नहीं कर पाते और उसके लिए ग्रन्थ लिपि की सहायता लेनी पड़ती है। इस कारण अधिकांश अक्षर भी ग्रन्थ लिपि से प्रभावित हैं। इसमें संयुक्त व्यंजन एक दूसरे से मिलाकर नहीं, बल्कि पास-पास लिखे जाते हैं। वर्तमान तामिल लिपि के अक्षरों में कुछ का विकास दसवीं शताब्दी तक तथा शेष का चौदहवीं शताब्दी तक हो गया था।

तालव्य—स्पर्श ध्वनियों का तीसरा विभाजन। इनके उच्चारण में जिह्वाग्र ऊपर उठकर कठोर तालु का स्पर्श करता है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इ, चवर्ग, य्, श् ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं। आधु० भारतीय चवर्गीय ध्वनियों के विषय में चटर्जी और कादरी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये शुद्ध स्पर्श न होकर स्पर्श संघर्षी व्यंजन हैं। अंग्रेजी च्, ज् ध्वनियाँ तो निश्चय ही स्पर्श संघर्षी है, पर डा० धीरेन्द्र वर्मा और श्यामसुन्दरदास के अनुसार मेरठ-दिल्ली के खड़ी बोली के केन्द्रों में इसका और अधिक परीक्षण होना चाहिए। अंग्रेजी में इन ध्वनियों को पैलेटल कहते हैं।

तालव्य-नियम—कुछ विद्वान् इसे सामान्यतः कालित्ज का तालव्य-नियम कहते हैं, पर कालित्ज़ का उल्लेख दे सौशोर के साथ एसाय तेगर ने किया था। इसके पहले विल्हेम थाम्सन ने 1875 में संकेत किया था। जोहन्स श्मिट का लेख भी 1920 में प्रकाशित हुआ था। इस प्रकार इस नियम के साथ छः व्यक्तियों का नाम लिया जाता है।

बाबू श्यामसुन्दर दास के शब्दों में मूल भारोपीय भाषा में दंत्य और ओष्ठ्य व्यंजनों के अतिरिक्त शुद्ध कंठ्य, मध्य कंठ्य और तालव्य—तीन कंठ्य स्पर्श और थे। परवर्ती भाषाओं में ये ध्वनियाँ उल्हेनबैक के अनुसार विभिन्न रूपों में विकसित हुईं। ग्रीक, इटाली, जर्मन और कैल्टिक में मध्य कंठ्य और तालव्य का एक तालव्य वर्ग बन गया, और कंठ्य स्पर्श में व् ध्वनि (लेटिन क्वे की भाँति) सुनाई पड़ने लगी। पूर्वी भाषाओं में—आर्मेनियन, अल्बेनियन, बाल्टो स्लेव्होनिक तथा आर्यवर्गों में—कंठ्य ध्वनियों में ओष्ठ्य भाव नहीं आया, पर वे मध्य कंठ्य ध्वनियों के साथ एक वर्ग बन गईं। इनमें मूल तालव्य घर्ष-दर्ण बन गए। आर्य वर्ग में कुछ कंठ्यस्पर्श घर्ष स्पर्श हो गए। इसी विकार को तालव्य नियम कहते हैं।

बोप, ग्रिम तथा अन्य पुराने भाषाशास्त्रियों का विचार था कि संस्कृत ह्रस्व अ

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ 44, 94-95।

बाद में परवर्ती भाषाओं में a, e, o इन तीन स्वरों में बदला गया।[1] संस्कृत भराभि के ग्रीक Phero और लेटिन fero, आर्मेनियन berim, गोथिक baira और पुरानी स्लेव्होनिक bera आदि उदाहरणों से दूसरा निष्कर्ष निकला था। संस्कृत अष्टौ का लेटिन Octo, ग्रीक Okto और पुरानी आइरिश में Ocht आदि उदाहरणों से तीसरा निष्कर्ष निकला था। संस्कृति अजनि का ग्रीक ago, लेटिन ago, आर्मेनियन acem और पुरानी आइरिश में agat आदि उदाहरणों से पहला निष्कर्ष निकला था। इसके अनुसार भारोपीय शाखा सबसे पुरानी थी।

परन्तु नए भाषाशास्त्रियों एमेलंग, बुशनैन और कोलित्ज ने आगे और खोज की, तो पता चला कि ह्रस्व अ का a, e, o में विभक्त करना ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से ठीक नहीं है। दूसरे जब ह्रस्व अ ग्रीक-लेटिन e की भाँति होता है, तो उसके पूर्व के व्यंजन कंठ्य क्, ग् के स्थान पर संस्कृत में तालव्य च्, ज्, होते हैं, जैसे च (भारोपीय qe से) ग्रीक te (हिर्ट के अनुसार ग्रीक में क्व के स्थान पर कुछ अपने कारणों से t हो जाती है) लेटिन que, और भारोपीय penque, संस्कृत पंच, ग्रीक pente, लेटिन quinque आदि। पर जब ह्रस्व अ ग्रीक o की भाँति होता है, तो यह परिवर्तन नहीं होता, जैसे भारोपीय ककुद् संस्कृत ककुद्, लेटिन cacuman; संस्कृत कर्कट, ग्रीक karkinos, लेटिन cancer आदि। कुछ स्थितियों में कंठ्य का तालव्य में परिवर्तित हो जाना स्वयं संस्कृत में दिखाई देता है, जैसे पच् धातु के पचति और पाक आदि रूप। इसी प्रकार अभ्यास में[2] जघान, जगाम, चकार आदि देखे जा सकते हैं। तो निष्कर्ष यह निकलता है कि किसी समय संस्कृत में ह्रस्व अ के स्थान पर ए और आ स्वर थे। ए के पूर्व के कंठ्य व्यंजन तालव्य में बदल गए। कंठ्य के तालव्य हो जाने से इसे तालव्य नियम कहते हैं। अर्थात् मूल भारोपीय भाषा का तृतीय कवर्ग (तालव्य कवर्ग) संस्कृत में कहीं कवर्ग रहा और कहीं चवर्ग बन गया।

इस खोज ने अब यह धारणा बदल दी है कि संस्कृत के रूप मूल भारोपीय भाषा के रूपों से ग्रीक-लेटिन आदि की अपेक्षा अधिक निकट हैं। अब ग्रीक-लेटिन भाषाएं ही मूल भाषा के अधिक निकट समझी जाने लगी हैं।

तिपुरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे त्साकचीप और म्रुंग भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 2,586 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तिब्बती-चीनी परिवार—तिब्बत, चीन, बर्मा, श्याम, अनाम आदि देशों में बोली जाने वाली भाषाओं का परिवार। डा० धीरेन्द्र वर्मा तो इन देशों के बौद्ध मतावलम्बी होने के कारण इसे बौद्ध कुल ही कह देना चाहते हैं। वैसे इस भाषा परिवार का एकाक्षर-परिवार नाम अधिकांश विद्वानों का सम्मत है। विशेष दे० एकाक्षर-परिवार।

तिरगुली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 168 है। इनमें से 145 भारत के मध्य और 19 पश्चिमी भाग में रहते हैं।

1. गुणे, इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 43-44।
2. दे० पाणिनि सूत्र अभ्यासे चर्च 8/44/5

तिरहुतिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

तुम्रालार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तुरही—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे तूरी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 2,343 है। इनमें से 1,347 भारत के मध्य और 996 पूर्वी भाग में रहते हैं।

तुलु—द्राविड़ परिवार (दे० यथा०) की एक भाषा। यह कुर्ग और बम्बई की सीमा पर एक छोटे-से क्षेत्र में बोली जाती है। कैल्डवेल के अनुसार, जिन्होंने द्राविड़-भाषाओं पर विशेष शोध-कार्य किया है, विकास की दृष्टि से यह भाषा विश्व की उत्कृष्ट भाषाओं में गिनी जानी चाहिए। इसमें साहित्य नहीं है।

1954 में प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार इस भाषा या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 7,87,624 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप से बँटी हुई है—दक्षिण भारत 7,77,019, पश्चिम भारत 10,437 और मध्य भारत 168।

तूरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे तुरही भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 2,343 है। इनमें से 1,347 भारत के मध्य और 996 पूर्वी भाग में रहते हैं।

तेजोंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 173 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तेलंगी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,309 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तेलुगु—द्राविड़ परिवार (दे० यथा०) की एक प्रमुख भाषा। यह दक्षिणी पूर्वी हैदराबाद और आंध्र की भाषा है। यह प्रसिद्ध तेलंगाना प्रदेश है। द्राविड़ परिवार में यह सबसे मधुर मानी जाती है। इसका आधुनिक साहित्य तामिल से भी श्रेष्ठ बताया जाता है। इसमें 12वीं सदी से साहित्य-रचना शुरू हो गई थी और उपलब्ध है। यह भी संस्कृत से काफी प्रभावित है।

तेलुगी कन्नड़ी लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार[1] इसका प्रचार बम्बई के दक्षिणी भाग में, हैदराबाद के दक्षिणी भाग में, मैसूर में, तथा मद्रास के उत्तर पूर्वी भाग में पाँचवीं शताब्दी के आस-पास से पाया जाता है। यह वर्तमान तेलुगु और कन्नड़ लिपियों की मूल लिपि है। मूल लिपि से वर्तमान लिपियों का विकास चौदहवीं शताब्दी तक हुआ। पल्लवों, कदम्बों, चालुक्यों, राष्ट्रकूटों आदि के राजाओं के दानपत्रों और शिलालेखों तथा जनसाधारण के असंख्य लेखों में भी इस लिपि के दर्शन होते हैं।

तेलार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपि माला, पृष्ठ 43 और 84।

तेली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 189 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

तैखाम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तैरानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

तोखारी—भारोपीय परिवार के केंटुम् वर्ग की एक भाषा। यह आधुनिक खोज का फल है। पूर्वी तुर्किस्तान (मध्य एशिया) के तुरफान प्रदेश में प्राप्त ग्रंथों के अध्ययन पर इसके भारोपीय परिवार की भाषा होने का पता चला। फिर भी पड़ोसी यूराल अल्टाई परिवार से यह बहुत प्रभावित है। ग्रियर्सन ने कहा है कि महाभारत और ग्रीक-ग्रंथों में क्रमशः तुषाराः और तोखारोई जाति का उल्लेख है। ये दूसरी शताब्दी में मध्य एशिया के शासक थे।

इसमें सर्वनाम और संख्यावाचक भारोपीय हैं। स्वर कम जटिल हैं। संधि-नियम संस्कृत जैसे हैं, पर सरल हैं। व्यंजन संस्कृत से कम हैं। संज्ञा रूपों में विभक्ति की अपेक्षा प्रत्यय अधिक मिलते हैं। क्रिया में कृदन्त अधिक हैं शब्द भंडार संस्कृत से मिलता-जुलता है। संस्कृत पितृ, मातृ, भ्रातृ, वीर, श्वन् और शतके लिए तोखारी में क्रमशः पाचर, माचर, प्राचर, वीर, कु और कन्द शब्द पाये जाते हैं।

तोडा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 879 है। ये लोग भारत के दक्षिणी भाग में रहते हैं।

तोतो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्य 317 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

तौवरगढ़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 638 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

त्गानसल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

त्रिपुरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,29,379 है, जो सबकी सब पूर्व भारत में इसी नाम के राज्य में हैं।

त्लांग त्लांग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 332 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

त्साक चीप—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे तिपुरा या म्रुंग भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 2,586 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

थ

थ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान दंत, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। त् से इसका यही अन्तर है कि यह महाप्राण है, जब कि वह अल्प प्राण।

उदा० थोड़ा, सुथरा, हाथ।

थलँग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति अंडमान-नीकोबार में रहता है।

थाडो (1)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10,327 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

थाडो (2)—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक अन्य नाम कीपगेन भी है, बोलने वालों की संख्या 224 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

थाथिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

थामी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 474 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

थेंथक—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 608 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

द्

द्—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका उच्चारणस्थान दंत, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह अल्पप्राण, घोष, दंत्य स्पर्श है। इसका उच्चारण भी त आदि की भाँति ही होता है।

उदा० देवता, उदाहरण, चाँदी।

दंत— ध्वनियों के उच्चारण में दाँतों की भी सहायता ली जाती है। इनके स्पर्श से उच्चरित होने वाले वर्णों को दंत्य कहते हैं। इस दृष्टि से इसके दो भेद किये जाते हैं दंताग्र और दंतमूल। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

दंतोष्ट—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार व् का उच्चारण स्थान दंतोष्ठ है। इसका उच्चारण नीचे के ओठ और ऊपर के दांतों से होता है। बाबू श्यामसुन्दरदास हिन्दी 'फ' को भी इसी कोटि में रखते हैं।

दंत्य—स्पर्श ध्वनियों का चौथा विभाजन। इनके उच्चारण में जिह्वाग्र ऊपर उठ कर दांतों का स्पर्श करता है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार लृ, तवर्ग, ल् और स् दंत्य हैं। आधुनिक विद्वान् न् को वर्त्स्य मानते हैं अर्थात् उसके उच्चरण में जिह्वाग्र ऊपरी मसूड़े (वर्त्स) का स्पर्श करता है। अंग्रेजी में इन ध्वनियों को डेंटल कहते हैं।

दखनी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 125 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

दबाही—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

दस्यु भाषा—चोरों, डाकुओं आदि द्वारा बोली जाने वाली गढ़ी हुई गुप्त भाषा। उनके व्यापार के लिए ऐसी भाषा गढ़ना अत्यावश्यक हो जाता है। (विशेष दे० कृत्रिम भाषा)।

दांगी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 16,491 है, जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है : भारत का मध्य भाग 2,197 और पश्चिमोत्तर भारत 14,294।

दाभी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के पश्चिम भाग में रहते हैं।

दाला—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 839 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

दासगोरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

दासवाणी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल दो है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

दाहा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 23 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

दिदाई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 145 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

दिमाशा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,012 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

दिमोलिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 50 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

दिव्य उत्पत्ति—भाषा की उत्पत्ति के विषय में प्रायः प्रत्येक धर्म के रूढ़िवादियों की यह धारणा है कि वह उसी रूप में जिस रूप में उस जाति के मूल धर्म ग्रन्थ में है, परमात्मा द्वारा दी गई है। इस प्रकार कट्टर हिन्दू वैदिक भाषा को ही विश्व की भाषाओं की मूल भाषा मानते हैं और ईसाई हिब्रू को। बौद्ध मागधी (पाली) को मूल भाषा बताते हैं, तो मुसलमान कुरान की अरबी को। परन्तु भाषा वैज्ञानिकों द्वारा किए गए निपुण परीक्षण के फलस्वरूप अब प्रायः यह धारणा प्रबल हो गई है कि प्रत्येक भाषा के मूल में आदि धर्मग्रन्थों की भाषाओं से भी पहले भाषा किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। परमात्मा ने मनुष्य जाति को कोई निश्चित और नपी-तुली भाषा प्रदान नहीं की है, बल्कि उसने यदि कुछ दिया है, तो यही कि मनुष्य को ही ध्वनि-अवयवों का और भाषा की शक्ति का वरदान मिला है और इस रूप में आधुनिकतम भाषा-वैज्ञानिक भी भाषा की उत्पत्ति में दैवी शक्ति का हाथ मानते हैं। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)

दीर्घ—दो मात्राओं के उच्चारण जितना समय लेने वाले स्वर को दीर्घ कहते हैं। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः ये दीर्घ स्वर हैं। दे० पाणिनिसूत्र "ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः = 1/2/27।

दृढ़ स्वर—स्वरों के विवेचन में मांस-पेशियों की दृढ़ता और शिथिलता भी एक कसौटी है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार कंठपिटक और चिबुक के बीच में अंगुली रखने से यह सहज ही अनुभव होने लगता है कि ह्रस्व इ के उच्चारण में वह भाग कुछ शिथिल हो जाता है, पर दीर्घ ई के उच्चारण में वह सर्वथा दृढ़ रहता है।

देउरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,715 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं। इसके देउरी और चुटिया दो नाम हैं।

देफर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 2 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

देवनागरी(1)—ब्राह्मी (दे० यथा०) से विकसित प्राचीन नागरी (दे० नागरी) लिपि का आधुनिक रूप। कुछ विद्वान् नागरी और देवनागरी का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में करते हैं। विशेष दे० नागरी (यथा०)।

देवनागरी(2)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह भारत के मध्य भाग में रहता है।

दोन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,632 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं। दोन और सिंगपो इसके दो नाम हैं।

दोरली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9,278 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

द्रव वर्ण—बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में अनुनासिक, पार्श्विक और लुंठित (दे० यथा०) व्यंजनों को सामान्य रूप में द्रव वर्ण कहते हैं। कुछ लोग अर्द्ध स्वरों (दे० यथा०) को भी इसी द्रव वर्ग में रखते हैं। इन सब में एक सर्वसामान्य बात यह है कि ये समयानुसार स्वर का भी काम करते हैं। संस्कृत के अन्तस्थ व्यंजन और स्वर के बीच में रहते हैं (विशेष दे० अर्द्ध स्वर)।

द्राविड़ परिवार—"ब्राहुई भाषा को छोड़कर...द्राविड़ परिवार की भाषाएँ सिवाय दक्षिण भारत के और कहीं नहीं पाई जातीं। इस परिवार की सबसे मुख्य भाषाएँ तामिल, तेलुगु, कनारी और मलयालम हैं।"[1] दक्षिण भारत के अतिरिक्त उत्तरी लंका, लक द्वीप, मध्य भारत, बिहार, उड़ीसा और बिलोचिस्तान तक में भी इन भाषाओं के बोलने वाले पाए जाते हैं। श्रेडर ने फिनो-उग्रिक वर्ग से और श्मिट ने आस्ट्री भाषा से इसका सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया था। सिंधु-सभ्यता की मुद्राओं की अब तक न पढ़ी गई चित्र-लिपि से भी इस परिवार का सम्बन्ध जोड़ने का कुछ लोगों ने प्रयत्न किया है।

द्राविड़ परिवार में सबसे अधिक प्राचीन और साहित्य-सम्पन्न भाषा तामिल (दे० यथा०) है। उपर्युक्त तेलुगु, कनारी (या कन्नड) और मलयालम (दे० यथा०) के अतिरिक्त तुलु, कुडागु (कुर्ग की भाषा), टुडा, कोटा, कोंड, गोंड, कुरुख या ओरांव, माल्टो, कुई, कोलामी और ब्राहुई भी द्राविड़ भाषाओं में आती हैं।

भोलानाथ तिवारी ने इनका विभाजन कुछ निम्न प्रकार से किया है। पहले प्रमुख भाषाएँ तामिल, मलयालम, कन्नड़, तुलु, कुडागु और टुडा, कोटा भाषाएँ हैं। फिर मध्यवर्ती भाषाओं में कोंड, गोंड, कुरुख (ओरांव), माल्टो, कुई और कोलामी भाषाएँ आती हैं। तेलुगु सर्वथा अलग है। अन्त में बाहरी भाषा ब्राहुई है।

मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में द्राविड़ परिवार की कुछ विशेषताएँ ये हैं—"(1) घोष और अघोष वर्णों के भेद की अस्पष्टता की ओर झुकाव, (2) मूर्धन्य वर्णों का अधिक प्राधान्य, (3) शब्द रचना की योगात्मकता और (4) बड़े-बड़े समासों के बनाने में

1. मंगल देव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 219।

सरलता।" भोलानाथ तिवारी ने कुछ अन्य विशेषताएँ भी गिनाई हैं। उनके अनुसार पहली विशेषता अश्लिष्ट अन्तयोगात्मकता है। अन्तिम व्यंजन में उकार का जोड़ा जाना, मूल शब्दों के स्वरों के आधार पर प्रत्ययों में स्वरों का बदल लिया जाना, टवर्ग का प्राधान्य, तीन लिंग और कुछ विचित्र क्रिया-रूप इस परिवार की अन्य विशेषताएँ हैं।

द्राविड़ भाषाओं के प्रमुख विद्वान् काल्डवेल[1] के अनुसार अक्का, अटवी, आलि, नीर, पट्टन, पल्ली, मीन आदि शब्द संस्कृत में द्राविड़ भाषाओं से आये हैं। आर्य भाषाओं की मूर्धन्य ध्वनियों पर भी इनका प्रभाव पड़ा है। सोलह (रुपया-आना, सेर-छटांक) की गणना भी द्राविड़ देन मानी जाती है।

द्व्योष्ठ्य—केवल दोनों होंठों से उच्चरित होने वाले वर्ण प् और फ् (दे० यथा०) इस कोटि में आते हैं।

1. काल्डवेल : कम्पैरेटिव ग्रामर आफ दि ड्राविडियन लैंग्वेजेज़, पृष्ठ 439-48।

ध

ध्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान दंत, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, संवार नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह महाप्राण घोष दंत्य स्पर्श हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में इसका उच्चारण भी अन्य तवर्गीय ध्वनियों के समान ही होता है।

उदा० धीरज, बधाई, आधा।

धगोड़ा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 83 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

धांगर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,833 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

धांगरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,982 है। ये लोग भारत के उत्तर भाग में रहते हैं।

धांटन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 118 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

धातु सिद्धान्त—भाषोत्पत्ति के विषय में मैक्समूलर का प्रसिद्ध सिद्धान्त। इसे धातुवाद भी कहते हैं। उनके अनुसार भाषा के आरम्भ में विविध भावों के प्रकाशन के लिए कुल 4-5 सौ धातुएँ थीं, जिनसे कालान्तर में भाषा की सृष्टि हुई है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)।

धादो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 13,146 है। ये लोग पश्चिमोत्तर भारत में रहते हैं।

धामड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 125 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

धारवाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

धारा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

धावड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 31,702 है। ये लोग पश्चिमोत्तर भारत में रहते हैं।

धीमल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 124 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

धीवर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 171 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

धूम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

धेडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

धोरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 96 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ध्रुवा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,212 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

ध्रुवाभिमुख-नियम—अफ्रीका की हेपेटिक (हापी) कुल की भाषाओं की एक विशेषता के आधार पर इन भाषाओं के विशेषज्ञ श्री मेनहाफ ने इस नियम का निरूपण किया है। वह विशेषता यह है कि इनमें यदि किसी संज्ञा के एकवचन का बहुवचन बनाया जाता है, तो उसका लिंग भी बदल जाता है। अर्थात् संज्ञा एकवचन पुल्लिग का स्त्रीलिंग और संज्ञा एकवचन स्त्रीलिंग का बहुवचन पुल्लिग हो जाता है। सोमाली में होयोदि (=मां) स्त्री० एकवचन का बहुवचन होयोइनकि (माताएँ) शब्द पुल्लिग है। दूसरी ओर लिबाहिह्व (=शेर) पुं० एकवचन का बहुवचन लिबाहिह्योदि शेर(=कई शेर) शब्द स्त्रीलिंग है। मेनहाफ के अनुसार इस विभिन्नता का कारण यह है कि असंस्कृत मस्तिष्क एक प्रकार के परिवर्तन के साथ दूसरे प्रकार का भी परिवर्तन मान लेता है। दोनों प्रकार के परिवर्तनों को वह सम्भवत: एक मानता है।

प्रो० मेनहाफ ने इस नियम का स्पष्टीकरण निम्न चित्र से किया है :
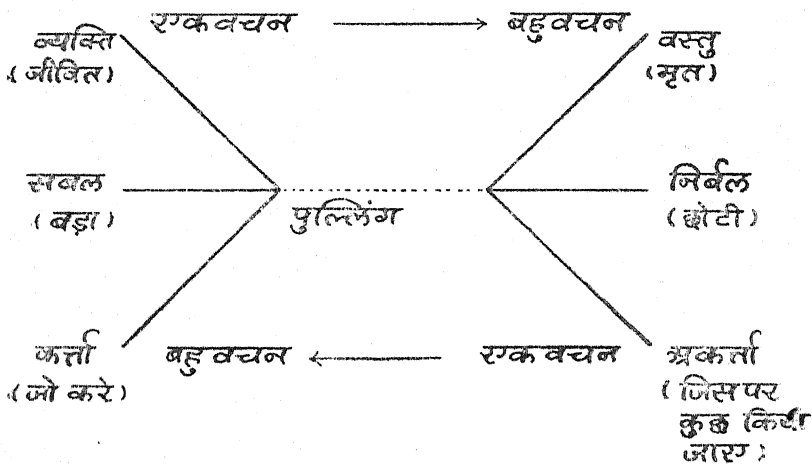
इस प्रकार इन भाषाओं में संज्ञाओं के दो वर्ग हैं। एक के चार वर्ग हैं और जीवित, सबल, बड़ा, कर्त्ता आदि होना उसकी विशेषताएँ हैं, दूसरा बहुवचन है और निर्जीव, निर्बल, छोटा, अकर्त्ता आदि होना उसकी विशेषताएँ हैं। इन दोनों में तीर (नीचे और ऊपर) द्वारा यह दिखाया गया है कि वचन परिवर्तन होने पर संज्ञा एक वर्ग से दूसरे वर्ग में चली जाती है और उसकी सब बातें उलटी होने लगती हैं।

ध्वनि—अर्थ की दृष्टि से सामान्य ध्वनि में और भाषाशास्त्रियों द्वारा निरूपित भाषा-ध्वनि में कुछ भेद है। वैसे तो निर्झर की कल-कल भी एक ध्वनि करती है और दो पहलवानों के लड़ने पर भी पट-पट, थप-थप ध्वनि होती है, परन्तु यह भाषा-ध्वनि नहीं है। भाषा-ध्वनि भाषणावयवों द्वारा उत्पन्न की गई एक निश्चित श्रावण गुण वाली ध्वनि है। एक निश्चित भाषण-ध्वनि में भेद नहीं हो सकता।[1] भाषा-ध्वनि वह ध्वनि है, जिसे मनुष्य अपने मुंह के निश्चित स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे, और श्रोता जिसे उसी अर्थ में ग्रहण करें।[2] भाषा-ध्वनि में यदि कोई विकास उत्पन्न भी होता है तो, वह एक दूसरी भाषण-ध्वनि बन जाती है।[3] इस प्रकार एक भाषा-ध्वनि का स्वरूप निश्चित हो जाता है। हेनरी स्वीट[4] का विचार है कि भाषण-ध्वनि को ठीक-ठीक समझ लेना शब्दार्थ के ज्ञान में विशेष सहायक होता है और संशय दूर करता है।

वैसे तो एक ही ध्वनि का उच्चारण भी कई शब्दों में बिलकुल एक-सा नहीं होता, और भाषा विशारदों का तो यहाँ तक कहना है कि एक ही शब्दों में बार-बार आने पर भी उसका उच्चारण कुछ भिन्न प्रकार से होगा। भाषाओं में इस प्रकार की भाषण-ध्वनियों की संख्या अनन्त हो सकती है, पर सभी के लिए पृथक्-पृथक् लिपि-संकेत आवश्यक नहीं समझे जाते। उनको व्यवहारतः एक मानकर एक निश्चित लिपि चिह्न से लिखते हैं। वह भाषा-ध्वनि ध्वनि श्रेणी, ध्वनिमात्र या ध्वनितत्व कही जाती है (दे० ध्वनितत्व)।

नाक से भीतर जाने वाली शुद्ध वायु (आक्सीजन) हमारे स्वास्थ्य के लिए कितनी भी उपयोगी हो, पर ध्वनियों (क्लिक या आश्चर्य ध्वनियों को छोड़कर) के उच्चारण में भीतर से बाहर आने वाली वायु (कारबन डाईऑक्साइड) ही हमारे काम आती है। स्वरतन्त्री में इसके पहुँचने पर जीभ, गला, तालु, मूर्धा, दाँत और होंठ आदि भाषणावयवों की सहायता से हम अभीष्ट ध्वनियों की सृष्टि करते हैं और ध्वनियों का वर्गीकरण भी इन्हीं भाषणावयवों (दे० यथा०) के अनुसार होता है। वे ध्वनियाँ भाषणावयवों से निकलने के बाद हवा में लहरें उत्पन्न करती हैं। इस प्रक्रिया में भाषा-विज्ञान के साथ-साथ शरीर-विज्ञान (फिजिओलोजी) और श्रावण-

1. सुनीतिकुमार चटर्जी, बंगाली फोनेटिक रीडर, भूमिका पृष्ठ 7।
2. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ 192।
3. बाबूश्यामसुन्दर दास और पद्मनारायण आचार्य, भाषा रहस्य, पृष्ठ 209।
4. हेनरी स्वीट, ए प्रेक्टिकल स्टडी आफ लैंग्वेजेज, पृष्ठ 48।

विद्या (एकाउस्टिक) की भी आवश्यकता पड़ती है। एक सामान्य ध्वनि हमें बिलकुल सरल बात प्रतीत होती है, पर यह बड़ी जटिल प्रक्रिया है। भेद करने के लिए हमें उस ध्वनि की शक्ति या भारीपन, ऊँचाई और प्रकार (रंग-रूप) पर ध्यान देना पड़ता है।[1] नए यन्त्रों की सहायता से अब वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'मून' में ऊ के उच्चारण में प्रति सैकिंड 225 लहरें पैदा होती हैं और माँ के आ के उच्चारण में 1050 लहरें।[2] ये लहरें जब कान में पहुँचती हैं तो बाह्य कर्ण की भीतरी झिल्ली पर कंपन पैदा करती हैं। इसका प्रभाव बीच की प्रणाली के द्वारा भीतरी द्रव पदार्थ पर पड़ता है और उसमें भी लहरें उठती हैं। इन लहरों की सूचना शिराओं के सहारे मस्तिष्क तक पहुँचती है और हम इन ध्वनियों को सुनते हैं।

(और दे० ध्वनि-तत्व, ध्वनि विचार, भाषणावयव, ध्वनि नियम, ध्वनि शिक्षा, विभिन्न भाषाओं के ध्वनि-समूहों तथा प्रत्येक हिन्दी ध्वनि पर पृथक् लेख)।

ध्वनि अवयव—ध्वनि विज्ञान के अध्ययन के लिए भाषणावयवों या ध्वनि अवयवों या बोलने में प्रयुक्त होने वाले अंगों का अध्ययन भी अत्यन्त आवश्यक है। नाक से श्वास भीतर जाती है और उसे फेफड़ों तक पहुँचाने के लिए जो मार्ग है उसे श्वास-नालिका कहते हैं। भोजन के उदर तक जाने के लिए भोजन-नालिका नामक एक पृथक् मार्ग होता है। भोजन श्वास-नालिका में न चला जाए इसके लिए एक छोटी-सी जीभ, जिसे अभिकाकल या स्वरयन्त्र मुखावरण (एपीग्लोटिस) कहते हैं, होती है। यह भोजन करते समय स्वरयन्त्र पर आवरण-सा डाल देती है।स्वर-यन्त्र या ध्वनियन्त्र या कंठ पिटक (अंग्रेजी लेरिंक्स) बाहर से वयस्कों के गले में होने वाले उभार के रूप में दिखाई देता है। स्वरयन्त्र में पतली झिल्ली के बने दो परदे होते हैं, जिन्हें स्वरतन्त्री या ध्वनि तन्त्री (वोकल कौर्ड्स) कहते हैं। परदों के बीच खुले भाग को काकल या स्वरयन्त्र मुख (ग्लौटिस) कहते हैं। इसी से होकर हवा आती जाती है। स्वरतन्त्री के दोनों परदे स्थिति-स्थापक होते हैं, इससे श्वास आने-जाने में बाधा नहीं पड़ती। परन्तु ये परदे मुख्यतः चार स्थितियों में आ जाते हैं। (1) साधारणतः बीच में त्रिभुजाकार स्थान छोड़ ये ढीले पड़े रहते हैं। ऐसी स्थिति में हम साधारणतः साँस लेते हैं या अघोष ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। (2) कभी ये इतने पास आ जाते हैं कि वायु निकल तो जाती है, पर ये कंपन के साथ झनझना उठती हैं। ऐसी स्थिति में वायु रगड़ खाकर निकलती है। इसका अनुभव गले पर हाथ रखकर किया जा सकता है। इस प्रकार घोष ध्वनियों का उच्चारण होता है। (3) कभी-कभी इनके बिलकुल मिल जाने से श्वास आना-जाना ही रुक जाता है। ऐसी स्थिति में अरबी के हमजे जैसी अन्तर्मुखी या क्लिक ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं। (4) कभी-कभी दोनों परदे मिलते तो हैं, पर नीचे प्रायः चौथाई

1. दे० मैक्समूलर-लेक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 109-11.
2. दे० डा० पी० डी० गुणे-इंट्रोडक्शन टु कंपैरेटिव फिलोलोजी, पाद-टिप्पणी पृष्ठ 33-34.

भाग खुला रहता है, जिससे श्वास निकल जाती है और फुसफुसाहट वाली या जपित ध्वनि होती है।

श्वास नालिका और भोजन नालिका तथा मुख-विवर और नासिका-विवर का चौराहा, उपर्युक्त अभिकाकल या स्वर-यन्त्र मुख होता है। अभिकाकल जिस प्रकार नीचे के मार्ग बन्द करता है, उसी प्रकार ऊपर के मार्ग बन्द करने के लिए उससे ठीक ऊपर अलिजिह्व या कौआ (उबुला) होता है। इस कौए की भी तीन स्थितियाँ रहती हैं—(1) साधारणतः जब यह ढीला रहता है, तो मुख विवर बन्द रहता है और श्वास स्वभावतः नासिका-विवर से आती है। संस्कृत अनुस्वार या साधारणतः बिना मुख खोले जाने वाली 'हाँ-हूँ' इसी प्रकार उच्चरित होती है। (2) कभी यह नासिका विवर को बन्द कर देता है, और श्वास मुख विवर में जाती है तथा अननु-नासिक शुद्ध स्वर-व्यंजनों के उच्चारण का हेतु बनती है। (3) कभी-कभी न तो यह गिरकर मुख विवर को ढाँकता है और न तनकर नासिका विवर को। ऐसी स्थिति में ही अनुनासिक स्वर व्यंजनों का उच्चारण होता है।

नासिका-विवर में उच्चारण में विविधता लाने वाला कोई कारण नहीं है। मुख विवर में ऊपर की छत को चार भागों में बाँटा गया है। कंठ से दंत तक क्रमशः कोमल तालु, मूर्धा, कठोर तालु और वर्त्स चार भाग होते हैं, जिनका स्पर्श करके जीभ विभिन्न वर्णों का उच्चारण करती है। उच्चारण की दृष्टि से जीभ का भी विशेष महत्त्व है। जनसाधारण जीभ को ही उच्चारण का हेतु समझते हैं और पवर्गीय (ओष्ठ्य) ध्वनियों को छोड़कर वह प्रायः सभी ध्वनियों के उच्चारण में काम आती है। इसके पाँच भेद किए जाते हैं—(1) जिह्वानीक या जीभ की नोक (टिप), (2) जिह्वाग्र (फ्रंट), (3) जिह्वोपाग्र (या पश्चजिह्वा), (4) जिह्वा मध्य, और (5) जिह्वामूल। इसके बाद दांत आते हैं, जिनकी सहायता से भी ध्वनियों का उच्चारण होता है। इनके भी दंताग्र और दंतमूल दो भाग कर लिए जाते हैं। फिर अन्तिम स्थान होंठ है। सुविधा के लिए इन सभी ध्वनि अवयवों को हम निम्न रूप में गिन सकते हैं :

1. फेफड़े या फुफ्फुस
2. श्वास नालिका
3 भोजन नालिका
4. स्वरयन्त्र
5. स्वरयन्त्र मुख (काकल)
6. स्वरतन्त्री
7. स्वरयन्त्र मुखावरण (अभिकाकल)
8. अलि जिह्वा, कौआ या घंटी
9. कंठ या गलबिल
10. कोमल तालु
11. मूर्धा
12. कठोर तालु
13. वर्त्स
14. दंतमूल
15. दंताग्र
16. ओष्ठ
17. जिह्वानीक
18. जिह्वाग्र
19. पश्च जिह्वा
20. जिह्वा मध्य

21. जिह्वामूल
22. जिह्वा
23. आस्य या वाग्यंत्र
24. नासिका विवर
25. मुख विवर

ध्वनिकुल—"किसी भाषा विशेष की ऐसी सम्बन्धी ध्वनियों का एक कुल जिनका स्थान एक सम्बद्ध भाषण में उस भाषा की कोई अन्य ध्वनि नहीं ले सकती" (डा० सुनीतिकुमार चटर्जी)। अंग्रेजी के इस फोनेम शब्द के लिए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ध्वनि श्रेणी शब्द प्रयुक्त किया है, और बाबू श्यामसुन्दर दास ने ध्वनिकुल और ध्वनिमात्र शब्द भी दिए हैं। पर भोलानाथ तिवारी द्वारा दिया गया ध्वनि-तत्व शब्द एकवचन में अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। विशेष दे० ध्वनि-तत्व।

ध्वनि तत्व—एक भाषा विशेष की ऐसी सम्बन्धी ध्वनियों का एक कुल, जिनका स्थान एक सम्बद्ध भाषण में उस भाषा की कोई अन्य ध्वनि नहीं ले सकती।[1] अंग्रेजी शब्द फोनेम के लिए धीरेन्द्र वर्मा ने ध्वनि-श्रेणी शब्द प्रयुक्त किया है और बाबू डा० श्यामसुन्दर दास ने ध्वनिकुल और ध्वनिमात्र शब्द भी दिए हैं। भोलानाथ तिवारी ने अंग्रेजी मोरफीम के लिए रूप-तत्व और सेमेंटीम के लिए अर्थ-तत्व शब्दों का प्रयोग करते हुए फोनेम के लिए ध्वनि-तत्त्व शब्द दिया है, जो कुछ अधिक जंचता है। उनके अनुसार ध्वनितत्त्व मिलती-जुलती अनेक भाषा ध्वनियों की प्रतीक वह एक ध्वनि है, जिसका खंड न हो सके। राम शब्द में र्+आ+म+अ ये चार ध्वनितत्त्व हैं।[2] डा० गुणे के अनुसार वह किसी भाषा में आने वाली उन ध्वनियों का कुल हैं, जो एक व्यक्ति द्वारा उस प्रकार उच्चरित हों।[3] 'कहानीकार कौशिक की कौन सी कहानी कलापूर्ण हैं'—इस वाक्य में आठ बार आने वाली क् ध्वनियाँ क् ध्वनितत्त्व या ध्वनिमात्र या ध्वनिकुल या ध्वनि श्रेणी से सम्बन्धित हैं, भले ही शास्त्रीय दृष्टि से वे भिन्न-भिन्न भाषण ध्वनियाँ हों। इसी प्रकार किंग का क तालव्य सा है और क्वीन का शुद्ध कंठ्य पर दोनों में वही एक क ध्वनितत्त्व है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने जल्दी और माल्टा शब्दों के उदाहरण देते हुए बताया है कि यद्यपि दोनों में एक ही ल् ध्वनि प्रयुक्त होती है, परन्तु पहला ल् विशुद्ध दंत्य है और दूसरा ईषत् मूर्धन्य।[4] इसी प्रकार 'कल् ही' में ल् अल्पप्राण नहीं बल्कि स्पष्ट ही महाप्राण है। तिलक का ल्-मराठी में मूर्धन्य होता है, हिंदी में दंत्य। ये सब एक ल् ध्वनितत्व की विभिन्न भाषण-ध्वनियाँ हैं। भाषा ध्वनि और ध्वनिश्रेणी (या ध्वनितत्त्व) का भेद बताते हुए डा० धीरेन्द्र वर्मा का कहना है[5] कि प्रत्येक भाषा ध्वनि का उच्चारण एक ही पुरुष भिन्न-भिन्न स्थलों पर कुछ थोड़े से परिवर्तन के

1. डा० सुनीति कुमार चटर्जी, बंगाली फोनेटिक्स रीडर, पृष्ठ 8।
2. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ 166।
3. डा० पी० डी० गुणे, एन इंट्रोडक्शन टु कंपैरेटिव फिलोलोजी ग्लौसरी, पृष्ठ 62।
4. भाषा रहस्य, पृष्ठ 210-12।
5. हिंदी भाषा का इतिहास, पाद टिप्पणी, पृष्ठ 84।

साथ करता है, साथ ही भिन्न-भिन्न पुरुष प्रत्येक ध्वनि का उच्चारण कुछ पृथक् ढंग से करते हैं। साधारणतः कान इस अंतर को नहीं पकड़ता। शास्त्रीय दृष्टि से ये पृथक्-पृथक् भाषा ध्वनियाँ हैं और सूक्ष्म दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इन सब मिलती-जुलती ध्वनियों को एक ही श्रेणी में रख लिया जाता है, अतः ये सब मिलते-जुलते रूप उस ध्वनि श्रेणी (या ध्वनितत्व) के अंतर्गत माने जाते और व्यवहार में इन सब के लिए एक ही लिपि चिह्न प्रयुक्त होता है।

इस प्रकार ध्वनियों की अनंत संख्या ध्वनितत्त्वों में सीमित हो जाती है। प्रत्येक भाषा अपने ध्वनितत्त्वों की संख्या भी परिमित कर लेती है। एक ध्वनितत्त्व के लिए एक ही लिपि-चिह्न बहुत थोड़ी भाषाओं में देखने को मिलता है। हमारी देवनागरी लिपि इस दिशा में अपेक्षातया पूर्ण बताई जाती है, पर विशेष के श् और ष् का ध्वनि-तत्व एक होने पर भी दो चिह्न चल रहे हैं। साथ ही र्ह, ल्ह्, न्ह, म्ह, ह्रस्व ए आदि ध्वनितत्वों के लिए पृथक् चिह्न नहीं हैं। रोमन आदि सीमित लिपियों में यह भेद और बढ़ जाता है।

भाषा शास्त्र या भाषा विज्ञान में इसी ध्वनितत्त्व की विवेचना होती है, पर सुविधा के लिए संक्षेप में इसको ही ध्वनि भी कह देते हैं।

ध्वनि-नियम—ध्वनि-परिवर्तन (दे० यथा०) सहसा नहीं होते हैं।[1] जब हम संस्कृत नभस् को ग्रीक में नेफोस (nephos), भ्रातृ को फ्रातिर (phratir), धर्षित को थर्सस (thersos), मधु को मेथु (Methu), और धूमः को थूमस (Thumos) देखते हैं, तो ये एक ही प्रकार के परिवर्तन देखकर हम अनुमान करने लगते हैं कि इस का कुछ कारण अवश्य है। इन्हीं आधारों पर कुछ सामान्य और विशेष नियम गढ़ लिए जाते हैं, जिनको ध्वनि नियम कहते हैं।

परन्तु नियम शब्द का प्रयोग कुछ प्राकृतिक नियमों के सम्बन्ध में हुआ करता है, जो किसी भी देश और काल में सर्वत्र एक से ही रहते है। परन्तु ध्वनि-नियमों को लेकर ऐसी बात नहीं है। उनके कुछ बन्धन होते हैं और अपवाद भी होते हैं। ध्वनि-नियमों के प्रसंग में तीन बातें ध्यान में रखनी होती हैं। पहली बात काल-विशेष की है। निश्चित मात्रा में आक्सीजन और हाइड्रोजन मिलाने पर पानी बनता है, यह रसायन-शास्त्र का नियम है, और किसी भी काल में इस नियम में परिवर्तन नहीं होगा, पर ध्वनि-नियम के लिए यही बात नहीं कही जा सकती। संस्कृत से पाली-प्राकृत तक आने में जो परिवर्तन हुए हैं, वही पाली प्राकृत से अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं में नहीं हुए। और न हम भविष्य के लिए वैसी कल्पना कर सकते हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक नियमों के ऊपर देश का भी बंधन नहीं होता। न्यूटन का गति नियम सभी स्थानों पर लागू होता है, पर उसी प्रकार यह आवश्यक नहीं कि ध्वनि-नियम भी सभी स्थितियों में खरे उतरें। तीसरे प्राकृतिक नियमों में अपवाद नहीं होते। दो

1. मैक्समूलर, लैक्चर्स, जिल्द 2 पृष्ठ 1909।

और दो चार ही होंगे, परन्तु ध्वनि-नियमों में अपवाद भी होते हैं। कर्म—कम्म—काम और घर्म—घम्म—घाम तो दिखाई देते हैं, पर उसी प्रकार धर्म के लिए—धम्म—धाम नहीं बने।

इन्हीं कारणों से लेस्किन ने बड़े आग्रहपूर्वक कहा था कि यह नहीं समझ लिया जाना चाहिए कि ध्वनि-नियमों में अपवाद नहीं होते। ग्रिम नियम के अनुसार अंग्रेजी टूथ, और टू का जर्मन में जैह्न और ज्वेह हो जाता है, पर स्टोन का स्टेन ही रहता है। इसका कारण यह बताया जाता है कि स्ट संयुक्त ध्वनि होने के कारण यह नियम लागू नहीं हुआ। इसी प्रकार अंग्रेजी में स्पीक का भूतकाल स्पेक न होकर स्पोक होता है, जो स्पोकेन के सादृश्य पर आधारित है। अतः अन्य कारणों के बीच सादृश्य सबसे बड़ा कारण है, जो ध्वनि-नियमों के अपवादों का हेतु बनता है। गोथिक फाठर की व्यवस्था इसी आधार पर की गई है। सादृश्य द्वारा सिद्ध न हो सकने वाले अपवाद विदेशी शब्दों के मिश्रण के कारण होते हैं, क्योंकि ध्वनि-नियम विदेशी भाषाओं पर लागू नहीं होते। कभी-कभी विदेशी भाषा का मिलता-जुलता शब्द आ जाता है, जो पुराने शब्द का रूप-सा ज्ञात होता है। यह भी अपवाद का कारण बन जाता है जैसे कोट-पाल से कोट्टाल—कोटाल न बन कर फारसी कोलवाल आ जाने से कोतवाल ही चल पड़ा। तीसरी बात यह है कि ध्वनि-नियम लागू होने से पहले के शब्दों के विषय में उनको लागू नहीं करना चाहिए। पुरानी संस्कृत के शब्दों का पाणिनि-विरुद्ध होने पर भी आर्ष-प्रयोग कह दिया जाता है।

इस प्रकार ध्वनि नियम सापवाद होते है। वे प्राकृतिक नियमों जितने स्थिर नहीं होते और परिस्थितियों और देश-काल के थपेड़े नहीं झेल सकते। इसीलिए कुछ विद्वान् ध्वनि-नियम शब्द को भ्रामक बताकर इसे ध्वनि-सूत्र अथवा ध्वनि-प्रवृत्ति नाम देना चाहते हैं। परन्तु ध्वनि-प्रवृत्ति से कुछ अन्य विद्वान् कुछ दूर चलकर समाप्त हो जाने वाली असफल प्रवृत्तियों का या परिवर्तन की वर्तमान प्रवृत्तियों का अर्थ लगाते हैं। ध्वनि-नियम केवल भूतकाल की ही चिन्ता करता है वर्तमान या भविष्य की नहीं।

संक्षेप में ध्वनि-नियम की परिभाषा यों की जा सकती है : किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में किसी विशिष्टकाल और कुछ विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन या विकार को उस भाषा का ध्वनि-नियम कहते हैं[1]। अर्थात् अंग्रेजी के फादर शब्द का उच्चारण यदि फादअ सा होता है, तो हिन्दी खद्दर का खद्दअ न होगा, न यह नियम अंग्रेजी के सभी शब्दों के अन्त के अक्षरों के विषय में लागू होगा, न चासर, शेक्सपियर आदि पुराने नामों के विषय में लागू होगा और न स्वरों से शुरू होने वाले अंग्रेजी शब्दों के अन्तर के विषय में ही यह लागू होगा।

विशेष दे० ग्रिम नियम, ग्रासमान नियम, वर्नर नियम, तालव्य नियम।

ध्वनि निर्देशक यन्त्र—ध्वनिविज्ञान का अध्ययन करने के लिए कुछ यन्त्रों का भी

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ 214।

प्रयोग किया जाता है। भाषा विज्ञान के प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए आज के यन्त्र युग में यह कोई अचम्भे की बात नहीं है। काइमोग्राफ, एक्सरे, लैरिंगोस्कोप और कृत्रिम तालु (दे० यथा०) यन्त्रों से तो मुख्यत: सहायता ली ही जाती है, कुछ अन्य यन्त्र भी हैं। फ्लेटाड ने लैरिंगोस्कोप में कुछ अभाव दूर करने के लिए एंडोस्कोप बनाया है, जिसके सहारे मुख बन्द रहने पर भी स्वर यन्त्र का अध्ययन हो सकता है। उसी कार्य के लिए मैकोनसेली ने अपना ओटो-फोनोस्कोप बनाया है। स्वरतन्त्रियों के अध्ययन में स्ट्रोबोलैरिंगोस्कोप से ही सहायता ली जाती है। प्रश्वास क्रिया के अध्ययन के लिए गट्ज़मैन का ब्रीदिंग फ्लास्क यन्त्र तथा स्पिरोमीटर, स्टेथोग्राफ और न्यूमोग्राफ आदि यन्त्र भी काम में लाए जाते हैं।

ध्वनि-परिवर्तन—एच० डब्ल्यू० बेट्स ने भारतीयों पर यह दोष लगाया है कि वे उच्चारणों को तोड़ने-मरोड़ने और नए उच्चारण खोजने में विशेष आनन्द लेते हैं।[1] पर ह्विटने के शब्दों में यदि भाषेतिहास में रूढ़िवादी शक्तियाँ ही होतीं, तो प्रत्येक युग की उपभाषाएँ एक समान बनी रहतीं। किन्तु बात उलटी है और सभी जीवित भाषाओं में निरन्तर परिवर्तन और विकास होते रहते हैं।[2] मानव संस्थाएँ प्राय: पीढ़ी से पीढ़ी तक चलती रहती हैं, पर उनमें रूपभेद और संशोधन होते रहते हैं।[3] ऊपर से एक-सी दीख पड़ने वाली भाषा में भी उतने रूपभेद होते हैं, जितने व्यक्ति उसे बोलते हैं। भाषा अर्जित की जाती है और इस प्रक्रिया में कुछ बातें छोड़ दी जाती हैं, और कुछ-जोड़ दी जाती हैं। पाल ने इसके तीन कारण बताए हैं। पहले तो वह शब्द या रूप जिसकी स्मृति दुहरा कर ताजी नहीं की जाती, स्मृति में दुर्बलतर होता जाता है। दूसरे बोलने, सुनने या सोचने की प्रक्रिया में कुछ भाषण-सामग्री बढ़ जाती है। दुहराने तक में भाषण-यन्त्र के कुछ अंग विशेष सबल हो जाते हैं। तीसरे पुरानी सामग्री को बढ़ाने और नई जोड़ तोड़ करने में भाषण-यन्त्र की भीतरी स्थितियाँ भी बदल जाती हैं। जेस्पर्सन ने इन ध्वनि परिवर्तनों के प्रमुख कारण ये बताए हैं (1) गलत सुनना-समझना, (2) सदोष स्मृति, (3) अपूर्ण भाषण-यन्त्र, (4) आलस्य, (5) वास्तविक या काल्पनिक सादृश्य या समानता का प्रभाव, (6) बोलने में स्पष्टता की इच्छा, (7) नए भाव व्यक्त करने की आवश्यकता। जेस्पर्सन का विचार है कि कुछ ऐसी प्रवृत्ति होती है, जो रूढ़िगत अभिव्यक्ति से संतुष्ट न होकर नए शब्द खोजती है या पुराने शब्दों में नया अर्थ लगाती है। डा० गुणे का विचार है कि शुद्ध भाषण उसी को कह सकते हैं, जब वक्ता की ध्वनि श्रोता की ध्वनि की तत्संवादी हो।[4] अत: मुख्यत: श्रवणेंद्रिय और भाषणेंद्रिय की विभिन्नता के कारण ही ध्वनि परिवर्तन होते हैं। ऋ और रि, श और ष के उच्चारणों में एकता इन्हीं कारणों से आई होगी। भाषा अनुकरण

1. मैक्समूलर, लैक्चर्स जिल्द 2, पृष्ठ 44 पर उद्धृत।

2. डब्ल्यू० डी० ह्विटने, लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 32-33।

3. वही, पृष्ठ 34।

4. डा० पी० डी० गुणे, इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलोजी पृष्ठ 33।

द्वारा सीखी जाती है, अनुकरण की अपूर्णता भी ध्वनि-परिवर्तन का एक कारण बनती है। कभी-कभी व्यक्ति स्वयं अपनी बात का अनुकरण भी करता है, इसे ओरटेल अन्तर्व्यक्ति अनुकरण कहते हैं। मतलब का मतबल कर देना अनुकरण की अपूर्णता का ही उदाहरण है। कुस्तुनतुनियाँ में वर्षों रहने वाले एक ब्रिटिश नागरिक का उदाहरण मैक्समूलर ने दिया है जिसने पूरे अधिकार और बड़े विश्वास के साथ बखशीश का वर्ण-विन्यास अंग्रेजी में (baetshtasch) किया था।[2] कुछ विदित ध्वनियों के आ जाने के कारण सादृश्य पर भी नए ध्वनि-परिवर्तन होते हैं, द्वादश के दीर्घ 'आ' के कारण एकादश में आ दीर्घ हो गया। दुःख के सादृश्य पर सुक्ख भी चलता है। अज्ञान के कारण भी एक स्थान के वर्णों का उच्चारण हम दूसरे स्थानों के वर्णों जैसा करने लगते हैं, जैसे अब व और ब एक हो गए हैं। भ्रमपूर्ण व्युत्पत्ति भी ध्वनि-विकार या ध्वनिपरिवर्तन का कारण बनती है, लायब्रेरी को लायबरेली (रायबरेली नगर के आधार पर) चेम्सफोर्ड को चिलमफोड़, एडवांस को अठवांस लोग इसी कारण कहने लगते हैं। कुछ भौगोलिक और सामाजिक प्रभाव भी पड़ते हैं और उनके कारण ध्वनियोग के उच्चारण में परिवर्तन हो जाते हैं। मैक्समूलर के अनुसार द्राविड़ भाषाओं में 'ल' का 'र' और 'र' का बहुधा 'ल' हो जाता है। लिखने में होने वाली अड़चनें और उससे होने वाली गड़बड़ी भी उच्चारण के परिवर्तन का कारण बनती हैं—अपह्नुति और चिह्न आदि अब प्रेस की असुविधा के कारण अपन्हुति और चिन्ह बन गए हैं। इसी प्रकार नामों के अन्त में लगने वाले अंग्रेजी ए के कारण गुप्ता (गुप्त) मिश्रा (मिश्र), अशोका (अशोक) आदि चल पड़े हैं। शब्दों की साधारण लम्बाई भी घिस-पिट जाती है—संस्कृत उपाध्याय का बिहारी में 'झा' मात्र रह जाना इसका उदाहरण है। प्रयत्न-लाघव या उच्चारण सुविधा (मुख-सुख) के लिए ब्रह्म को हिन्दी बोलियों में 'बरम्हा' कहने लगे हैं। प्यार या क्रोध की भावनाओं के फेर में नामों की जो दुर्दशा होती है उसके उदाहरण खोजने के लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा। कुछ लोग अकारण पांडित्य प्रदर्शन के लिए बनकर बोलने लगते हैं, जैसे दंत्य स को तालव्य श बोलने लगना। यदृच्छा शब्द रोटी-ओटी, अंट-शंट, गलत-सलत भी कभी-कभी ध्वनि विकास के कारण बन जाते हैं। मैक्समूलर के शब्दों में बच्चे दंत्य वर्णों का बहुत समय तक कंठ्य वर्णों के लिए प्रयोग करते हैं। अन्य भाषाओं के सम्पर्क से भी ध्वनि परिवर्तन होते हैं, हिन्दी में अंग्रेजी के प्रभाव से भी कुछ परिवर्तन हुए हैं। बल या स्वराघात (दे० यथा०) के कारण भी ध्वनि-परिवर्तन हो जाते हैं, जैसे बिल्व का बेल, कुष्ठ का कोढ़ या डायरेक्टर और फाइनेंस से डिरैक्टर और फिनैंस। कविगण छन्द पूर्ति के लिए या तुक के लिए भी मनमानी तोड़-फोड़ करते हैं। इन सब कारणों के बाद अन्त में सबसे महत्त्वपूर्ण कारण स्वाभाविक विकास है, जैसे कूप का कुआं, सप्ताह का हफ्ता आदि। मैक्समूलर के शब्दों में संयुक्ताक्षरों से शुरू होने

2. मैक्समूलर, लैक्चर्स जिल्द 2, पृष्ठ 186।

वाले शब्दों में विशेष परिवर्तन होता है। उनके उच्चारण में होने वाली कठिनाई की दृष्टि में बहुत से वर्ण छोड़ दिए जाते हैं, या बदल जाते हैं। काल्डवेल के अनुसार द्रविड़ों की मुख्य विशेषता संयुक्त वर्णों का निरादर है। इस प्रसंग में यह सदैव याद रखना चाहिए कि ध्वनि परिवर्तनों और अन्य परिवर्तनों के बीच कोई सीमा नहीं खींची जा सकती। अतः ध्वनि को शब्दों से और शब्दों को वाक्यों से पृथक् नहीं करना चाहिए।[1]

जीवित शरीर की भाँति जीवित भाषाओं के लिए यह कह सकना कठिन है कि कहाँ पर ध्वनियों का ह्रास समाप्त होता है और विकास शुरू हो जाता है।[2] मैक्समूलर के अनुसार भाषा के विकास की दो प्रक्रियाएँ हैं : (1) बोलियों का पुनरुत्थान और (2) ध्वनि सम्बन्धी ह्रास। भाषा की समृद्धि और उसका स्वाभाविक जीवन बोलियों में देखने को मिलता है। ध्वनि सम्बन्धी ह्रास का उदाहरण देते हुए मैक्समूलर संस्कृत विंशति शब्द को लेते हैं और द्वि+दशति में एक ओर वि और दूसरी ओर शति का बच रहना ध्वनि सम्बन्धी ह्रास बताते हैं। चीनी में यूल दो को कहते हैं और शी 10 को और 20 को तदनुसार यूल-शी कहते हैं। पर तदनुसार न तो अंग्रेजी में बीस को टू-टेन कहते हैं, न लेटिन में डुओ-डेसेम न संस्कृत में द्विदश; बल्कि तीनों में क्रमशः ट्वेंटी, विजिण्टी और विंशति कहते हैं।

अब इस ध्वनि-परिवर्तन की दिशाओं को लें।

क—लोप (एलीजन)

1. आदि स्वर लोप (अफेसिस)	अपि = भी, अमीर = मीर, अनाज = नाज, अतीसी = तीसी, अहाता = हाता, एकादश = ग्यारह।
2. मध्य स्वर लोप (सिनकोप)	गरदन = गर्दन, बलदेव = बल्देव, तरबूज = तर्बूज।
3. अन्त स्वर लोप	संवृत = संवृत्, निद्रा = नींद, द्राक्षा = दाख, भगिनी = बहिन, पार्श्व = पास, अग्नि = आग, बाहु = बांह।
4. आदि व्यंजन लोप	द्वादश = बारह, स्वपन = सोना, श्मशान = मसान, स्तंभन = थमना।
5. मध्य व्यंजन लोप	कोकिल = कोइल, सूची = सूई, उपवास = उपास।
6. अन्त व्यंजन लोप	उष्ट्र = ऊँट, आम्र = आम, निम्ब = नीम।

1. एरिक पाट्रिज, वर्ल्ड आफ वर्ड्स, पृष्ठ 84।
2. मैक्समूलर, लैक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 215।

7. आदि अक्षर (सिलेबिल) लोप	शहतूत = तूत ।
8. मध्य अक्षर लोप	भांडागार = भंडार, गेहूँचना = गोचना, गेहूं जौ = गोजई, फलाहारी = फलारी ।
9. अन्त अक्षर लोप	माता = मां, सपादिक = सवा, मातृ जाया = भावज, दीपवर्तिका = दीवट ।
10. समाक्षर लोप (हेपलोलौजी)	नाककटा = नकटा, शेववृघ = शेवृघः, जहीहि = जहि, शष्पपिंजर = शष्पिजर ।

(मनुष्य उसी अक्षर को दुबारा बोलना नहीं चाहता, अतः ऐसे संयोग में एक लुप्त हो जाता है ।)

ख—आगम

1. आदि स्वरागम (या पुरोहिति, अं॰ प्रोथेसिस)	स्त्री = इस्त्री, स्नान = अस्नान, स्टेशन = इस्टेशन ।
2. मध्य स्वरागम (या स्वर भक्ति अं॰ एनाप्टिक्सिस)	इंद्र = इंदर, श्लाघा-पा॰ सिलाहा-प्रा॰ सलाहा—हिं॰ सराहना, कृष्ण = किशन, उम्र = उमर, हुक्म = हुकुम, इलाची = इलाइची, मिश्र = मिसिर, शुक्ल = सुकुल ।
3. अन्त स्वरागम	स्वप्न = सपना, दवा = दवाई, करतूत = करतूति ।
4. सम स्वरागम (या अपिनिहिति, अं॰ एपेन्थेसिस)	स्थिति = इस्थिति, सवारी = असवारी, बेला = बेइला, अवेस्ता-कृणोति = Karanaoiti आदि । पूर्वी बंगला करिया = केरिया ।

(अपिनिहिति के उदाहरण हिन्दी में कम मिलते हैं। इसका आदि स्वरागम से यही भेद है कि इसमें उसी प्रकार का स्वर आना चाहिए, दूसरे यह आवश्यक नहीं कि आदि में ही आए, इसके उदाहरण अवेस्ता में बहुत मिलते हैं।)

5. आदि व्यंजनागम	ओष्ठ = होंठ, अस्थि = हड्डी ।
6. मध्य व्यंजनागम	शाप = श्राप, सुनरी = सुन्दरी, वानर = बन्दर ।
7. अन्त व्यंजनागम	कल = कल्ह, उमरा = उमराव, भौं = भौंह ।
8. आदि अक्षरागम	गुंजा = घुंघुची ।
9. मध्य अक्षरागम	गरीब निवाज = गरीबुल निवाज ।
10. अन्त अक्षरागम	आंक = आंकड़ा, वधू = वधूटी ।

ग—विपर्यय

1. पार्श्ववर्ती स्वर विपर्यय	उल्का=लूका, अंगुलि=उंगली।
2. दूरवर्ती स्वर विपर्यय	टाटक=टटका।
3. पार्श्ववर्ती व्यंजन विपर्यय	डूबना=बूड़ना, चिह्न=चिन्ह, उसकाना=उकसाना, तमगा=तगमा, गरुड़=गड़ुर, विडाल=विलार।
4. दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय	लखनऊ=नखलऊ, पहुंचना=चहुंपना
5. पार्श्ववर्ती अक्षर विपर्यय 6. दूरवर्ती अक्षर विपर्यय	इनके उदाहरण केवल मजाक में या भूल में ही देखने को मिलते हैं। भाषा पर उनका सामान्य प्रभाव नहीं पड़ता।
7. एकांगी विपर्यय	पुर्तगाली-फेस्त्रा का फ्रेस्ता।

(यह वेन्द्रिये ने माना है। इसमें एक वर्ण के चले जाने पर दूसरा उसकी पूर्ति के लिए नहीं आता।)

8. शब्दांश विपर्यय (स्पूनरिज्म) दाल-चावल=चाल-दावल (जल्दी में)

(यह आक्सफोर्ड के डा०स्पूनर के नाम पर चला है, जिनको शब्दों के आदि अंशों के विपर्यय की आदत थी।)

घ—अनुरूपता, या सावर्ण्य या समीकरण

(अंग्रेजी एसिमिलेशन)

1. पूर्वानुरूपता	व्यंजन—चक्र=चक्क, व्याघ्र=बाघ, अग्नि=अग्गी (क्रमशः र, र और न पूर्वानुरूप क, घ, ग हो गए हैं) स्वर—खुरपी=खुरुपी, सूरज=सुरुज
2. परानुरूपता	व्यंजन—नील=लील स्वर—अंगुली=उंगुली
3. पारस्परिक व्यंजन अनुरूपता	सत्य=सच, कर्त्तरिका=कटारी।

(दो व्यंजन सान्निध्य में परस्पर एक दूसरे पर प्रभाव डालते है या तो दोनों बदल जाते हैं या तीसरा आ जाता है।)

ङ—अननुरूपता या असावर्ण्य या विषमीकरण

1. पूर्व-अननुरूपता (पहला व्यंजन नहीं बदलता)	कंकरण=कंगन, काक=काग।
2. पर-अननुरूपता (पहला बदलता है)	नवनीत=लवनू, लांगल=नांगल

च—मात्रा-भेद

1. ह्रस्व से दीर्घ — जिह्वा = जीभ, भक्त = भात, अक्षत = आखत (मराठी में यह प्रवृत्ति बहुत है। सम्प्रदाय, मदन, रथ, कुल, पुर, बहिन, परख आदि के लिए क्रमशः साम्प्रदाय, मादन, राय, कूल, पूर, बहीन, पारख देखे जाते हैं।

2. दीर्घ से ह्रस्व — आषाढ़ = असाढ़, पाताल = पताल, आश्चर्य = अचरज, शून्य = सुन्न।

छ—अल्पप्राणीकरण

महाप्राण का अल्पप्राण हो जाना—'अभ्यासे चर्च' (पाणिनि सूत्र 8/4/54) के अनुसार झ, भ, घ, ढ, ध, के स्थान पर ज, ब, ग, ड, द हो जाता है। यह ध्वनि परिवर्तन के इसी नियम के कारण है। जैसे भूभूव या बभूव आदि।

ज—महाप्राणीकरण

अल्पप्राण का महाप्राण हो जाना, जैसे शुष्क = सूखा, हस्त = हाथ, गृह = घर आदि।

झ—घोषीकरण

उच्चारण सुविधा के लिए अघोष ध्वनि को घोष बना देना, जैसे—शाक = साग, प्रकट = परगट, कंकण = कंगन आदि।

ञ—अघोषीकरण

इसके उदाहरण कम मिलते हैं, जैसे तादाद = तादात।

ट—ऊष्मीकरण

जैसे केंटुम वर्ग की भाषाओं के क का शतम् वर्ग में श में बदल जाना।

ठ—अनुनासिकीकरण

जैसे उष्ट्र = ऊंट, यूका = जूं, भ्रू = भौं, श्वास = सांस आदि।

ड—संधि

अर्द्धस्वरों या वैसे व्यजनों (व, य, प, म) का पहले स्वर में परिवर्तित हो जाना और फिर संधि हो जाना, जैसे शत = सअ = सव = सौ, नयन = नइन = नैन, सपत्नी = सवत = सउत = सौत, चामर = चंवर = चंउर = चौंर।

ढ—अभिश्रुति (अमलौट)

यह शब्द ग्रिम महाशय ने भाषा विज्ञान को दिया है। अपिनिहिति या समस्वरागम के कारण आए हुए स्वर या अर्द्धस्वर का जब भाषा विशेष की प्रकृति के कारण परिवर्तन हो जाता है, तो इसे अभिश्रुति कहते हैं। ग्रिम ने जर्मन भाषा से ही उदाहरण दिए हैं जैसे—Mani = maini = men, यहाँ maini में बीच की आई अपिनिहिति या समस्वरागम के कारण है। फिर, वह परिवर्तित होकर मैन में ई हो गई।

इसी प्रकार पूर्वोदाहृत पूर्व बंगला का उदाहरण करिया — केरिश्रा = कोरे है। यह भारोपीय परिवारों के अतिरिक्त यूराल-अल्टाइक परिवारों में भी देखी जाती है।

ग—अपश्रुति (एब्लौट)

इसका पता भी जर्मन विद्वानों ने 1871 में लगाया था। इसका यह भारतीय नाम डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी की देन है। व्यंजनों में (दो-तीन शब्दों से बनी धातु में) परिवर्तन हुए बिना स्वरों में हेर-फेर करके विभिन्नार्थक रूपों की सृष्टि को अपश्रुति कहते हैं। सेमेटिक भाषाओं विशेषतः अरबी में, जहाँ धातुएँ तीन व्यंजनों की होती हैं, इसका विपुल प्रयोग देखा जाता है। एक क् त् ब् से कातिब, किताब कुतुब आदि अनेक शब्दों की उत्पत्ति इसका उदाहरण है। हिन्दी में मिलो, मेल, मिला, मिली, मेला इसके अच्छे उदाहरण हैं। अंग्रेजी—सिंग, सग, संग, संस्कृत-बाद, वदति, उदितः।

अपश्रुति बल या स्वराघात का परिणाम है, जिसकी प्रवृति पड़ोसी वर्ण को लुप्त या क्षीण करने की होती है। मूल भारोपीय भाषा में संस्कृत या ग्रीक की भाँति अक्षरावस्थान के ऊपर इतने कठोर नियम न रहे होंगे। संस्कृत और ग्रीक दोनों में ही स्वरों की उच्च-निम्न श्रेणियाँ देखी जाती हैं। यह अक्षरावस्थान गुण (क्वालिटी) और परिमाण (क्वांटिटी) की दृष्टि से दो प्रकार का होता है, और तदनुसार गुणीय और परिमाणीय (या गौण और मात्रिक) दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं। ग्रीक और लेटिन में पिछले प्रकार के और संस्कृत में पहले प्रकार के उदाहरण कम मिलते हैं। विशेष दे० अक्षरावस्थान, ध्वनि-नियम।

धातु प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्यविचार-अयोगात्मक।

ध्वनिमात्र—किसी भाषा विशेष की ऐसी सम्बन्धी ध्वनियों का एक कुल, जिनका स्थान एक सम्बद्ध भाषा में उस भाषा की कोई अन्य ध्वनि नहीं ले सकती (डा० सुनीति कुमार चटर्जी)। अंग्रेजी के इस फोनम शब्द के लिए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ध्वनि-श्रेणी शब्द प्रयुक्त किया है और बाबू श्यामसुन्दर दास ने ध्वनिकुल और ध्वनिमात्र शब्द भी दिए हैं। पर भोलानाथ तिवारी द्वारा दिया गया ध्वनितत्व शब्द एकवचन में अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। विशेष दे० ध्वनि-तत्व।

ध्वनि-यन्त्र—शरीर का ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला एक अंग। इसे स्वर यंत्र, या कंठपिटक या ध्वनि यंत्र कहते हैं। अंग्रेजी में इसे लैरिंक्स कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

ध्वनि-विकार—भाषा मनुष्य की एक विकासशील संस्था है। इसी कारण उच्चारण ध्वनियों में अनेक परिवर्तन आते रहते हैं या विकार होते रहते है। इन विकारों के स्वरूप और हेतुओं के लिए दे० ध्वनि-परिवर्तन।

ध्वनि विज्ञान—उच्चारण में निकलने वाली वास्तविक ध्वनियों का विश्लेषण और

वर्गीकरण करने वाला विज्ञान[1]। इसमें ध्वनि-परिवर्तन या ध्वनि विकार (दे० यथा०) के सिद्धान्तों और इतिहास का अध्ययन शामिल नहीं होता, जो ध्वनि-विचार (दे० यथा०) का क्षेत्र है। व्यावहारिक दृष्टि से उच्चारण की कला को ही ध्वनि विज्ञान कहते हैं। जिस प्रकार ज्योतिष तथा अन्य भौतिक विज्ञानों के लिए गणित का महत्त्व है, उसी प्रकार भाषा विज्ञानों के लिए ध्वनि-विज्ञान का। इसके बिना हम भाषा के स्वरूप का तनिक भी अध्ययन नहीं कर सकते। भाषाओं के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार के अध्ययन के लिए इसका एक समान महत्त्व है।[2]

प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी ध्वनि विज्ञान सम्बन्धी विशेषता होती है। मैक्समूलर ने कुछ ऐसी भाषाओं पर प्रकाश डाला है, जिनमें कुछ ध्वनियाँ या वर्ण होते ही नहीं।[3] यह बात हमें अत्यन्त अनोखी मालूम पड़ती है। हम जानते हैं कि बच्चे सबसे पहले पवर्गीय ओष्ठ्य ध्वनियों को बोलते हैं और निकट सम्बन्धियों के वाचक शब्द प्रायः अधिकांश भाषाओं में पवर्ग से ही बनते हैं:—माँ, बापू, बाबा, मामा, पापा आदि। परन्तु मोहाक और हूरोन ओष्ठ्य ध्वनियाँ नहीं बोलते। तैहिट्टी, हवाई और समोअन भाषाओं में कंठ्य ध्वनियाँ नहीं होतीं। आस्ट्रेलियन बोलियों में स नहीं होता। चीनी, मैक्सिकन और पेरू की भाषा में ड् नहीं होता। चीनी में र् को ल् बना देते हैं और यूरोप को यू-लो-पा कहते हैं। इसी प्रकार संस्कृत में भी ड़्, ढ़्, फ्, ध्वनियाँ न थीं। हिन्दी में 48 व्यंजन हैं, संस्कृत में 37 (ल, ल्ह समेत 39), तुर्की में 35, फारसी में 31, अरबी में 28, काफिर (जुलू) में 26, हिब्रू में 23, अंग्रेजी में 20, ग्रीक में 17, लेटिन में 17, मंगोलियन में 17-18, फिनिश में 11, पोलीनेशियन में 10, और कुछ आस्ट्रेलियन विभाषाओं में केवल 8 व्यंजन तक होते हैं।

फिर अंग्रेजी में मिश्र स्वर होते हैं, फ्रेंच की भाँति वृताकार स्वर नहीं। अरबी में जिह्वामूलीय क् होता है। फ्रेंच में सभी अक्षरों पर स्वराघात (बल) दिया जाता है। स्पेनिश की ध्वनि ह्रस्व स्वरों के कारण बड़ी कर्णकटु होती है। इस प्रकार इन सारी भाषाओं की ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं का अध्ययन ध्वनि-विज्ञान का विषय है।

प्रयोगशाला का ध्वनिविज्ञान एक नया विज्ञान है। इसमें यन्त्रों की सहायता से भाषा सामग्री का अध्ययन किया जाता है। इसमें लैरिंगोस्कोप (दे० यथा०), एक्सरे फोटो तथा अन्य अभिलेख रखने वाले यन्त्रों (विशेषतः कायमोग्राफ दे० यथा०) की सहायता ली जाती है। इस प्रकार इस क्षेत्र में ध्वनिविज्ञान के साथ ही शरीर विज्ञान और श्रवण-विज्ञान की भी सहायता ली जाती है। ध्वनियों की शक्ति या भारीपन, ऊँचाई और प्रकार (रूप-रंग) का अध्ययन किया जाता है। मैक्समूलर के शब्दों में हमें यह ध्यान रखना पड़ता है कि ध्वनियाँ किससे बनती हैं, कैसे बनती हैं और कहाँ

1. हेनरी स्वीट : हिस्ट्री आफ लैंग्वेजेज, पृष्ठ 12।
(डा० वी० डा० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्परेटिव फिलोलाजी, ग्लौसरी।)
2. हेनरी स्वीट : ए प्रेक्टिकल स्टडी आफ लैंग्वेजेज, पृष्ठ 4।
3. मैक्समूलर-लैक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 178-183।

पर बनती हैं ? हमें पता चलता है कि वे विवृत श्वास से (स्वर) या अल्पस्पर्शी विवृत श्वास से (अर्द्धस्वर) या स्पर्शी (श्वास व्यंजन) से बनती हैं। मुख के विशेष खोलने से विवार, श्वास और घोष तथा संकरे करने से संवार, नाद, घोष ध्वनियाँ निकलती हैं। वे विभिन्न उच्चारण-स्थानों (दे० उच्चारण स्थान) का सक्रिय या निष्क्रिय संस्पर्श करने से बनती हैं।

हेनरी स्वीट ने ध्वनि-विज्ञान के अनेक लाभ गिनाए हैं[1]। इससे हमारे लिए भाषा-भाषियों के उच्चारण का प्रत्यक्ष अध्ययन आवश्यक नहीं रहता। विदेश जाकर ही विदेशी भाषा का अध्ययन किया जाए इसकी भी अपेक्षा नहीं रहती। एक योग्य वयस्क बाह्य सहायता के बिना ही उस भाषा की ध्वनियों का प्रारम्भिक परिचय प्राप्त कर सकता है। ध्वनियों पर अधिकार हो जाने से अर्थ विचार में सहायता मिलती है और संशय की गुंजाइश नहीं रहती। साहित्यिक-लालित्य के लिए बोलचाल की ठेठ भाषा का भी उपयोग सरलता से किया जा सकता है। इससे व्याकरण में भी सहायता मिलती है। कई भाषाओं में स्वर-लहरी या स्वाराघात पर ही वाक्य-विचार तक निर्भर रहता है। अतः भाषा के विज्ञान की कोई शाखा ध्वनि-विज्ञान के अध्ययन को सर्वथा छोड़ नहीं सकती। इसके अध्ययन के लिए ध्वनि-अवयव (दे० यथा०) के अनेक प्रकार के चित्रों, नकशों और माडलों का भी उपयोग होता है। ग्रामोफोन और डिक्टाफोन की भी सहायता ली जाती है।

इन लाभों के अतिरिक्त वैज्ञानिक खोज का आनन्द भी इस विज्ञान के अध्ययन में ही प्रवृत करता है। उच्चारणों का ज्ञान बिना हुए ध्वनि-विकारों और उनके इतिहास पर विचार नहीं किया जा सकता। अतः ध्वनियों के विकास का अध्ययन करने के लिए भाषाओं के ध्वनि समूह का अध्ययन परमावश्यक है।

ध्वनियों के विश्लेषण के लिए ध्वनि विज्ञान में पहले तो उच्चारण स्थान (दे० यथा०) और ध्वनि-अवयव (दे० यथा०) का अध्ययन अपेक्षित होता है और दूसरे उनके उच्चारण के लिए किए जाने वाले बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रयत्नों (दे० यथा०) का। इन्हीं आधारों पर ध्वनियों का वर्गीकरण भी किया जाता है।

ध्वनियों के वर्गीकरण पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है। इसके लिए दे० घोष, अघोष, स्पर्श (कंठ्य, मूर्धन्य, तालव्य , दंत्य, ओष्ठ्य) अल्पप्राण, महाप्राण, अनुनासिक, काकल्य, जिह्वामूलीय, ओष्ठ्य, दंत्योष्ठ्य, संघर्षी, पार्श्विक, लुंठित, उत्क्षिप्त, अर्द्धस्वर, मूलस्वर, स्वर, व्यंजन, क्लिकध्वनि, संयुक्त ध्वनि, और सवर्ण। ध्वनियों के गुण के लिए दे० मात्रा-काल और स्वराघात। भारोपीय, अवस्ता, वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश ध्वनिसमूहों पर पृथक् लेख भी देखिए।

ध्वनि-विचार—हेनरी स्वीट के अनुसार भाषण-ध्वनि का समूचा विज्ञान ध्वनि विचार (फोनोलोजी) में आता है, उसमें ध्वनि-विकारों (परिवर्तनों) का इतिहास

1. हेनरी स्वीट : ए प्रेक्टिकल स्टडी आफ लैंग्वेजेज, पृष्ठ 46-49

ग्रोर सिद्धान्त दोनों सम्मिलित हैं। ध्वनि विज्ञान (फोनेटिक्स) में ये बातें शामिल नहीं हैं, उसका सम्बन्ध मुख्यतः व्यक्तियों के विश्लेषण और वर्गीकरण से है [1]। डा० गुणे के अनुसार भी ध्वनि-विचार भाषण ध्वनियों के विज्ञान का नाम है और इसमें ध्वनिविकारों का इतिहास ग्रौर सिद्धान्त दोनों शामिल हैं और यह तुलनात्मक उपायों द्वारा एक लगातार भाषण की ध्वनियों का सम्बन्ध उनके अर्थ से जोड़ता है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने अंग्रेजी फोनोलौजी के लिए तो ध्वनि-विचार शब्द ही प्रयुक्त किया है, परन्तु अंग्रेजी फोनेटिक्स के लिए ध्वनिशिक्षा शब्द रखा है और ध्वनिविज्ञान शब्द को दोनों के लिए सामान्य रूप से रखना चाहते हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री फोनेटिक्स को वर्ण-विज्ञान कहते हैं और डा० धीरेन्द्र वर्मा ध्वनिविज्ञान। हम भी फोनोलौजी के लिए ध्वनि-विचार और फोनेटिक्स के लिए ध्वनिविज्ञान शब्द अत्यधिक उपयुक्त समझते हैं।

मोटे रूप में ध्वनि-विचार को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(1) ध्वनि-विचारों का इतिहास और तुलना और (2) सामान्य और विशेष सिद्धान्त। ध्वनितत्व की विवेचना करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि भाषण ध्वनियाँ अनन्त होते हुए भी प्रत्येक भाषा की ध्वनि-संख्या परिमित होती है, परन्तु अंग्रेजी और फ्रेंच या मराठी और हिन्दी में लिपि एक होने पर भी उच्चारण में विशेष—अन्तर हो जाता है। अतः किसी भाषा के उच्चारणों के सम्यक् ज्ञान के लिए या तो उस भाषाभाषी विद्वानों की शरण जाना पड़ेगा, या ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्णन पढ़कर भी उनको सीखा जा सकता है। परन्तु उस भाषाभाषी विद्वानों का भी ध्वनिविज्ञान विशारद होना आवश्यक है और उनके उच्चारणों को ध्यान से सुनना चाहिए, अन्यथा सामान्यतः उनका भी भरोसा नहीं किया जा सकता। हेनरी स्वीट का विचार है कि[2] सामान्यतः ध्वनिविज्ञान से अपरिचित व्यक्ति उन्हीं ध्वनियों का स्वयं उच्चारण करते जाते हैं और पूछने पर उलटी बात बताते हैं। प्राचीन भाषाओं के उच्चारणों का पता लगाने में होने वाली कठिनाई को पार करने के लिए व्यक्तिवाचक नामों का प्रत्यक्षीकरण, शिलालेखों की परस्पर तुलना, उस परिवार की आधुनिक भाषाओं के उच्चारणों का अध्ययन आदि उपाय अपनाये जाते हैं। इस प्रसंग में भारोपीय, वैदिक, अवस्ता, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, ध्वनिसमूहों पर पृथक् लेख देखिए।

इन ध्वनिसमूहों के इतिहास का तुलनात्मक विवेचन ध्वनि विचार और उसके नाते भाषाविज्ञान का एक आवश्यक अंग है। संस्कृत की ध्वनियों के विकसित रूपों पर प्राकृत और पाली के वैयाकरण (वररुचि, कच्चायन आदि) ने प्रकाश डाला था और अपनी भाषाओं के रूपों की तुलना की थी। उलहनबेक और मैकडानल ने इसी प्रकार संस्कृत ध्वनियों का सम्बन्ध भारोपीय ध्वनियों से जोड़ा है। इस प्रकार ध्वनियों के इतिहास पर तुलनात्मक विचार करते हुए भाषाशास्त्री आधुनिक ध्वनियों के सहारे

1. हिस्ट्री आफ लैंग्वेज पृष्ठ 71।
2. हेनरी स्वीट : ए प्रेक्टिकल स्टडी आफ लैंग्वेजेज, पृष्ठ 42।

पीछे चलते-चलते उस स्थल तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं, जब भाषा का जन्म हुआ था और कुछ धातुओं के सहारे भाषा का ताना-बाना बुना गया था। एक परिवार की ध्वनियों की यह कहानी और भी अधिक रोचक होती है।

इस ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विवेचना से पता चलता है कि भाषण ध्वनियाँ सदैव एक सी ही नहीं बनी रहतीं। मानव-स्वभाव की कुछ ऐसी प्रवृति है कि उसे अभिव्यक्ति के रूढ़िगत अभिव्यक्ति प्रकार से संतोष नहीं होता, बल्कि नए शब्दों का प्रचार करने और उनमें नए अर्थ जोड़ने में उसे आनन्द आता है[1]। परिवर्तन या विकास आकस्मिक नहीं होते, बल्कि शरीर विज्ञान के नियमों पर आधारित होते हैं[2]। उनके पैदा हो जाने के कुछ विशेष हेतु होते हैं तथा उनके कुछ सामान्य भेद होते हैं। (देखिये ध्वनि विकार)। इन विकारों का कारण कुछ बाह्य परिस्थितियाँ होती हैं तथा कुछ ऐतिहासिक और भौगोलिक प्रभाव भी पड़ते हैं। बाह्य कारणों के साथ कुछ आन्तरिक (उपर्युल्लिखित शरीर वैज्ञानिक) कारण भी होते हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही काल में और एक ही भाषा में भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर भाषा शास्त्रियों ने कुछ ध्वनि-नियम (दे० यथा०) भी बनाए हैं। ये सारी बातें ध्वनिविचार के अन्तर्गत आती हैं। (विशेष दे० ध्वनि, ध्वनि-विज्ञान, ध्वनि-विचार, और ध्वनि-नियम)।

ध्वनि-शिक्षा—ध्वनि विज्ञान (फोनेटिक्स) के लिए बाबू श्यामसुन्दर दास ने ध्वनि-शिक्षा शब्द प्रयुक्त किया, जो पुराने 'शिक्षा' शब्द पर आधारित है। परन्तु ध्वनि-विज्ञान शब्द बहुत प्रचलित हो गया है और हमने उसे ही अपनाया है। (विशेष दे० ध्वनि-विज्ञान)।

ध्वनि-श्रेणी—"किसी भाषा विशेष की ऐसी सम्बन्धी ध्वनियों का एक कुल, जिनका स्थान एक सम्बद्ध भाषाओं में उस भाषा की कोई अन्य ध्वनि नहीं ले सकती" (डा० सुनीतिकुमार चटर्जी)। अंग्रेजी के इस फोनेम शब्द के लिए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ध्वनि श्रेणी शब्द प्रयुक्त किया है, और बाबू श्यामसुन्दर दास ने ध्वनि कुल और ध्वनि मात्र शब्द भी दिए हैं। पर भोलानाथ तिवारी द्वारा दिया गया ध्वनि-तत्व शब्द एक वचन में अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। विशेष दे० ध्वनि-तत्व।

ध्वनिसंयोग—दो ध्वनियों का पास-पास आ जाना। सामान्यतः इसी से शब्द निर्माण होता है। इसका संयुक्त ध्वनि से यही अन्तर है कि उसमें दोनों ध्वनियाँ बिलकुल मिल जाती हैं और इसमें सान्निध्य भले हो, दोनों की पृथक् सत्ता बनी रहती हैं। विशेष दे० संयुक्त ध्वनि, संयुक्त स्वर।

ध्वन्यात्मक शब्द—भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि मनुष्य ने कुछ शब्द पशुओं तथा अन्य प्राकृतिक ध्वनियों के अनुकरण पर गढ़े हैं (दे० भाषोत्पत्ति)। इस प्रकार के शब्दों को ध्वन्यात्मक या अनुकरणात्मक शब्द कहते हैं। इन शब्दों की विशेषता यही है कि ध्वनि से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है, जैसे धड़धड़, छलछल, कलकल आदि।

1. **परिकपाट्रिज** : वर्ल्ड आफ वर्ड्स, पृष्ठ 84।
2. **मैक्समूलर** : लैक्चर्स जिल्द 2, पृष्ठ 160

न

न्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान दंत, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य-प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद, और घोष है। आधुनिक व्याकरणों के अनुसार यह अल्पप्राण, घोष अनुनासिक वत्सर्य स्पर्श है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसके उच्चारण में जीभ की नोक दंत्य स्पर्श व्यंजनों के समान दाँतों की पंक्ति को न छूकर ऊपर के मसूड़ों को छूती है, अतः प्राचीन प्रथा के अनुसार न् को दंत्य मानना ठीक नहीं है। यह वास्तव में वर्त्स्य है।

उदा० नुमाइश, बुनना, कान।

नक्रिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

नगराली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

नगरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 13 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

नस्यू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

नहरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 166 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नागपुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,560 है। इनमें से 1,551 व्यक्ति भारत के पूर्वी और 9 मध्य भाग में रहते हैं।

नागवंशी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 82 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नागरी (1)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नागरी (2)—यह कुटिल लिपि (दे० यथा०) से नवीं सदी के लगभग विकसित हुई। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में नागरी लिपि का प्रयोग उत्तर भारत में दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से मिलता है किन्तु दक्षिण भारत में कुछ लेख आठवीं सदी तक के पाए जाते हैं। दक्षिण में इसका नाम 'नंदि नागरी' है और आज तक संस्कृत लिखने में उसका उपयोग होता है। कुटिल लिपि की भाँति नागरी लिपि के कुछ अक्षरों की शिरोरेखा दो भागों में विभक्त थी, पर डा० ओझा के अनुसार ग्यारहवीं

सदी से ये दोनों अंश मिलकर सिर की एक लकीर बन जाती है और प्रत्येक अक्षर का सिर उसकी चौड़ाई जितना रहता है। ग्यारहवीं सदी की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से मिलती-जुलती ही है और बारहवीं शताब्दी से वर्तमान नागरी बन गई। ईसा की बारहवीं शताब्दी से लगाकर अब तक नागरी लिपि बहुधा एक ही रूप में चली आती है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार देवनागरी या नागरी नाम पड़ने का कारण वास्तव में अनिश्चित है। कुछ लोग इसका सम्बन्ध नागर ब्राह्मणों से जोड़ते हैं, कुछ नगर शब्द से नगरों में प्रचलित अर्थ में इसे नागरी मानते हैं। आर० एस० शास्त्री प्रतिमाओं के आगे पूजा के लिए बने देवनागर मन्त्रों से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। कोई भी मत सर्वमान्य नहीं है। (विशेष दे० लिपि, ब्राह्मी)।

नागा—भारत की इस अनिर्दिष्ट नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12,231 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

नागार्चल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

नागार्ची—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 159 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नादिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,290 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

नाद—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्णों, य, र, ल, व और ह का बाह्य प्रयत्न नाद होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

नारल—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे नारीवाल भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नारीवाल—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे नारल भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

निकोबारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 11,792 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

निमाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,10,577 है और वे मध्य भाग में रहते हैं।

निमारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल संख्या 1,80,696 है,। ये सभी मध्य भारत में रहते हैं।

निरवयव—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार-अयोगात्मक।

निरिन्द्रिय—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी

कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अयोगात्मक।

निरुक्ति—किसी भाषा के प्रत्येक शब्द की प्रकृति-प्रत्यय रचना के अनुसार (उपसर्ग, धातु, प्रत्यय आदि बताते हुए) परीक्षा करना, उसके जन्म और विकास का इतिहास बताना, उसके परिवर्तनों की विवेचना करना—यह सब कार्य निरुक्ति का है। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार निरुक्ति द्वारा प्रतिपादित अर्थ कभी-कभी वर्तमान अर्थ से भिन्न होता है। निरुक्ति के अनुसार हिमालय का अर्थ बर्फ़िस्तान है, पर साधारणतः जहाँ कभी बर्फ नहीं गिरता, उस पहाड़ के ऐसे भागों का बोध भी इसी शब्द से होता है। इसी प्रकार के अनेक अन्य शब्द भी लिए जा सकते हैं, जिनका नैरुक्तिक अर्थ विद्यमान टकसाली या प्रायोगिक अर्थ से कहीं संकुचित या विस्तृत होगा।

प्रसिद्ध निरुक्तिकार यास्क ने सभी नामों को धातुज माना है और उन्हें कर्मों के (क्रिया के) आधार पर पड़ने वाला बताया है। गतिशीलता के आधार पर पृथ्वी के लिए 'गो' शब्द प्रचलित हुआ, व्यापकता और विस्तार के आधार पर पृथ्वी और उर्वी शब्द चले, सहनशीलता के कारण क्षमा, धारण करने के कारण धरित्री, समृद्धि के कारण वसुधा, वसुंधरा आदि नाम पड़े। विशेष दे० अर्थविचार, अर्थनिर्णय।

निर्णय सिद्धान्त—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि सृष्टि के आदि में कुछ मनुष्यों के समाजों ने मिलकर भावविशेष की अभिव्यक्ति के लिए विशेष प्रतीकों या संकेतों को स्वीकार करने का निर्णय किया। इसी से इसे निर्णय सिद्धान्त कहते हैं। परन्तु भाषा के बिना यह विचार-विनिमय सम्भव कैसे हुआ? अतः इस सिद्धान्त में यदि कुछ सचाई है, तो वह इतनी ही कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)

निर्योग—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य—अयोगात्मक।

निवाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

निवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 19,368 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

निहाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 756 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नूनिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 376 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नेथकनी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,354 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नेपाली—पूर्वी पहाड़ी भाषा का एक स्थानीय नाम। यह नेपाल में बोली जाती है। विशेष दे० पहाड़ी। इस भाषा या उपभाषा के, जिसे खसकुरा भी कहते हैं, बोलने

वालों की कुल जनसंख्या 4,21,688 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है, उत्तर भारत—53,445; पूर्व भारत—3,56,056; दक्षिण भारत—1,186, पश्चिम भारत—6,672; मध्य भारत—4,113; पश्चिमोत्तर भारत—121; अंडमान या नीकोबार—65।

नैकपोडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 268 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नैकाडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 921 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

नैसल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 313 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

न्गेन्ते—भारत की इस लुशाई बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 739 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

न्ह्—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह महाप्राण, घोष, वर्त्स्य अनुनासिक व्यंजन हैं। कादरी और सक्सेना आदि विद्वान् इसे संयुक्त व्यंजन नहीं मानते, बल्कि मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं। छंदःशास्त्र में भी इसका उच्चारण संयुक्ताक्षर के जैसा नहीं माना जाता और तदनुसार इसके पहले का वर्ण दीर्घ नहीं होता। इसका प्रयोग तद्भव शब्दों में ही होता है। उदा० जिन्होंने, कन्हैया।

प

प्—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह अल्पप्राण अघोष ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार ओष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ से बिलकुल सहायता नहीं ली जाती। बाबू श्यामसुन्दर दास के शब्दों में यदि कोई ओष्ठ्य वर्ण शब्द अथवा अक्षर के अन्त में आता है, तो उसमें केवल स्पर्श होता है, स्फोट नहीं होता।

उदा० पराग, अपना, विलाप।

पंचाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 453 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पंजाबी—डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में पंजाबी भाषा का भूमि भाग हिन्दी के ठीक पश्चिमोत्तर में है। उस पर पिशाच और दर्द भाषाओं का भी कुछ प्रभाव शेष है। वह लहँदा से ऐसी मिली हुई है कि दोनों को पृथक् करना कठिन है। पश्चिमी हिन्दी से उसका भेद स्पष्ट है। आजकल यह प्रायः गुरुमुखी लिपि में लिखी जाती है। पहले यह महाजनी (राजस्थान की) और शारदा (काश्मीर की) लिपियों से मिलती-जुलती लंडा लिपि में लिखी जाती थी। सिख-गुरु अंगद (1508-52 ई०) ने देवनागरी लिपि की सहायता से इस लिपि में सुधार किया था। मुसलमानों के सम्पर्क के कारण इस प्रदेश में उर्दू का भी खूब प्रचार रहा है। इसी कारण पंजाबी शब्द समूह पर भी उर्दू की छाप है। पंजाबी का शुद्ध रूप अमृतसर के निकट बोला जाता है। यह साहित्यिक भाषा नहीं रह सकी थी, क्योंकि इसके क्षेत्र में उर्दू का प्रभाव अधिक रहा था और गुरुओं ने अपनी वाणी पुरानी हिन्दी में लिखी थी भले ही उसकी लिपि गुरुमुखी हो। आज भी पंजाबी में साहित्य अधिक नहीं है। इस भाषा में बोलियों का भेद विशेष अधिक नहीं है। जम्मू की डोग्री बोली का नाम लिया जा सकता है, जिसकी पृथक् लिपि टक्करी या टाकरी है।

पंडो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 35 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पंड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पंगखुआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 183 है ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पंगेहा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पखतून—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पटरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 41 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पठरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे पठारी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 19 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पठाची—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पठान—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 44 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पठानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 110 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पठारकारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 95 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पठारवती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 18 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पतकारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 824 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पथवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 56 है। ये लोग भारत के उत्तरी भाग में रहते हैं।

पद—प्रत्यय अथवा विभक्तियुक्त संज्ञा शब्दों और प्रत्यययुक्त धातुओं को वाक्य में प्रयुक्त होने पर पद कहते हैं। पाणिनि के अनुसार सुबंत (पूर्वोक्त संज्ञाएँ) और तिङन्त (पूर्वोक्त क्रियाएँ) पद संज्ञक होती हैं[1]। डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में पद का लक्षण निम्न प्रकार से है—"पद उस ध्वनि या ध्वनि-समूह को कहते हैं जिनका वाक्य में भाषा की परम्परा के अनुसार सम्बद्धतत्व का, अर्थतत्व का अथवा उन दोनों के अर्थ का बोध कराने के लिए प्रयोग होता है। यदि ध्वनि समूह है तो एकत्र और कभी-कभी अनेकत्र भी उसके अंशों की स्थिति रहती है।"[2] पद का प्रत्येक भाषा में सम्बद्धतत्व और अर्थतत्व के सम्बन्ध की दृष्टि से विशिष्ट लक्षण करना पड़ेगा, परन्तु उपर्युक्त लक्षण अपेक्षतया अधिक सर्वव्यापी है। शब्द को वाक्य में प्रयुक्त करने योग्य बना लेने पर उसे पद की संज्ञा दी जाती है। अयोगात्मक भाषाओं में पद और शब्द में अन्तर नहीं होता। विशेष दे० रूप विचार, सम्बद्ध तत्व।

पदरेटो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

1. सुप्तिङन्तं पदम्।
2. सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ 78।

पदानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

पश्च स्वर—स्वरों के उच्चारण में जीभ के अगले (अग्र), बिचले (मध्य) तथा पिछले (पश्च) भागों के उपयोग से भेद हो जाता है। जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग ऊपर उठता है, उन्हें पश्चस्वर कहते हैं। इनके उच्चारण में मुख की स्थिति कुछ निम्न प्रकार की होती है; विशेष विवरण के लिए दे० मूलस्वर।

पश्चात्-श्रुति—एक ध्वनि के उच्चारण स्थान से दूसरी ध्वनि के उच्चारण स्थान तक जाने में जो परिवर्तन ध्वनि या श्रुति (दे० यथा०) होती है, उसके दो भेद होते हैं—(1) पूर्वश्रुति और (2) पर-श्रुति या पश्चात् श्रुति। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार पूर्व श्रुति उस परिवर्तन ध्वनि को कहते हैं, जो किसी स्वर या व्यंजन के पूर्व में आती है। और जो पर में (पीछेसे) आती है,उसे पर-श्रुति अथवा पश्चात्-श्रुति कहते हैं।

पश्चिमी लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार[1] पश्चिमी लिपि का प्रचार गुजरात, काठियावाड़, नासिक, खानदेश, सतारा, हैदराबाद के कुछ भागों और कोंकण आदि में था और वह वहाँ पर पाँचवीं से नवीं शताब्दी तक प्रचलित रही। पाँचवीं शताब्दी में यह राजपूताना, मध्य प्रदेश और मध्य भारत में भी प्रचलित थी। गुप्तों, गुर्जरों, वल्लभी नरेशों, चालुक्यों, त्रैकूटकों, राष्ट्रकूटों और कलचुरियों आदि के दानपत्रों और शिलालेखों में भी इसके दर्शन होते हैं। इस पर पड़ोस के कारण उत्तरी शैली की लिपियों का भी प्रभाव पड़ा है। इसकी दक्षिण की शैली एक तो उ, ऊ आदि में नीचे के अंश को बाईं ओर मोड़कर ऊपर तक ले जाने और दूसरे आड़ी लकीरों को सौन्दर्य की सिद्धि के लिए खमदार बनाने और बाद में उनमें किनारों पर गाँठें आदि तक लगा देने की प्रवृत्तियों के फलस्वरूप परवर्ती दक्षिणी लिपियाँ अन्त में मूल ब्राह्मी लिपि से बहुत भिन्न हो गई।

पश्चिमी हिन्दी—मध्यदेश की वर्तमान भाषा। मेरठ-बिजनौर में बोली जाने वाली इसकी एक बोली—खड़ी बोली—से ही वर्तमान साहित्यिक हिन्दी और उर्दू भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। इसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण बोली ब्रजभाषा मध्ययुग में देश की साहित्यिक भाषा के साथ ही सार्वजनिक भाषा या राष्ट्रभाषा का भी पद प्राप्त कर चुकी है। इन दो के अतिरिक्त अन्य बोलियाँ विशेष रूप से उल्लेख योग्य नहीं हैं।

पश्तो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 16,247 है। इनमें से 2,424 भारत के उत्तर, 1,682 पूर्व, 155 दक्षिण, 6,381 पश्चिम, 1,650 मध्य, 3,940 पश्चिमोत्तर भाग में और शेष 15 अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपि माला, पृष्ठ 43, 79-80।

परदेशी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 16,218 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

परधान—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 153 है। वे लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

परधाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

परधी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8,871 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

परभाषा—विदेशी भाषा के शब्दों के आधिक्य वाली शब्दावली। यह शब्द घृणा के लिए दिया गया है। इस प्रकार की शव्दावली के प्रचुर प्रयोग वाली भाषा को परभाषा (लिंगो) कहते हैं। (विशेष दे० विशिष्ट भाषा)।

परश्रुति—एक ध्वनि के उच्चारण स्थान से दूसरी ध्वनि के उच्चारण स्थान तक जाने में जो परिवर्तन ध्वनि या श्रुति (दे० यथा०) होती है, उसके दो भेद होते हैं: (1) पूर्व-श्रुति और (2) पर-श्रुति या पश्चात्-श्रुति। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार पूर्वश्रुति उस परिवर्तन ध्वनि को कहते हैं, जो किसी स्वर या व्यंजन के पूर्व में आती है। और जो पर में (पीछे से) आती है, उसे परश्रुति अथवा पश्चात्-श्रुति कहते हैं।

परवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 588 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पराजा—1954 में प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार इस आदिम जाति भाषा (या उपभाषा) को बोलने वालों की कुल संख्या 1,46,938 है, जो सारी-की-सारी पूर्व भारत में रहती है।

पर्बतिया—पूर्वी पहाड़ी भाषा का ही एक अन्य नाम। यह नेपाल में बोली जाती है। विशेष दे० पहाड़ी।

परबतिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे पर्वतीय या पर्वती भी कहते हैं बोलने वालों की संख्या 19 है। इनमें से 17 भारत के उत्तरी और 2 मध्य भाग में रहते हैं।

पवई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,847 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पहाड़ी (1)—हिमालय से पहाड़ी प्रदेश में शिमला से नेपाल तक बोली जाने वाली पहाड़ी भाषाओं को तीन भाग में बांटा गया है; पूर्वी पहाड़ी, माध्यमिक पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी। पूर्वी पहाड़ी विशेषतः नेपाल या काठमांडू की घाटी में बोली जाती है, इसे नेपाली, पर्वतीय, गोरखाली और खसकुरा भी कहते हैं। यह देवनागरी में ही लिखी जाती है। माध्यमिक पहाड़ी में कुमाउंनी (अलमोड़ा, नैनीताल) और गढ़वाली आती है। इन प्रदेशों की साहित्यिक भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी ही है।

पश्चिमी पहाड़ी की साहित्यहीन तीस से भी अधिक बोलियों का पता चला है, जिनमें जौनसारी (उत्तर प्रदेश का जौनसार बावर क्षेत्र), कोंथली (शिमला), कुलूइ (कुलू) और चंबाली (चम्बा) मुख्य है। चंबाली की अपनी लिपि भी है। शेष टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं।

पहाड़ी (2)—भारत की इस बोली या उपभाषा समूह के बोलने वालों की संख्या 21,920 है। इनमें से 21,636 व्यक्ति भारत के उत्तरी भाग में, 12 दक्षिणी भाग में और शेष 272 मध्य भाग में रहते हैं। साथ ही पूर्वी पहाड़ी नामक बोली के बोलने वालों की संख्या 3,880 बतायी गई है, जो पश्चिमोत्तर भारत में रहते हैं। पश्चिमी पहाड़ी बोलने वाला एक व्यक्ति मध्य भाग में रहता है। अनिर्दिष्ट पहाड़ी बोलने वाले 13 व्यक्ति पूर्वी भारत में रहते हैं।

पाओयाता—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8,305 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पापुआ परिवार—प्रशान्त महासागरीय भाषाखण्ड का यह भाषा परिवार न्यूगिनी और उसके आस-पास के छोटे-छोटे द्वीपों में फैला हुआ है। न्यूगिनी की प्रमुख भाषा मफोर है। वही इस परिवार की एक प्रसिद्ध भाषा है। शेष भाषाएँ साहित्यिक दृष्टि से विशेष उन्नत नहीं हैं, न उनका विशेष अध्ययन ही किया गया है। मफोर में पद-रचना के लिए आदि और अन्त में सम्बन्ध-तत्व जोड़े जाते हैं। बहुवचन के लिए 'सी' प्रत्यय लगता है।

पारजी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे धुरवा भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 19,847 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पारन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

पारसी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,143 है। इनमें से 1,608 भारत के मध्य भाग में 223 उत्तर, 310 पूर्वी भाग में और 2 अंडमान नीकोबार में रहते हैं।

पारिवारिक-वर्गीकरण—अर्थतत्व और भाषा सामग्री और उसके ऐतिहासिक विकास और सान्निध्य आदि को ध्यान में रखकर किया जाने वाला भाषाओं का एक प्रकार का वर्गीकरण। इसे ऐतिहासिक या इतिहासमूलक या परिवार-मूलक वर्गीकरण भी कहते हैं। आकृति-मूलक समानता (दे० आकृतिमूलक वर्गीकरण) के अतिरिक्त जब अर्थतत्व धातु-प्रत्यय आदि की समानता रहती है, तो भाषाएँ एक ही परिवार की मानी जाती हैं। इस वर्गीकरण के लिए शब्द व्युत्पत्ति, ध्वनि और तुलनात्मक व्याकरण के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन अपेक्षित होता है। इन तीनों में भी व्याकरण की महत्ता सर्वाधिक है, क्योंकि शेष दो तो अन्य भाषाओं में उधार भी आ सकती हैं पर व्याकरण सहज नहीं बदलता। कुछ विद्वान् व्युत्पत्ति की अनिश्चितता की दृष्टि से इस वर्गीकरण को भ्रामक भी मानते हैं। पर कुछ सीमा तक यह

पर्याप्त शुद्ध और महत्त्वपूर्ण है। इस वर्गीकरण ने भाषा और साहित्य को ही नहीं, इतिहास और प्रागैतिहासिक खोज को भी बहुत सहायता पहुँचाई है।

अब तक की खोज के आधार पर विश्व की भाषाएँ इन मुख्य कुलों या परिवारों में विभक्त की गई है : (1) भारत यूरोपीय या भारोपीय कुल (2) सेमेटिक कुल, (3) हेमेटिक कुल, (4) तिब्बती-चीनी कुल, (5) यूरल-अल्टाइल कुल, (6) द्रविड़ कुल, (7) मैले पालीनेशियन कुल, (8) बंटु कुल, (9) मध्य अफ्रीका कुल, (10) अमरीकी भाषा कुल, (11) आस्ट्रेलिया तथा प्रशान्त महासागर कुल और (12) शेष। परिवार दे० यथा०।

ये 12 कुल मोटे रूप से किया गया वर्गीकरण मात्र है। फ्रेडरिक मूलक के मत से विश्व में 100 कुल हैं। कुछ विद्वान् अमरीका में ही 100 कुल बताते हैं। अफ्रीका में भी यही स्थिति है। इस प्रकार इनकी संख्या दो ढाई सौ तक पहुँच सकती है। पर सच तो यह है कि सामग्री के अभाव में अभी तक संसार की सारी भाषाओं का यथोचित अध्ययन नहीं हो सका है। इसलिए इस दिशा में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

कुछ नये विद्वानों ने विश्व के भाषा परिवारों के अध्ययन के लिए सुविधा की दृष्टि से एक नई सरणि अपनायी है। पहले संसार को चार भौगोलिक खण्डों में बाँट सकते हैं—अफ्रीका-खण्ड, यूरेशिया-खण्ड,, प्रशान्त महासागरीय-खण्ड और अमरीका-खण्ड (दे० यथा०)। प्रत्येक खण्ड में विभिन्न परिवार आते हैं। चूँकि एक खण्ड के परिवारों की भाषाएँ एक-दूसरे के संपर्क में आकर उन्हें परस्पर थोड़ा-बहुत प्रभावित भी करती रही है, अतः इस आधार पर चलना अनुचित नहीं है। इस ग्रन्थ में भी पहले यथास्थान खण्डों में उनके परिवारों के नाम गिनाए गए हैं, फिर परिवारों की यथास्थान चर्चा की गई है।

पारेंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 824 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पार्श्विक—हिन्दी की ल् और ल्ह् ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं। इनके उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को भली-भाँति छूती है, पर दोनों ओर रास्ता खुला रहता है अतः दाएँ-बाएँ दोनों ओर से श्वास वायु निकलता रहता है। इनका उच्चारण र् की अपेक्षा सरल होने से बच्चे र् के स्थान पर इसे बोलने लगते हैं। इन ध्वनियों पर पृथक् टिप्पणी यथास्थान देखिए।

पालामुहा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5,593 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17 है। इनमें से 9 भारत के मध्य और 8 पश्चिमी भाग में रहते हैं।

पाली ध्वनिसमूह—पाली तक आते-आते संस्कृत की ध्वनियों में थोड़ा-बहुत विकास हो गया। उसमें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ये दस स्वर पाए जाते हैं और

ऋ, ॠ, ऌ, ऐ, औ, का सर्वथा अभाव पाया जाता है। ऋ ध्वनि अ, इ, या उ ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती है। ऐ, औ के स्थान में ए, ओ हो जाते हैं। दो नए स्वर ए, ओ पहली बार दिखाई देते हैं। ए, ओ के ह्रस्व संस्कृत में नहीं होते थे।[1] अब ये पाली से प्राकृत और अपभ्रंश में होकर हिन्दी में भी आ गए हैं। व्यंजनों में श, ष के स्थान पर भी स ही प्रयुक्त होता है, शिलालेखों में अवश्य श, ष भी मिलते हैं, पर शौरसेनी प्राकृत में तो निश्चित रूप से केवल स ही रह गया है। विसर्ग के स्थान पर या तो पूर्ववर्ती अ से मिलकर ओ हो जाता है, या पदान्त में उसका लोप हो जाता है। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के स्थान पर व्यंजन हो जाता है जैसे दुक्ख, पुनप्पुनम। तालव्य और वर्त्स्य स्पर्शों का उच्चारण थोड़ा आगे बढ़ आया है। पाली काल में ही वर्त्स्य वर्ण अन्तर्दन्त्य हो गए थे। और तालव्य स्पर्श तालु वर्त्स्य घर्ष स्पर्श[2]।

शेष ध्वनियाँ पाली में संस्कृत के ही समान रहीं। (दे० संस्कृत ध्वनि समूह, वैदिक ध्वनि समूह)।

पालीनेशिया परिवार—प्रशान्त महासागरीय भाषाखण्ड का यह भाषा परिवार अन्य परिवारों की अपेक्षा अधिक विकसित है। ये भाषाएँ मलेनेशिया के दक्षिण-पूर्व में बोली जाती हैं। यह परिवार अंग्रेजी, हिन्दी आदि भारोपीय भाषाओं की तरह ही पूर्णतः वियोगात्मक हो गया है। इन भाषाओं में तीन वचन होते हैं। वीप्सा का भी प्रयोग होता है, पर वचन के लिए नहीं बल्कि अर्थ विशेष को प्रकट करने के लिए। इंडोनेशिया परिवार के कुछ शब्द इन भाषाओं में आये हैं। पर उनमें अन्तिम व्यंजन उड़ जाता है। इस परिवार में मओरी (न्यूजीलैण्ड में), टोंगी (टोंगी द्वीप में), समोई (समोआ में), हवाई जिसका अन्य नाम सैंद्विशी भी है (हवाई द्वीप में), ताहिती (ताहिती में) और मारक्वीसाज (मारक्वीसाज में) भाषाएँ आती हैं।

पित्ती—भारत की इस भोटिया बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

पियारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पुंजा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पुरानी हिन्दी ध्वनि समूह—पुरानी हिन्दी से कुछ विद्वान् परवर्ती अपभ्रंश का अर्थ लगाते हैं, पर अधिकांश लोग अपभ्रंश और ब्रज-अवधी के बीच के काल की भाषा को पुरानी हिन्दी नाम देते हैं। इसमें सभी अपभ्रंश ध्वनियाँ, अर्थात् 10 स्वर और 37 व्यंजन (दे० अपभ्रंश ध्वनि समूह) मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पुरानी हिन्दी में ऐ (अ ए) और औ (अ ओ) दो नए स्वरों का विकास भी देखा जाता है। विदेशी

1. तेषां ह्रस्वाभावात्—सिद्धान्तकौमुदी।

2. भाषा रहस्य, पृष्ठ 288।

भाषाओं से आए हुए व्यंजन तो पुरानी हिन्दी में अपनी ध्वनियों के अनुकूल तद्भव हो गए दिखाई पड़ते हैं।

पुरुम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 43 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पूर्वश्रुति—एक ध्वनि के उच्चारण स्थान से दूसरी ध्वनि के उच्चारण स्थान तक जाने में जो परिवर्तन ध्वनि या श्रुति (दे० यथा०) होती है, उसके दो भेद होते हैं—(1) पूर्वश्रुति और (2) परश्रुति या पश्चात् श्रुति। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार पूर्वश्रुति उस परिवर्तन ध्वनि को कहते हैं, जो किसी स्वर या व्यंजन के पूर्व में आती और जो पर में (पीछे से) आती है, उसे परश्रुति अथवा पश्चात् श्रुति कहते हैं।

पूर्बी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1764 है। इनमें से 900 भारत के मध्य और शेष उत्तरी भाग में रहते हैं।

पूर्वी हिन्दी—कुछ विद्वानों ने पूर्वी हिन्दी को मध्य देश से बाहर के पूर्वी समुदाय में रखा है। इसका क्षेत्र पश्चिमी हिन्दी से पूर्व की ओर पड़ता है। व्याकरण के बहुत से रूप बिहारी से मिलने के कारण और पूर्वी समुदाय के विशेष लक्षण दिखाई पड़ने के कारण शायद डा० सुनीतिकुमार चटर्जी इसे मुख्य समुदाय में रखते हैं। कुछ बातों में यह पश्चिमी हिन्दी से भी मिलती-जुलती है। अर्द्धमागधी प्राकृत के समान, जिससे यह निकली है, यह भी वस्तुतः मध्य देश और पूर्व देश के बीच में पड़ती है। इसकी तीन मुख्य बोलियाँ हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। मध्य युग में ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी ने भी विशेष गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया था और तुलसी, जायसी आदि ने अपनी रचनाओं से इसे अलंकृत किया था। अवधी और बघेली में काफी साहित्य है, छत्तीसगड़ी में कम। पूर्वी हिन्दी प्रायः देवनागरी में लिखी जाती है। लिखने में कैथी का भी कभी-कभी प्रयोग किया जाता है, पर छपाई में देवनागरी ही का प्रयोग होता है।

पूसावेरला—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

पूह पूह वाद—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ भाषावैज्ञानिकों का विचार है कि उसकी उत्पत्ति हर्ष, शोक आदि मनोभावों के प्रकाशन में अनायास निकलने वाले वाह, आह आदि विस्मयादि-बोधकों से होती है। मैक्समूलर ने उपहास में इसे पूह-पूह वाद या पूह-पूह सिद्धान्त नाम दिया है। इसे मनोभावाभिव्यंजकतावाद भी कहते हैं। भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या अत्यल्प होने के कारण यह मत परवर्ती विद्वानों को शिरोधार्य न हुआ। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)

पेंगो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,080 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पेटवा—स्थानीय और घरू बोली। यह तनिक भी साहित्यिक नहीं होती। केवल

बोलने वालों के मुख में ही यह जीवित रहती है। साहित्य में इसका प्रयोग नहीं होता। साथ ही यह 'बोली' की भाँति विशेष क्षेत्र में व्यापक रूप से नहीं बोली जाती, बल्कि एकाध परिवार की नपी-तुली बोली होती है। इसे हम बोली का एक अंग मान सकते हैं।

पैते—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14,045 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पोइ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8,548 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

पोली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

पोवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे पवारी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 35,979 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

प्नार—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे सिनलेंग भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 38,945 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

प्रकृति प्रत्यय प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अश्लिष्ट योगात्मक।

प्रकृति प्रधान—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—श्लिष्ट योगात्मक।

प्रतापगढ़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

प्रतिध्वन्यात्मक शब्द—इस प्रकार के शब्द बोल-चाल में ही प्रयुक्त होते हैं, साहित्यिक भाषा से नहीं। 'रोटी-ओटी खा लो' में ओटी इस प्रकार का शब्द है और उसका अर्थ 'इत्यादि' है। इस प्रकार बहुत से जोड़े बोल-चाल में नित्यप्रति प्रयुक्त होते हैं। इन्हें प्रतिध्वन्यात्मक शब्द (ईको वर्ड्स) कहते हैं।

प्रतीकवाद—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि सृष्टि के आदि में कुछ मनुष्यों के समाज ने मिलकर भावविशेष की अभिव्यक्ति के लिए विशेष प्रतीक निश्चित कर दिए। यही भाषा शास्त्र का प्रतीकवाद है, जो साहित्य शास्त्र के प्रतीकवाद से सर्वथा भिन्न है। परन्तु भाषा के बिना यह विचार विनिमय कैसे हुआ? अतः इस सिद्धान्त में कुछ सचाई है तो वह इतनी ही कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)

प्रत्यय-प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अश्लिष्ट योगात्मक।

प्रधान भाषा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 464 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

प्रधान स्वर—डैनियल जोन्स ने अपनी इंगलिश प्रोनाउंसिंग डिक्शनरी में आठ प्रधान स्वरों (कार्डिनल वौवेल्स) की प्रस्थापना की है। इनको डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि विद्वान् मूल स्वर कहते हैं, यद्यपि वैकल्पिक शब्द प्रधान स्वर भी प्रचलित है। विशेष विवरण के लिए दे० मूलस्वर।

प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण में की जाने वाली चेष्टा। इसके दो भेद हैं आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर के पुनः चार भेद हैं—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, संवृत और विवृत। बाह्य प्रयत्नों के पुनः ग्यारह भेद हैं—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

प्रशान्त महासागरीय खण्ड—मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में प्रशान्त महासागर और हिन्द महासागर के सभी द्वीपों में और अफ्रीका के दक्षिण-पूर्व मैडागास्कर द्वीप से लेकर चाइल के पश्चिम में स्थित ईस्टर द्वीप तक फैली हुई भाषाएँ सम्मिलित हैं। इसमें अनेक भाषाएँ और बोलियाँ आती हैं। ये सभी अश्लिष्ट योगात्मक हैं और क्रमशः वियोगात्मक होती जा रही हैं। धातुएँ प्रायः दो अक्षरों की होती हैं। इनमें आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर शब्द जोड़कर पद बनाये जाते हैं। इनमें स्वराघात बलात्मक होता है।

इस खंड की भाषाओं को पाँच परिवारों में बाँटा जाता है। वे हैं: इंडोनेशिया या मलायन परिवार, मलेनेशिया परिवार, पालीनेशिया परिवार, पापुआ परिवार और आस्ट्रेलिया परिवार (दे० यथा०)। कुछ विद्वान् इन सभी परिवारों को मलय-पालीनेशिया परिवार नाम देते हैं और कुछ आस्ट्रोनेशिया परिवार। अन्य विद्वान् प्रथम तीन परिवारों को ही मलय-पालीनेशिया परिवार में समेटते हैं।

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा—डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में जिस भाषा में योग ऐसा हो कि सम्बन्ध तत्व को अर्थ तत्व से अलग कर पाना असम्भव-सा हो जाए, वह प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा है। संस्कृत के ऋतु शब्द से बने आर्तव शब्द के बारे में यही बात कही जा सकती है। प्राचीन भारोपीय भाषाओं के शब्द समूह में कुछ शब्द इसी कोटि के हैं। डा० सक्सेना के अनुसार प्रश्लिष्ट भाषाओं में न केवल एक अर्थ तत्व का और एक या अनेक सम्बन्ध तत्वों का योग होता है, बल्कि एक से अधिक अर्थतत्वों का समास की प्रक्रिया से योग हो सकता है, जैसे नर, नरेश, नरेश-तनया, नरेशतनयात्मज आदि।

प्रश्लिष्ट भाषाओं के भी दो भेद किए जाते हैं—पूर्णतः प्रश्लिष्ट और अंशतः प्रश्लिष्ट।

1. पूर्ण प्रश्लिष्ट—इनमें सम्बन्ध तत्व और अर्थ तत्व का योग इतना पूर्ण रूप में प्रश्लिष्ट रहता है कि समूचा वाक्य ही एक शब्द बन जाता है। अमरीका के मूल निवासियों की चेरोकी भाषा का एक उदाहरण भाषा रहस्यकार ने दिया है—

नातेन = लाओ, अमोखोल = नाव, निन = हम, नाघोलिनिन = हमारे पास नाव लाओ।

डा० बाबूराम सक्सेना ने ग्रीन लैंडी का निम्न उदाहरण दिया है—

अउलिसरी = मछली मारना, पेत्तौर = किसी काम में लगना, और पेनु सुअर्पोक = वह जल्दी करता है। इनसे निम्न वाक्य शब्द बना—

अउलिसरिअर्त्तोरसुअर्पोक्। (वह मछली मारने के लिए जाने की जल्दी करता है।)

2. आंशिक प्रश्लिष्ट—भोलानाथ तिवारी के अनुसार इन भाषाओं में सर्वनाम तथा क्रियाओं का ऐसा संमिश्रण हो जाता है कि क्रिया अस्तित्व हीन होकर सर्वनाम की पूरक हो जाती है। पिरेनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली भाषा वास्क आंशिक प्रश्लिष्ट ही है। अफ्रीका की बण्टू भी इसी कोटि में आती है। भाषा रहस्यकार के अनुसार—

दर्कक़िआत् = मैं उसे उसके पास ले जाता हूँ।

नकर्सु = तू मुझे ले जाता है।

संस्कृत के अस्मि (मैं हूँ), गच्छामि (मैं जाता हूँ), जिगमिषामि (मैं जाना चाहता हूँ) और गुजराती के मकुँजे (= मे कह्व जे = मैंने यह कहा कि) तथा बंगला के भी कुछ ऐसे संयोग इस कोटि में आ जाते हैं। परन्तु इनमें सर्वनाम और क्रियाओं का ही योग है जब कि पूर्ण प्रश्लिष्ट में संज्ञा, विशेषण, अव्यय, सर्वनाम और क्रिया सभी का योग होता है।

प्राकृत ध्वनि समूह—प्राकृत भाषाओं के ध्वनि समूह में और पाली ध्वनि समूह (दे० यथा०) में विशेष भेद नहीं है। उसमें वही स्वर और व्यंजन दिखाई देते हैं। मागधी को छोड़कर अन्य प्राकृतों में ष् और श् का व्यवहार प्रचलित नहीं है। मागधी में स् के स्थान पर भी श् ही मिलता है। ष और विसर्ग का प्रयोग प्राकृतों में नहीं हो सका।[1] शौरसेनी प्राकृत तो पाली से विशेष रूप से मिलती है। उसमें पाली के ड़ ढ़ भी मिलते हैं। पर न् य् शौरसेनी में नहीं मिलते। उनके स्थान पर ण् ज् हो जाते हैं।[2] (विशेष दे० पाली ध्वनिसमूह, संस्कृत ध्वनि समूह, वैदिक ध्वनि समूह)

प्राण-ध्वनि—कुछ स्वरों से आरम्भ होने वाले शब्दों में सम्बोधन के प्लुतत्व अथवा आगे के संयुक्त वर्ण के कारण उच्चारण में उस स्वर पर कुछ जोर पड़ता है। ऐसे शब्दों के आरम्भ में कुछ प्राण ध्वनि (ह्) पूर्वश्रुति सुन पड़ती है, जो क्रमश: प्रबल होती जाती है। सम्बोधन के ए, ओ, अरे, इसी कारण हे, हो, हरे हो जाते हैं, और संस्कृत के अस्थि और ओष्ठ हिन्दी में आकर हड्डी और होंठ बन जाते हैं। (विशेष दे० श्रुति, अल्पप्राण और महाप्राण)

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ 81।
2. भाषा रहस्य, पृष्ठ 288।

प्रागैतिहासिक खोज—भाषा के सहारे इतिहास के उस अंध युग पर भी प्रकाश डाला जाता है, जिसके सम्बन्ध में अन्य कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। अंग्रेजी में इसे लिंग्विस्टिक पैलिएंटोलौजी या भाषात्मक प्रागैतिहासिक खोज कहते हैं। भाषा विज्ञान की इस शाखा के उन्नायक प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् मैक्समूलर हैं। जर्मन भाषा में इसे उर्ग शिश्ते कहते हैं। मैक्समूलर ने न केवल मूल भाषा के शब्दों (धातुओं) से विकसित होने वाले भारोपीय शब्दों की विशाल शृंखला पर ही प्रकाश डाला है, बल्कि तुलनात्मक पुराण विज्ञान के सहारे जुपिटर आदि ग्रीक देवताओं को वैदिक सविता आदि देवताओं के समकक्ष ठहराया है। मैक्समूलर का कहना है[1] कि जिस प्रकार वनस्पति शास्त्र में पुराने वृक्षों की कोई अलग श्रेणी नहीं होती, उसी प्रकार भाषा-विज्ञान में प्राचीन और नवीन भाषाओं का अन्तर लुप्त हो जाता है।

प्राचीन शब्दों के इस चुनाव के बाद उनका वर्गीकरण करके काल विशेष की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि स्थितियों पर प्रकाश डाला जाता है। पशुओं पर्वतों, नदियों, पेड़-पौदों और ऋतुओं आदि से सम्बन्धित शब्दों के सहारे यह निश्चित किया जाता है कि उस समय मनुष्य का विकास किस सीमा तक हुआ था और सांस्कृतिक दृष्टि से वह किस स्थिति में था। बिशप काल्डबेल ने अपने द्रविड़ भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण में और प्रो० पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगार ने अपने आर्यपूर्व तामिल संस्कृति में भाषात्मक प्रागैतिहासिक खोज के उपायों का पूरा-पूरा सहारा लिया है। इन खोजों से यह सिद्ध हुआ है कि प्राचीन तामिल साहित्य विशेष अधिक प्राचीन नहीं है, जैसा कि बताया जाता है[2]। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में उपलब्ध मुद्राओं पर अंकित पशुओं की आकृतियों और चित्रलिपि से तात्कालिक, सामाजिक-धार्मिक आदि स्थिति पर मार्शल, मैके और राखालदास बेनर्जी आदि द्वारा विस्तृत प्रकाश डाला गया है। डा० चटर्जी ने भी नारिकेल, हरिद्रा, ताम्बूल आदि शब्दों को आग्नेय-एशियायी मानते हुए आर्य जातियों पर आग्नेय जातियों के प्रभाव का विवरण प्रस्तुत किया है। ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा का अध्ययन करके प्रो० एंटोइन मैले ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वह आर्य प्रदेश की पश्चिमी बोली थी। कौशीतकी ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है कि भाषा का अध्ययन करने के लिए उत्तर को जाते हैं।[3] इस प्रकार भाषा के सहारे प्राचीन काल की भौगोलिक तथा सामाजिक आदि स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है।

परन्तु इस भाषात्मक प्रागैतिहासिक खोज मे भाषा विज्ञान को पुरातत्व, मानव-विज्ञान, भूगर्भविद्या, भूगोल और वनस्पति शास्त्र आदि अन्य विज्ञानों की ही सहायता

---

1. लैक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 269।

2. डा० चटर्जी : इंडो आर्यन एण्ड हिन्द', पृष्ठ 40।

3. उदञ्च एवं उ यान्ति वाचं शिक्षितुम्—कौशीतकी ब्राह्मण 6/6- डा० चटर्जी द्वारा अपने 'इंडो आर्यन एंड हिन्दी' के पृष्ठ 56 पर उद्धृत।

लेनी पड़ती है। इन सभी विज्ञानों के सहारे ही भाषा-विज्ञान की यह शाखा फलती-फूलती है।

इस प्रकार की खोज विशेषतः भारोपीय परिवार के ही सम्बन्ध में हुई है। मैक्समूलर के बाद अनेकों यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने इस दिशा में कार्य किया है। सर्वाधिक विवाद आर्यों के उद्गम स्थान को लेकर चला है। इस सारे विवाद-ग्रस्त प्रश्नों के समाधानों के लिए जो प्रयत्न किये गए हैं, वे सर्वांशतः भाषात्मक प्रागैतिहासिक खोज पर ही आधारित नहीं हैं, परन्तु यहाँ भी भाषा का साक्ष्य उपलब्ध हो जाता है, वह अपेक्षतया अधिक मान्य माना जाता है।

भोलानाथ तिवारी के शब्दों में भाषात्मक प्राचीन खोज की प्रक्रिया में कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखना होता है। किसी परिवार की भाषा के मूल रूप पर विचार करते समय शाखा प्रशाखाओं के सभी सम्बद्ध शब्दों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। दूर की शाखाओं में मिलने वाले शब्दों को समता के आधार पर उन्हें एक ही उद्गम का माना जा सकता है। निकट की शाखाओं में ऐसी समता का आधार किसी और सूत्र से उस शब्द का उधार आना और पड़ोस की शाखा को उधार दे देना हो सकता है। कुछ ध्वनिपरिवर्तन या कुछ अर्थ परिवर्तन होने पर भी दो भाषाओं में मिलने वाले एक शब्द को छोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि यह अन्तर मूलतः एक शब्द होने पर भी ध्वनि-परिवर्तन के कारण हो सकता है। किसी शब्द के एकाध शाखाओं में न होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह मूल भाषा में न था। निकट के दो शब्द मिलने पर तीसरे शब्द की सम्भावना का अनुमान कल्पना के बल पर किया जा सकता है। इस प्रकार इस खोज की प्रक्रिया में बड़ी सावधानी अपेक्षित होती है और यही बात निष्कर्ष निकालने के विषय में भी कही जा सकती है। एक शब्द के मिल जाने पर ही अन्य शब्द बिना मिले उसके विभिन्न प्रयोगों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। जैसे दूध के लिए शब्द मिलने और घी, मक्खन, दही आदि के लिए शब्द न मिलने पर दूध के इस प्रकार के प्रयोग की सम्भावना नहीं की जा सकती। केवल कुछ शब्दों के प्रयोग के आधार पर ही विस्तृत कल्पना नहीं की जा सकती। उदाहरणार्थ प्राचीन वैदिक भाषा में सिन्धु शब्द केवल नदी मात्र के लिए प्रयुक्त होता था—सागर के लिए नहीं। इसलिए इस भाषात्मक खोज में प्राचीन भूगोल, भूगर्भ, विद्या, पुरातत्व आदि विज्ञानों की पूरी-पूरी सहायता ली जानी चाहिए।

प्लुत—तीन मात्राओं के उच्चारण जितना समय लेने वाले स्वर को लुप्त कहते हैं। सम्बोधन में पुकारते समय हे देवदत्त-3 में 'त्त' के बाद वाले अ पर जोर देते हुए तीन मात्रा जितना समय देना पड़ता है। इसी स्वर को प्लुत कहते हैं। दे० पाणिनि-सूत्र—"ऊकालो ऽज्स्रस्वदीर्घप्लुतः"।

फ

फ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह महाप्राण अघोष ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार फ् का उच्चारण स्थान प् की ही भाँति है। केवल यह महाप्राण है, जबकि प् अल्पप्राण।

उदा० फल, सफलता, कफ।

फ़्—यह दंत्योष्ठ्य, संघर्षी अघोष व्यंजन है। यह एक विदेशी ध्वनि है और केवल अरबी,फ़ारसी के तत्सम शब्दों में ही प्रयुक्त होती है। हिंदी की बोलियों में इसके स्थान पर फ् प्रयुक्त होता रहा है और अब साहित्यिक हिंदी में भी स्पर्श फ ही चलता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है कि ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से फ़् को स्पर्श फ् का रूपांतर मानना उचित नहीं है। इसका उच्चारण नीचे के होंठ को ऊपर की दाँतों की पंक्ति से लगाकर किया जाता है, पर होंठ और दाँत दोनों के बीच में से हवा रगड़ के साथ निकलती रहती है।

उदा० फ़ारसी, कफ़न, साफ़।

फलोरी—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना-पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

फूतांग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 11 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

फेफड़ा—ध्वनियों के उच्चारण में सहायक शरीर का एक अंग। वायु जब फेफड़ों से निकलकर ध्वनियंत्र में जाती है। तभी ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

फोम—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,012 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

ब

ब्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार, अल्पप्राण, घोष, ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में इसका उच्चारण भी दोनों होंठों को छूआकर होता है।

उदा०—बुनाई, साबुन, धोबी।

बंगला—बंगाली या बंगला बंगाल (पश्चिमी और पूर्वी) की भाषा है। इसका साहित्य अत्यन्त उत्तम अवस्था में है। शहरों और देहात की बंगाली और उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी बंगाली के बीच काफी अन्तर है। हुगली के आस-पास की भाषा ही साहित्यिक भाषा बन गई है। बंगला की लिपि देवनागरी का ही एक रूपान्तर है।

बंगला लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा[1] के अनुसार बंगला लिपि मगध की ओर की नागरी लिपि से निकली है और बिहार, बंगाल, मिथिला, नेपाल, आसाम तथा उड़ीसा से मिलने वाले अनेकों शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों और हस्तलिखित पुस्तकों में पाई जाती है। दशवीं शताब्दी तक तो बंगाल में नागरी लिपि ही प्रचलित रही और राना नारायणपाल के समय ए और ख जैसे एक-दो अक्षर ही बंगला की ओर झुकते दिखाई देते हैं। पालवंशी राजाओं के समय तक कुछ अधिक परिवर्तन हो गया था। क्रमश: नागरी लिपि की लेखन शैली में परिवर्तन होते गए और उनके फलस्वरूप वर्तमान बंगला की उत्पत्ति हुई।

बंटू परिवार—विश्व की भाषाओं के अफ्रीका खण्ड का एक मुख्य परिवार। इसे काफिर परिवार भी कहते हैं। यह परिवार मध्य और दक्षिणी अफ्रीका के विशाल भाग में फैला है। संयुक्त व्यंजनों का कम प्रयोग और सभी शब्दों के स्वरांत होने के साथ ही इस परिवार की भाषाओं के उच्चारण का ढंग भी कुछ संगीतात्मक होता है, इसी से ये भाषाएँ सुनने में बड़ी मधुर होती हैं। इन भाषाओं में साहित्य कम है।

इस परिवार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। इनमें लिंग नहीं के बराबर होता है। इन भाषाओं में स्वराघात का विशेष महत्त्व है और स्वर में थोड़ा-सा परिवर्तन होने से अर्थ में भी आकाश-पाताल का अन्तर हो जाता है, जैसे 'हो-फिनेल्ला' का अर्थ बांधना और हो फिनेल्ला का अर्थ खोलना हो जाता है। संयुक्त व्यंजनों का

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपि माला, पृष्ठ 377।

प्रयोग कम होने से विदेशी शब्दों को भी सरल कर लिया जाता है, जैसे क्राइस्ट वहाँ 'किरसित' बना लिये गए हैं। अनुप्रासमयी शैली भी इन भाषाओं की एक विशेषता है, वाक्य के एक शब्द में उपसर्ग लगाकर तदनुसार सभी शब्दों में परिवर्तन कर लिया जाता है। इस परिवार में पदों की रचना उपसर्ग जोड़कर ही की जाती है। इसकी भाषाएँ अश्लिष्ट पूर्वयोगात्मक हैं।

बंटू परिवार की लगभग 150 भाषाओं में से कुछ प्रमुख का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है :

(1) पूर्वी वर्ग (काफिर, जुलू, विकांबा, किसुअहिली आदि);
(2) पश्चिमी वर्ग (इसुबु, कांगों, दुअल्ला, बून्दा, होरो आदि);
(3) मध्य वर्ग (तेकोजा, सेचुना, सेरोलांग, सेसुतो आदि)।

बघेली—बघेलखण्ड या अवधी बोली के दक्षिण वाले क्षेत्र में बोली जाने वाली हिन्दी की एक क्षेत्रीय बोली। इसका केन्द्र विन्ध्य प्रदेश है, पर डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, मांडला और बालाघाट जिलों तक बोली जाती है। बघेली क्षेत्र के कविगण अवधी से विशेष प्रभावित रहे थे और प्राय: उसी में साहित्यिक रचना करते थे। बघेली में इसी कारण कुछ भी साहित्य नहीं लिखा गया।

बनकाल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या केवल 2 है। ये व्यक्ति पूर्वी भारत में रहते हैं।

बनजारी—आदिम जाति की इस भाषा (या उपभाषा) के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 3,32,317 है। यह निम्न क्षेत्रों में, निम्न रूप में बँटी हुई है—उत्तर भारत—73, पूर्व भारत—592, दक्षिण भारत—67,453, मध्य भारत—1,87,689, पश्चिमोत्तर—76,510। इसे लभानी भी कहते हैं।

बनसरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या केवल 9 है। ये व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बनिआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 3 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बनिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 46 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बरगुंडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या केवल 1,436 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बरता—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 6 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बर्दोन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,157 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बराज—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या केवल 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बराबोडो—पूर्व भारत में बोली जाने वाली एक आदिम जाति भाषा या उपभाषा। 1954 के जनगणना पत्र के अनुसार इसके बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,66,447 है।

बरारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 62 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में (सम्भवतः बरार में) रहते हैं।

बरोअची—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह व्यक्ति अंडमान-नीकोबार में रहता है।

बर्बर-प्रयोग—ऐसे शब्दों आदि का प्रयोग, जो वर्तमान भाषा में न चलते हों और भाषा की विशुद्धता के नियम को भंग करते हों। प्रयोग से उठे हुए और विदेशी भाषाओं से लिये गए शब्द अथवा ऐसे शब्द भी जो भाषा के शब्द निर्माण की साधारण प्रथा का पालन किए बिना ही बन गए हों, बर्बर प्रयोगों के अन्तर्गत आ जाते हैं। (विशेष दे० विशिष्ट भाषा)।

बल—बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार शब्दों के उच्चारण में अक्षरों पर जो जोर (धक्का) लगता है, उसे बल या स्वराघात कहते हैं। यह बल अथवा झटका उन ध्वनि-लहरों के छोटी-बड़ी होने पर निर्भर होता है। बल का सम्बन्ध स्वर-कम्पन के लघु-दीर्घ होने से होता है। इसके उच्च, मध्य और निम्न होने से ध्वनि के भी समबल, सबल और निर्बल तीन भेद होते हैं। चेतना शब्द में चे समबल है, त निर्बल और ना सबल। (विशेष दे० स्वराघात)

बलही—1954 में प्रकाशित भारतीय जनगणना पत्र के अनुसार भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 16 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बलात्मक स्वराघात—फेफड़ों से तेज़ी से हवा फेंकने पर शब्दोच्चारण में कुछ अक्षरों पर विशेष बल पड़ता है, इसे बलात्मक स्वराघात कहते हैं। अधिकांश आधुनिक भाषाओं में संगीतात्मक (स्वरतन्त्रियों पर निर्भर) स्वराघात के स्थान पर बलात्मक (फेफड़ों पर निर्भर) स्वराघात की प्रधानता हो गई है। विशेष दे० स्वराघात।

बसोद—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 19 है। ये व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बस्तरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या 1,240 है। ये व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बहुसंमिश्रात्मक—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते है। विशेष दे० वाक्य-विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

बहुसंश्लेषणात्मक—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

बहुसंश्लेषात्मक—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में में एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

बहुसंहित—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

बांगरू—पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली का एक रूप। इसे जाटू (जटकी) और हरियानी भी कहते हैं। यह दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार में और पैप्सू के निकटवर्ती गाँवों में बोली जाती है।

बांसवाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 4 है। ये व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बाउ-बाउवाद—भाषोत्पत्ति विषयक एक सिद्धान्त। इसे बाउ-बाउ सिद्धान्त भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा की उत्पत्ति आरम्भ में पशु-पक्षियों आदि की ध्वनियों के अनुकरण पर हुई है। मैक्समूलर ने कुत्ते की आवाज के सहारे परिहास में इसे बाउ-बाउवाद नाम दे दिया है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)

बाउरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 348 है। ये व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बएहारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति पूर्वी भारत में रहता है।

बागड़ी (1)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल संख्या केवल 43 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बागड़ी (2)—इस उपभाषा के बोलने वालों की कुल संख्या 9,26,029 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप से बँटी हुई है : मध्य भारत—3, पश्चिमोत्तर भारत 9,26,026।

बाजारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

बादागा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 67,286 है। जिनमें से केवल एक व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है और शेष 67,285 दक्षिण भारत में।

बावानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति अंडमान और नीकोबार द्वीपसमूह में रहता है।

ब्रामई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल संख्या केवल 463 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बामगंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 88 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बालपारधी—इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 42 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बाल्मीकी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बाल्टिक—भारोपीय परिवार के सतम् वर्ग की एक शाखा। इसमें तीन भाषाएँ आती हैं : प्राचीन प्रशन, लिथुआनियन और लैट्टिश। इनमें से प्रशन का तो 17वीं सदी में ही अन्त हो गया था, पर शेष दो आज भी रूस की पश्चिमी सीमा पर बोली जाती हैं। प्रशन बाल्टिक तट पर विश्चुला और नीयेन नदियों के बीच पुराने प्रशिया प्रदेश की भाषा थी। इस क्षेत्र के उत्तरपूर्व लिथुआनियन का क्षेत्र है। धीरे-धीरे विकसित होने से यह भाषा-वैज्ञानिकों के बड़े काम की है। एस्टि और जीवास् जैसे संस्कृत के निकटवर्ती रूप इसमें आज भी विद्यमान हैं। वैदिक संस्कृत की भाँति संगीतात्मक स्वराघात और द्विवचन इसमें आज भी विद्यमान है। लैट्टिश रूस के पश्चिम में लैटेविया राज्य की भाषा है। यह लिथुआनियन से अधिक विकसित है और साहित्य भी अपेक्षतया प्रचुर है। इन तीनों भाषाओं में 16वीं सदी में साहित्य-प्रणयन होता था।

बावची—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल दो है। ये व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बावरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या केवल 57 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बावानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 92 है। ये व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बास्क—बास्क बोलियाँ फ्राँस-स्पेन सीमा के पेरीनीज पर्वत श्रेणी के पश्चिमी भाग में बोली जाती हैं। संचार की सुविधा न होने से बास्क बोलने वालों की संख्या मात्र दो लाख होने पर भी उसकी बोलियों की संख्या सात-आठ तक पहुँच गई है। इस भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यद्यपि यह चारों ओर से भारोपीय परिवार की भाषाओं से घिरी है, तथापि इसका उस परिवार से विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह विश्व की उन वर्तमान अनिश्चित भाषाओं में से एक है, जिनका वर्गीकरण किसी भाषा-परिवार में नहीं किया जा सका है। यह अश्लिष्ट अंतयोगात्मक भाषा है। इसमें उपपद (आर्टीकिल) परसर्ग की भाँति शब्द के अन्त में आते हैं। इसकी विशेषताएँ भोलानाथ तिवारी के अनुसार ये हैं—इसमें लिंग परिवर्तन क्रिया में होता है और वक्ता की दृष्टि से नहीं, बल्कि जिससे बात कही जाए उसकी दृष्टि से होता है। क्रिया में आदर और निरादर सूचक दो प्रकार के रूप होते हैं। शब्द समूह बहुत कम है। वाक्य रचना सरल है। क्रियाएँ हिन्दी की भाँति अन्त में आती हैं।

क्रिया और सर्वनाम का इतना संयोग हो जाता है कि कभी-कभी क्रिया बिलकुल छिप जाती है। इसीसे शायद इसकी क्रियाओं को समझना बड़ा कठिन होता है। इसके सर्वनाम सेमेटिक और हेमेटिक परिवारों से मिलते-जुलते हैं। लेबोर्डिन, सुलेटिन, नर्राइस विस्केयन आदि इसकी प्रमुख बोलियाँ हैं।

बिझली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 112 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बिनहारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 551 है। ये लोग उत्तरी भारत में रहते हैं।

बिमल्ली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

बिरजिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,683 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बिरहोर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 37 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बिरागी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बिलासपुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या 183 है, जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है : उत्तर भारत 28, पूर्वी भारत 133, भारत का मध्य भाग 22।

बिशारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 730 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बिष्णुपुरिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 114 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बिहारी—मागध अपभ्रंश से बंगला, उड़िया और आसामी के साथ बिहारी की भी उत्पत्ति हुई है। बिहारी बोले जाने वाले क्षेत्र में राजनीतिक-साहित्यिक भाषा हिन्दी ही है। बिहारी में तीन मुख्य बोलियाँ हैं—मैथिली (गंगा के उत्तर दरभंगा के आस-पास) मगही (पटना और गया के आस-पास) और भोजपुरी (बिहार के शाहाबाद, चम्पारन और सारन और उत्तर प्रदेश के गोरखपुर-बनारस के आस-पास)। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी अपनी "बंगला भाषा : उद्भव और विकास" में भोजपुरी को मैथिली-मगही से भिन्न मानते हैं, जबकि ग्रियर्सन तीनों को एकत्र रखकर उन्हें बिहारी नाम देते हैं। बिहारी देवनागरी, कैथी और मैथिली (बंगला से मिलती-जुलती) लिपियों में लिखी जाती है। छपाई में केवल देवनागरी लिपि ही काम में आती है।

भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,348 है, जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है : उत्तर भारत 94, पूर्वी भारत 382, दक्षिण भारत

9, पश्चिमी भारत 140, भारत का मध्य भाग 663 और पश्चिमोत्तर भारत 1,060।

बीकानेरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 26,833 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में (बीकानेर में) रहते हैं।

बीजापुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में (सम्भवतः बीजापुर में) रहते हैं।

बुंदेलखण्डी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8,797 है। ये लोग निम्न प्रकार से बँटे हुए बताये गए हैं : भारत का मध्य भाग 7,339 और पश्चिमोत्तर भारत 1,458।

बुंदेली—बुंदेलखण्ड में बोली जाने वाली हिन्दी की एक क्षेत्रीय बोली। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार शुद्ध रूप में यह झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओड़छा, सागर, नृसिंहपुर, सेओनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट और छिंदवाड़ा के भी कुछ भागों में पाये जाते हैं। बुंदेलखण्ड के कवियों की भी साहित्यिक भाषा ब्रजभाषा ही रही है, यद्यपि उनकी रचनाओं पर बुंदेली की कुछ छाप अवश्य पाई जाती है।

भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,289 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बुचायन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

बुद्धिष्ट—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

बुरुशास्की—विश्व की उन वर्तमान अनिश्चित भाषाओं में से एक, जिनका किसी भाषा परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। यह काश्मीर के उत्तरी-पूर्वी प्रदेश में बोली जाती है। साहित्य का सर्वथा अभाव है। इसे खजुना भी कहते हैं।

बुलारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

बुशमैन परिवार—विश्व की भाषाओं के अफ्रीका-खण्ड का एक मुख्य परिवार। दक्षिण अफ्रीका की आरेंज नदी से लेकर नगामी झील तक के प्रदेश में बसने वाले मूल निवासी बुशमैन जाति के कहे जाते हैं। कुछ विद्वान् इसे एक परिवार नहीं बल्कि कई परिवारों का एक वर्ग मानते हैं। बुशमैन लोगों की भाषा वहाँ की सबसे प्राचीन भाषाओं में से है, यद्यपि अब अनेक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं।

डा० ब्लीक ने बुशमैन परिवार की भाषाओं का अध्ययन किया है। उनके विचार से ये भाषाएँ अब अयोगात्मक होती जा रही हैं, यद्यपि अब तक अश्लिष्ट अन्त-योगात्मक थीं। इस परिवार की कुछ भाषाओं जैसे—नामा, खोरा आदि होटेण्टोट भाषाओं पर हैमेटिक परिवार का अधिक प्रभाव पड़ा है। बुशमैन परिवार की भाषाओं ने बंटू और सूडान परिवारों पर भी प्रभाव डाला है।

इस परिवार की तीन प्रधान विशेषताएँ हैं। इसमें क्लिक ध्वनियाँ (दे० यथा०) पाई जाती हैं, जिनके उच्चारण के लिए सांस भीतर खींचनी पड़ती है। दूसरे इन भाषाओं में लिंग पुरुष और स्त्री वाचक न होकर जीव और निर्जीव पर आधारित होते हैं। बहुवचन बनाने के नियम इन भाषाओं में सबसे अव्यवस्थित हैं और उनकी संख्या चालीस के करीब है। सबसे सरल नियम जापानी भाषा की भाँति वीप्सा है, जैसे हाथी का बहुवचन हाथी-हाथी कर देना।

बूरदी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 140 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बेटे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,566 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बेनोंगो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 69 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बेराड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 821 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बेलदारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,853 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बैगानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5,593 है और यह भारत के मध्य भाग में बोली जाती है।

बैटे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बैला गंभारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की जनसंख्या केवल 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बोंडा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,568 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

बोंदिली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 122 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

बोलचाल—सामान्यतः बोलने के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा। स्थान विशेष की बोली (दे० यथा०) ही को बोलचाल की भाषा (कोलोक्वलिज्म) कहते हैं। निकट सम्बन्धियों और अभिन्न मित्रों के बीच इसका प्रयोग आत्मीयता का बोधक होता है, परन्तु औपचारिक गोष्ठियों आदि में इसे गँवारू (अशिष्ट) समझा जाता है। (विशेष दे० विशिष्ट भाषा)।

बोली—डा० गुणे के शब्दों में बोली की परिभाषा यह हो सकती है—'बोली एक ऐसे व्यक्ति-समुदाय की वाणी को कहते हैं, जिसे वे परस्पर सहज रीति से और पूरा-पूरा समझ लेते हैं अथवा जिनकी बोलचाल में स्पष्ट कोई अन्तर नहीं होता।'[1]

1. डा० गुणे : इण्ट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलोजी, पृष्ठ 15।

जब कोई भाषा एक व्यक्ति-समुदाय द्वारा बोली जाती है, तो स्थानीय या अस्थानीय प्रकार का थोड़ा-बहुत अन्तर अनिवार्य है और इस प्रकार थोड़े और बहुत अन्तर वाले क्षेत्रों की कुछ सीमाएँ हो जाती हैं। थोड़े अन्तर वाले क्षेत्र की वाणी को ही बोली कहते हैं।[1] इसे उपभाषा या विभाषा भी कहते हैं। भाषा रहस्यकार बोली से पेटवा का अर्थ लेते हैं और विभाषा से डायलेक्ट का, और इस प्रकार विभाषा का क्षेत्र बोली से विस्तृत बताते हैं। बोली से उनका अभिप्राय इस घरू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलने वालों के मुख में ही रहती है, अर्थात् वह साहित्य में प्रयुक्त नहीं होती।[2] भोलानाथ तिवारी के अनुसार बोली या उपभाषा उस सीमित क्षेत्र की भाषा को कहा जाता है, जिसके बोलने वालों का उच्चारण लगभग एक-सा हो, तथा जिसमें रूप रचना, वाक्य रचना, शब्द समूह तथा अर्थ सम्बन्धी कोई स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण भिन्नता दृष्टिगत न हो। डा० सक्सेना के अनुसार निकटस्थ ग्राम समुदाय की वाणी को बोली का नाम दिया जाता है और उसके भीतर के सूक्ष्म भेदों की अवहेलना पर ही यह नाम सम्भव है।

बोलियों की स्थिति का मुख्य कारण भौगोलिक है। किसी भाषा के कुछ भूभागों का शेष से सम्बन्ध विच्छेद हो जाना ही बोलियों के विकास का कारण बनता है। ब्रिटिश विश्वकोष के अनुसार बोलियों की उग्र सीमाओं का कुछ विद्वानों ने खण्डन किया है, परन्तु इस प्रकार के प्रत्येक क्षेत्र की वाणियाँ दूसरे क्षेत्र की वाणियों से प्रायः स्वतन्त्र रहती हैं। संचार की दुर्गमता—दो गाँवों के बीच बड़ी नदी, पहाड़, दलदल, वन आदि की स्थिति के कारण उनकी बोलियों में बहुत अन्तर आ जाता है; परन्तु भौगोलिक सीमा के अतिरिक्त मानव-सीमा का भी प्रभाव पड़ता है, इस तथ्य की पुष्टि में ब्रिटिश विश्वकोष ने स्विट्जरलैंड के दो गाँवों 'ला फेरियर' और 'लेस बोइस' का उल्लेख किया है, जो समतल भूमि पर स्थित हैं और आवागमन आदि की भी कोई असुविधा नहीं है बल्कि घंटे भर में अनायास आया-जाया जा सकता है, परन्तु दोनों गाँवों की संस्कृति सर्वथा भिन्न होने से तथा वर्षों से पारस्परिक मतवैषम्य होने और विवाह आदि सामाजिक सम्बन्ध न होने से दोनों की बोलियों में बड़ा अन्तर पड़ गया है। इनमें से पहला गाँव तो प्रोटैस्टेंट मतावलम्बी और उद्योग प्रधान है और दूसरा कैथोलिक मतावलम्बी और खेतिहर। इन दोनों गाँवों की बोलियों में तभी से अन्तर चला आ रहा है, जब से धार्मिक मतभेद पैदा हुए। अब प्रशासन की दृष्टि से दोनों के एकबद्ध हो जाने तथा धार्मिक कट्टरता के कम होने से कुछ आवागमन शुरू हो गया है।

बोलियों के क्षेत्रों में सीमाओं पर दूसरी बोलियों के क्षेत्रों के आ जाने का दिग्दर्शन डा० सक्सेना ने एक चित्र द्वारा किया है, जिसमें एक-दूसरे को काटने वाले अनेक वृत्त

---

1. ब्रिटिश विश्व कोष।
2. भाषा रहस्य, पृष्ठ 47।

खींचे गए हैं । इस प्रकार दो बोलियों की सीमाओं पर दोनों ही के चिह्न पाए जाते हैं और पार्थक्य कठिन हो जाता है ।

ह्विटने के शब्दों में यदि भाषा में परिवर्तन न होते तो बोलियाँ वर्षों तक वैसी ही बनी रहतीं, परन्तु सभी भाषाओं में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं ।[1] कभी-कभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि कारणों से लोगों के प्रव्रजन करने पर लोग अपनी भाषा के क्षेत्र से दूर जाकर बस जाते हैं । वहाँ उनकी एक नई बोली विकसित होती है । उत्तर प्रदेश में बसे पंजाबी विस्थापितों या बम्बई में बसे सिंधी विस्थापितों की पंजाबी और सिन्धी में ये परिवर्तन शुरू हो गए हैं । परन्तु दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि पंजाबी या सिन्धी की बोलियों के जो रूप इनके पास सुरक्षित हैं, वे उन प्रदेशों की बोलियों के स्थानीय विकास की अपेक्षा कम प्रभावित हों, क्योंकि ब्रिटिश विश्वकोष के शब्दों में आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड या बोस्टन और सानफ्रांसिसको में बोली जाने वाली अंग्रेजी की बोलियों की अपेक्षा ग्रेट ब्रिटेन के ही दो गाँवों की बोलियों में अधिक अन्तर देखने को मिलता है ।

अभी तक हम भाषा से विभिन्न कारणवश उद्भूत होने वाली बोलियों का उल्लेख कर रहे थे, पर भाषा का जन्म भी तो बोली से ही होता है । यद्यपि ह्विटने के अनुसार दुनिया में ऐसी एक भी भाषा नहीं है, जिसमें बोलीगत निश्चित क्षेत्र विभाग न हों और बास्क या काकेशियन जैसी सीमित क्षेत्र वाली भाषाओं में भी बोलियों के क्षेत्र सुस्पष्ट होते हैं,[2] तथापि इतने ही जोरदार शब्दों में हम कहेंगे कि दुनियाँ में ऐसी एक भी भाषा नहीं है, जिसका जन्म किसी बोली से न हुआ हो । वस्तुतः भाषा शास्त्र की यह समस्या प्राणिशास्त्र या दर्शन शास्त्र की उस समस्या जैसी ही है कि पहले अंडे का उद्भव हुआ या पक्षी का । परन्तु भाषा शास्त्री इस विषय में अपेक्षतया कुछ अधिक निश्चिन्त हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि प्रत्येक भाषा पहले एक बोली के ही रूप में होती है ।

बोलियाँ किन कारणों से पुनः भाषा का रूप धारण कर लेती हैं, इस बारे में भी खोज की गई । भाषा से दूर पड़ जाने पर क्रमशः बोलियों का महत्त्व बढ़ जाता है । वे बोलचाल का माध्यम बन जाती हैं । क्रमशः लोक-गीतों और लोक-कथाओं की रचना उनमें होने लगती है और फिर वे धीरे-धीरे सभी प्रकार की साहित्य रचना का माध्यम बनकर महत्त्व प्राप्त कर लेती हैं । इसी समय धार्मिक राजनीतिक, व्यापारिक आदि कारणों से उनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है और वे भाषा का पद प्राप्त कर लेती हैं । ब्रज और अवधी को जो महत्त्व मिला था, वह कृष्ण और राम सम्बन्धी धार्मिक साहित्य के कारण । व्यापारिक कारणों से ही अंग्रेजी आज अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गई है । राजधानी की भाषा होने के कारण तथा अन्य

1. ह्विटने : लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 32-33 ।

2. वही, पृष्ठ 177 ।

राजनीतिक कारणों से खड़ी बोली ने ब्रज और अवधी को अपदस्थ कर दिया। ऐसे उदाहरण लन्दन, पेरिस आदि की बोलियों के भी हैं।

भाषा और बोली का अन्तर भी स्पष्ट समझ लिया जाना चाहिए। बोली का क्षेत्र अपेक्षतया सीमित होता है। बोली भाषा के अन्तर्गत होती है, इसका व्युत्क्रम नहीं होता। मैक्समूलर[1] के शब्दों में बोलियाँ साहित्यिक भाषा में रक्त संचार करने वाली शिराएँ होती हैं। यह मानना ठीक नहीं है कि बोलियाँ सदैव साहित्यिक भाषाओं का अपभ्रष्ट रूप ही होती हैं। बोलियाँ साहित्यिक भाषा के निर्माण से पूर्व विद्यमान रहती हैं, क्योंकि प्रत्येक साहित्यिक भाषा के मूल में एक बोली ही होती है, जो क्रमशः विकसित होकर उस रूप को प्राप्त करती है। एक बोली के साहित्यिक भाषा बन जाने के बाद उसकी बहिनों का तुर्की सुल्तानों के भाइयों और मित्रों की भाँति गला नहीं घोंट दिया जाता बल्कि वे भी अपना पृथक् अस्तित्व रखकर पनपती रहती हैं, यद्यपि वे उतने प्रकाश में नहीं रहती हैं। पर कालांतर में राजनीतिक, सामाजिक आदि कारणों से वे भी स्वयं साहित्यिक भाषा का पद प्राप्त कर सकती हैं। ह्विटने[2] भी मैक्समूलर के मत से सहमत होते हुए कहते हैं कि अत्यन्त परिष्कृत भाषा भी वर्ग-विशेष की बोली ही होती है। यों तो हिन्दी, गुजराती मराठी, बंगला आदि सभी एक मूल साहित्यिक भाषा संस्कृत की विकसित बोलियाँ हैं, पर यहाँ बोली शब्द का प्रयोग शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। भाषा और बोली उसी वस्तु के दो विभिन्न दृष्टिकोण से दिये गए दो नाम हैं। परन्तु साहित्य में प्रयोग के आधार पर ही कोई बोली अन्य परिस्थितियों के अभाव में भाषा का पद प्राप्त नहीं कर पाती। अवधी का उदाहरण हमारे सामने है।

डा० गुणे के शब्दों में शिक्षा, समाचारपत्र, व्यापार, यात्रा, रेल आदि संचार-साधन बोलियों में एकरूपता लाने में सहायक होते हैं।[3] वर्गों और समुदायों में अधिकाधिक मतभेद होने पर बोलियों का भेद भी अधिकाधिक हो जाता है। संचार-साधनों का अभाव भी यह भेद तीव्रतर कर देता है। अपने क्षेत्र से पृथक् एकान्त में पड़ जाने पर एक बोली अपना पृथक् अस्तित्व किस प्रकार बनाए रखती है, इसका ज्वलंत उदाहरण पश्तो और बिलोच आदि ईरानी भाषाओं के बीच जीवित बनी रहने वाली द्राविड़ बोली ब्राहुई है।

बोलियों में तीव्रतर भेद रहने पर भी कुछ ऐसी समानताएँ होती हैं, जो उनका एक समान स्रोत से उद्भव सिद्ध कर देती हैं। शब्दसमूह, ध्वनिविकारों, व्याकरण नियमों आदि में समानता इस बात का निश्चित प्रमाण होती है। मैलेट के शब्दों में उच्चारण, व्याकरण और शब्दसमूह की ये समानताएँ पीढ़ियों तक चलती रहती हैं। इन बातों से उनका एक मूल मातृभाषा से जन्म सिद्ध हो जाता है।

1. लैक्चर्स, जिल्द 1, पृष्ठ 56।
2. ह्विटने : लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 177-179।
3. डा० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलोजी, पृष्ठ 16-17।

प्रसिद्ध वैयाकरण हेनरी स्वीट के शब्दों में यह एक मानी हुई बात है, यह भाषा-शास्त्र की एक स्वयंसिद्धि है कि भाषा का वास्तविक जीवनचित्र, विकसित, परिष्कृत आदर्श साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलचाल के रूपों और बोलियों में अधिक देखने को मिलता है। साहित्यिक भाषा शब्दों आदि के व्यर्थ और अतिरिक्त रूपों से व्याप्त रहती है, बोलचाल की बोली इनसे छुटकारा पा लेती है। बोलचाल में किसी भी विशेषण का प्रयोग किसी प्रयोजन से अथवा कोई विशिष्ट जानकारी देने के ही लिए किया जाता है, शृंगार-बनाव के लिए नहीं।[1] इस प्रकार बोली के रूप स्वाभाविक होते हैं और साहित्यिक भाषा के रूपों में कुछ कृत्रिमता रहती है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में प्राचीन मध्य देश की आठ मुख्य बोलियों के समुदाय को भाषाशास्त्र की दृष्टि से हिन्दी नाम से पुकारा जाता है। ग्रियर्सन के मत से इनमें खड़ी बोली, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी तथा बुन्देली ये पाँच पश्चिमी हिन्दी में आती हैं और अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी (तथा भोजपुरी) पूर्वी हिन्दी में। ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी का सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत तथा पूर्वी हिन्दी का सम्बन्ध अर्द्धमागधी प्राकृत से जोड़ा जाता है। इन बोलियों का संक्षिप्त वर्णन यथास्थान देखिए। और दे० भाषा, भाषण और आदर्श भाषा।

बौन—भारत की इस बोली या उपभाषा को बोलने वाले व्यक्तियों की संख्या केवल दो है। ये व्यक्ति पूर्वी भारत में रहते है।

ब्रजभाखा—इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 12 है, जिनमें एक व्यक्ति दक्षिण भारत और शेष 11 भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ब्रजभाषा—तेरहवीं से उन्नीसवीं सदी तक मध्य प्रदेश की साहित्यिक भाषा रहने के कारण ब्रज की इस बोली को आदरार्थ भाषा कहा जाता है। आज भी यह ब्रज प्रदेश (मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर) की बोली है। गुड़गाँवा, भरतपुर और ग्वालियर की ओर इसमें राजस्थानी-बुन्देली की झलक आने लगती है और एटा मैनपुरी बरेली की ओर कनौजी की। बुलन्दशहर, बदायूँ और नैनीताल की ओर खड़ी बोली का प्रभाव शुरू हो जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं कि मेरा अपना अनुभव तो यह है कि पीलीभीत इटावा की बोली भी कनौजी की अपेक्षा ब्रजभाषा के अधिक निकट है। इसके बोलने वालों की कुल संख्या 1,77,847 है, जिसमें 4,004 मध्य भारत में और शेष 1,73,843 पश्चिमोत्तर भारत में हैं।

ब्रजपाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 758 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ब्रजिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 61 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

ब्राहुई—द्राविड़ परिवार (दे० यथा०) की एक महत्त्वपूर्ण भाषा। इसका क्षेत्र

1. हेनरी स्वीट : ए प्रैक्टिकल स्टडी आफ लैंग्वेजेज, पृष्ठ 51-52।

बिलोचिस्तान का क्वेटा के पास एक छोटा-सा भाग है और इस पर ईरानी, पश्तो और बलूची का भी प्रभाव पड़ा है। यह प्रायः डेढ़ लाख मुसलमानों द्वारा बोली जाती है।

मंगलदेव शास्त्री के अनुसार द्राविड़ भाषाओं के साथ रचना-साम्य होने पर भी उनके साथ देशगत सम्बन्ध न रहने और बोलने वालों की शरीराकृति ईरानी भाषाभाषियों से अभिन्न होने के कारण इस भाषा ने भाषा वैज्ञानिकों को चक्कर में डाल दिया है। उन्होंने निम्न समाधान सुझाए हैं : पहले द्राविड़ भाषाएँ पश्चिमी समुद्र तट पर बोली जाती थीं और ब्राहुई के रूप में उनका ही एक टुकड़ा शेष रह गया है। उसे ईरानी बोलियों ने घेर लिया और बीच के भाग पर आर्य भाषाओं ने कब्जा कर लिया। दूसरा समाधान यह है कि द्राविड़ भी पश्चिमोत्तर से आये थे और उनकी एक बस्ती मार्ग में ही छूट गई थी। तीसरा समाधान यह है कि द्राविड़ व्यापारियों ने एक बस्ती सिन्धु के निचले भाग में बसाई होगी, जिससे बाद में उनका सम्बन्ध टूट गया। परन्तु शास्त्री जी के शब्दों में ये सारे समाधान केवल कल्पना मूलक हैं।

ब्राह्मी 1.—कुछ पंडित ब्रह्मा द्वारा गढ़ी जाने के कारण इसका नाम ब्राह्मी मानते हैं। अन्य लोग किसी ब्रह्म ऋषि से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। दूसरे विद्वान् ब्राह्मणों के प्रयोग में आने के कारण या विद्या की संरक्षा करने के कारण इसे ब्राह्मी बताते हैं। इसके प्राचीन लेख अशोक काल से ही मिलते हैं। उस समय ब्राह्मी और खरोष्ठी दो प्रधान लिपियाँ थीं। इनमें से खरोष्ठी अवश्य ही किसी विदेशी लिपि का भारतीय रूप है। ब्राह्मी के मूलतः भारतीय होने के बारे में विद्वानों में कुछ मतभेद है।

कुछ यूरोपीय विद्वान् इस पूर्वग्रह के साथ चले हैं कि प्राचीन काल में भारत में कोई लिपि नहीं थी और उन्होंने केवल यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ब्राह्मी का सम्बन्ध किस विदेशी लिपि से है। फ्रेंच विद्वान् कुपेरी चीनी लिपि से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं और आर० एन० साहा अरबी से। विल्सन और सेनार्ट आदि उसे ग्रीक लिपि से उद्भूत मानते हैं। डीके किसी असीरियन कीलाक्षर वाली दक्षिणी सामी लिपि से उसकी उत्पत्ति मानते हैं और बूहलर तथा बेवर आदि के अनुसार भी वह किसी सेमेटिक रूप से उत्पन्न हुई थी। बूहलर के मत को ही अनेक पश्चिमी विद्वानों ने महत्त्व दिया है। उसके अनुसार ब्राह्मी लिपि में 18 अक्षर नवीं सदी ई० पूर्व में फोनीशियन से लिए गए, आठवीं सदी में 2 अक्षर मेसोपोटामिया वालों से आए और छठी सदी में 2 अक्षर आर्मेइक लोगों से। शेष अक्षर उन्हीं के आधार पर गढ़े गए हैं।

दूसरी ओर कनिंघम, कोलब्रुक, फ्लीट, ओझा और जायसवाल आदि ने उसे भारतीय माना है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में प्राचीन वैदिक तथा बौद्ध साहित्य के बाह्य रूप तथा उसमें पाये जाने वाले उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि भारत में लेखन कला का प्रचार छठी शताब्दी ईसा पूर्व से भी बहुत पहले मौजूद था। ऐसी अवस्था

में कुछ यूरोपीय विद्वानों का यह मत बहुत सारयुक्त नहीं मालूम होता कि भारतीय लोगों ने चौथी, आठवीं या दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व में किन्हीं विदेशियों से लिखने की कला सीखी। उक्त विद्वानों द्वारा जो तर्क ब्राह्मी की भारतीयता सिद्ध करने के लिए और विपक्षियों के तर्कों का खंडन करने के लिए दिये गए हैं, उनका सारांश आगे दिया जा रहा है। बूहलर खरोष्ठी और ब्राह्मी दोनों की उत्पत्ति फोनीशियन से मानते हैं, परन्तु दोनों के स्वरूप में जो अन्तर है वह इसे युक्तिसंगत नहीं ठहराता। एरण के सिक्के में ढालने की गलती से ब्राह्मी का उलटा रूप उसे सेमेटिक से सम्बन्धित नहीं कर सकता, क्योंकि ढलाई की यह गलती अन्यत्र भी देखने को मिलती है। जिन अक्षरों की जोड़-तोड़ सामी रूपों से की गयी है, उनका सामी अक्षरों से कोई उच्चारण साम्य नहीं है। अनुकरण में अक्षरों के कोने निकाल देने और नये कोने जोड़ देने के तर्क भी संगत नहीं है, क्योंकि इस प्रकार तो किन्हीं दो लिपियों में पारस्परिक सम्बन्ध ठहराया जा सकता है। अतः निष्कर्षतः डा० ओझा के शब्दों में ब्राह्मी भारतवर्ष के आर्यों का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांगसुन्दरता से चाहे इसका कर्त्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा, चाहे साक्षर समाज ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो पर इसमें सन्देह नहीं कि इसका फिनीशियन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। भले ही सिन्धु-सभ्यता की लिपियों का सम्बन्ध ब्राह्मी से न जोड़ा जा सका हो, पर इतना निर्विवाद है कि वैदिक युग में ही भारत में कोई न कोई लिपि अवश्य थी, अन्यथा अयुत, नियुत और प्रयुत तक की गणना सम्भव न थी। जैन-बौद्ध युग में लिपि बहुत विकसित हो चुकी थी और बच्चे अक्खरिका खेल खेलते थे। लेकिन विस्तर और पत्रवणा-सूत्र में क्रमशः 64 और 18 लिपियों का उल्लेख है। पाणिनि ने भी लिपि, लिपिकार आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं। बिना लिपि के व्याकरण, ध्वनि, छंद, ज्योतिष आदि का इतना सूक्ष्म-विवेचन भी सम्भव न था।

ब्राह्मी लगभग 350 ईसवी तक भारत में प्रचलित रही, पर तब तक उसके उत्तरी और दक्षिणी दो रूप हो गए थे। दक्षिण भारत की समस्त मध्यकालीन या आधुनिक लिपियाँ ब्राह्मी के इस दक्षिणी रूप से ही विकसित हुई हैं। चौथी-पाँचवीं सदी में उत्तर-शैली का नाम गुप्तों के प्रभाव से गुप्त लिपि (दे० यथा०) पड़ा। छठी से नवीं सदी तक इसका नाम कुटिल (दे० यथा०) लिपि रहा। कुटिल लिपि से ही नवीं सदी में एक ओर नागरी (दे० यथा०) और दूसरी ओर काश्मीर की शारदा (दे० यथा०) लिपियाँ विकसित हुईं। शारदा से वर्तमान काश्मीरी, टाकरी और गुरुमुखी (गुरु अंगददेव द्वारा परिष्कृत) लिपियाँ निकली हैं। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं सदी के आसपास प्राचीन बंगला लिपि विकसित हुई, जिसके आधुनिक रूप आधुनिक बंगला, असमिया, उड़िया, मैथिल और नेपाली लिपियाँ हैं। दसवीं से बारहवीं सदी तक नागरी का वर्तमान रूप भी विकसित हुआ। गुजराती, कैथी, महाजनी आदि

उत्तर भारत की अन्य लिपियाँ भी प्राचीन नागरी से ही सम्बद्ध हैं। और दे० नागरी, खरोष्ठी, लिपि (यथा)।

ब्राह्मी 2.—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

भ

भ्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह महाप्राण, घोष, ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन है। इसका उच्चारण भी अन्य पवर्गीय ध्वनियों की भाँति होता है।

उदा० भाई, मनभर, कभी।

भंगिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। भंगी और भंगिया इसके दो नाम हैं।

भंगी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। भंगिया इसका दूसरा नाम है।

भंडारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 20 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भदौरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,271 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भरतपुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में (सम्भवतः भरतपुर में) रहते हैं।

भरिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,180 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भवासर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

भाईपुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 6 है। ये लोग पूर्वी भाग में रहते हैं।

भाट—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भाटिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संस्या केवल 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भाटू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 26 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भातरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 47 । ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

भातरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 62,583 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भामती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 44 है। इनमें से 24 भारत के पश्चिमी भाग में और शेष 20 मध्य भाग में रहते हैं।

भामिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह भारत के मध्य भाग में रहता है। इसके भामिया और भामी दो नाम हैं।

भामी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह भारत के मध्य भाग में रहता है। इसके भामी और भामिया दो नाम हैं।

भारत-जर्मनी परिवार—भारोपीय परिवार का अन्य नाम। विशेष दे० भारोपीय परिवार।

भारोपीय ध्वनि समूह—भारोपीय कालीन वर्णों का शुद्ध उच्चारण तो आज जान सकना कठिन है। सामान्यतः मैकडानेल के वैदिक व्याकरण के आधार पर तथा अन्य जर्मन विद्वानों के अनुमानों और खोजों के आधार पर उनका वर्णन किया जाता है और यह रोमन लिपि की ही सहायता से होता है। उनके देवनागरी रूप भी साथ ही दिये जा रहे हैं :—

समानाक्षर—

ă, ā; ĕ, ē; ŏ, ō; ə; ĭ, ī; ŭ, ū.

अ, आ; ऍ, ए; ऑ, ओ; अं; इ, ई; उ, ऊ।

संधि स्वर—ये अनन्त हैं, इनमें से प्रमुख नीचे रोमन लिपि में दिए जाते हैं :—

ai̯, āi̯, ei̯, ēi̯, oi, ōi;
au̯, āu̯, eu̯, ēu̯, ou̯, ōu̯;
əm, ən, ər, əl

स्वनंत वर्ण—आक्षरिक अनुनासिक व्यंजन म्, न्
आक्षरिक द्रव (अन्तस्थ व्यंजन) .र्, .ल्

व्यंजन—	ओष्ठ्य	प, फ, ब, भ
	दंत्य	त, थ, द, ध
	कंठ्य	क, ख, ग, घ
	मध्य कंठ्य	क, ख, ग, घ
	तालव्य	च, छ, ज, झ
	अनुनासिक	म, न, ङ, ञ
	अर्द्ध स्वर	य, व
	द्रव	र, ल
	सोस्म ध्वनि—	स, ज़, य, व्ह, गै, थ, द

भारोपीय परिवार—बोलने वालों की संख्या, विस्तार और बोलने वालों के महत्त्व और साहित्य आदि की दृष्टि से संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा-परिवार। इस परिवार को पहले अन्य अनेक नाम दिये गए थे, पर अब यह नाम अधिक प्रचलित हो गया है, यद्यपि अमेरिका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया आदि में भी इस परिवार की भाषाओं के प्रसार को देखते हुए यह नाम भी विशेष सन्तोषजनक नहीं है। मैक्समूलर आदि ने इसे आर्य भाषा परिवार नाम दिया था, परन्तु अब आर्य शब्द से केवल भारत-ईरानी वर्ग का ही बोध होता है। इण्डो-जर्मन या भारत-जर्मनी नाम भी इस परिवार की दोनों सीमाओं को समेटने की दृष्टि से गढ़ा गया था और जर्मनीवासी अब भी इसी नाम का प्रयोग करते हैं, पर पश्चिमी छोर की कैल्टिक भाषा इस नाम में नहीं समेटी जा सकती। इसीलिए इंडोकैल्टिक नाम भी चला था, जो दोनों भौगोलिक छोरों को समेटता है, परन्तु यह नाम भी प्रचलित न हो सका। इसी प्रकार सांस्कृतिक, काकेशियन और जफेटिक नाम भी रखे गए, पर वे भी प्रचलित न हो सके। आजकल दूसरे उपयुक्त नाम के अभाव में भारोपीय (जो भारत यूरोपीय का संक्षेप है) नाम ही चल निकला है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी इस परिवार का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसमें डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में पर्याप्त स्पष्टता, निश्चयात्मकता और विस्तार—तीनों गुण पाए जाते हैं। इस परिवार में ऋग्वेद आदि प्राचीन साहित्य के रूप में ऐतिहासिक साक्ष्य जितना पुष्कल और सुरक्षित मिल सकता है, उतना औरों के विषय में नहीं। प्राचीन जगत के तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साहित्य—संस्कृत, ग्रीक और लेटिन—और मध्यकालीन तथा आधुनिक साहित्य का बड़ा भाग भी इसी परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। भाषा के विकास को दिखाने वाली जितनी विविध सामग्री इस परिवार में मिलती है, उतनी किसी दूसरे परिवार में नहीं।

इस परिवार के मुख्य लक्षण अथवा विशेषताएँ ये हैं। विभक्तियाँ प्रायः अन्तर्मुखी और पीछे लगने वाली होती हैं और यह परिवार श्लिष्ट योगात्मक है। पीछे लगने वाले प्रत्यय या विभक्तियाँ भी कभी स्वतन्त्र शब्द थे, ऐसा विद्वानों का विचार है, परन्तु अब उनमें स्वतः कोई अर्थ विशेष नहीं रह गया है। इस परिवार की भाषाएँ क्रमशः संहित से व्यवहित होती गई हैं और वाक्य-व्यवस्था भी बहुत कुछ स्थान-प्रधान हो गई है। धातुएँ प्रायः एकाक्षर होती हैं, जिनमें प्रत्यय और उपसर्ग जोड़कर अनेक अर्थ वाले अनेक शब्द गढ़े जाते हैं। समास-रचना की एक विशेष शक्ति इस परिवार में पाई जाती है, जो अन्य सेमेटिक आदि परिवारों में नहीं मिलती। वेल्श में समास-बहुलता के उदाहरणस्वरूप एक गाँव के नाम का उल्लेख किया जाता है, जो 58 अक्षरों का है। अक्षरावस्थान इस परिवार की एक प्रधान विशेषता बताई जाती है अर्थात् स्वर-परिवर्तन से सम्बन्ध तत्त्व में भी परिवर्तन हो जाता है। अंग्रेजी की ड्रिंक—ड्रेंक—ड्रंक क्रियाएँ इसके उदाहरण में दी जाती हैं। यह विशेषता सेमेटिक परिवार (अरबी आदि) जैसी ही है, पर दोनों के कारणों में अन्तर है।

भारोपीय भाषाओं में इसका कारण स्वराघात या बल होता है, पर सेमेटिक भाषाओं में वह वाक्य के अन्वय से सम्बन्ध रखती है। प्रत्यय-विभक्तियाँ सभी प्रकार के सम्बन्ध तत्त्वों का द्योतन करने के कारण इस परिवार की एक विशेषता बन गए हैं, और उनकी संख्या बहुत अधिक हो गई है।

उल्हेन बैक के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में भारोपीय भाषा में दो वर्ग थे, जिनका भेद ध्वनि पर आधारित था। सबसे पहले 1870 में अस्कोली ने बताया कि कुछ भाषाओं में कंठ्य ध्वनियाँ (ट आदि) यथापूर्व बनी रहीं, पर कुछ में वे ऊष्म ध्वनियाँ (श आदि) में बदल गईं। इसी आधार पर फान ब्राड ने सतम् (जो अवेस्ता का शब्द है) और केंटुम् (जो लेटिन का शब्द है) दो वर्ग निश्चित किये। जहाँ लेटिन आदि में कंठ्य ध्वनियाँ दिखाई देती हैं, जैसे केंटुम्, आक्टो, डिक्टिओ और गेनुस; वहीं संस्कृत आदि में ऊष्म ध्वनियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे शतम्, अष्टौ, दिष्टिः, जनः। सौ का वाचक शब्द सभी भाषाओं में पाया जाता है और उसी को आधार मानकर यह वर्ग-विभाजन किया गया है, इसलिए सौ के लिए पाये जाने वाले शब्दों का उल्लेख उचित रहेगा :—

सतम् वर्ग			केंटुम् वर्ग		
अवेस्ता	—	सतम्	लेटिन	—	केंटुम्
संस्कृत	—	शतम्	ग्रीक	—	हेक्टोन
फारसी	—	सद	इटैलियन	—	केंटो
हिन्दी	—	सौ	फ्रेंच	—	केंत
रूसी	—	स्तो	ब्रीटन	—	कँट
बल्गेरियन	—	सुतो	गैलिक	—	क्युड
लिथुआनियन	—	स्ज़िम्तास	तोखारी	—	कंध

पूर्व और पश्चिम के ही आधार पर पहले यह भेद किया गया था, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि पूर्व में तोखारी और हिट्टाइट दो ऐसी भाषाएँ मिली हैं, जिनमें 'स' के स्थान पर 'क' है। केंटुम् और सतम् वर्ग (दे० यथा)।

भूमिज—इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,01,508 है, जो सब-की-सब पूर्व भारत में रहती है।

भीली—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 11,60,299 है। यह निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है—पूर्व भारत —128; पश्चिम भारत—3,70,067; मध्य भारत—5,33,341; उत्तर-पश्चिम भारत—2,56,763।

भीलाली—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 2,64,289 है, जो सारी की सारी मध्य भारत में रहती है।

भोंड—कोंट नामक आदिम जाति की एक भाषा या उपभाषा का एक अन्य नाम। विशेष दे० कोंट।

भूमिज—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे कूरमी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 450 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

भाषण—भाषण एक मानवीय क्रिया है, जिसके लिए कम-से-कम दो ऐसे व्यक्ति आवश्यक होते हैं, जो उसी भाषा को जानते हों; अतः वह तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान से उतना नहीं जितना समाजशास्त्र से सम्बद्ध है।[1] द लेगुना ने पाल, सेपिर, स्वीट, ह्विटने, वुंट आदि द्वारा की गई भाषण की परिभाषाएँ एकत्र की हैं, परन्तु गार्डिनर के शब्दों में वह संक्षेपतः इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भाषण—उसके कृत्य और विकास सब कुछ—विचारों को अभिव्यक्ति करने के लिए व्यक्त ध्वनि प्रतीकों का उपयोग है।[2] किसी उपयोगी या रोचक बात को देखकर मनुष्य स्वभावतः अपने साथी को बताना चाहता है। गार्डिनर ने इस बात की पुष्टि इस स्थिति के चित्र देकर की है कि एक दम्पति पढ़ने में तल्लीन है। खिड़की खुली है, पानी बरसने लगता है, पति उठता है, और यह कहता हुआ, "अरे ! पानी बरसने लगा" खिड़की बन्द करता है, इसके पहले ही पत्नी भी उसकी बात सुनकर देख लेती है कि पानी बरस रहा है।[3]

इस प्रकार भाषण श्रोता पर व्यक्त प्रभाव डालने के लिए बोधगम्य ध्वनि प्रतीकों की क्रिया का दूसरा नाम है। सर्व मानव सुलभ वरदान भाषा का व्यवहार ही इस क्रिया के मूल में है। वक्ता और श्रोता के समक्ष वक्तव्य वस्तु की उपस्थिति भी अपेक्षित है। वस्तु से पहला प्रभाव वक्ता के मन पर पड़ता है, वह उसे भाषण द्वारा अभिव्यक्त करता है और तब दूसरा प्रभाव श्रोता के मन पर पड़ता है। चैम्बर विश्वकोष ने इस प्रक्रिया के स्पष्टीकरण के लिए एक रेखा-चित्र का प्रयोग किया है।

श्रोता पहले तो उस प्रतीक का तर्कसंगत मूल्य समझता है, दूसरे वक्ता के क्रम, लहजे, पसन्द आदि से वह उनके प्रभाव और मनोनिवेश को भी पहचान लेता है, साथ ही उसे उस वस्तु का ज्ञान भी होता है और वह उसके बारे में इतनी बातें पहले से जानता है, जितनी वह प्रतीक व्यक्त नहीं कर सकता।

अमेरिकन विश्वकोश में इस मनोवैज्ञानिक-शारीरिक प्रक्रिया को छः भागों में विभक्त किया है—(1) शिरा केन्द्रों में रासायनिक क्रिया; (2) उससे श्वास-वायु, नाद वायु बनकर अपना कार्य करती हैं; (3) ध्वनि-संवेदना जिससे श्रोता के मन में तत्समान भाव उदित होते हैं; (4) गतिक-संवेदना, उसकी स्थिति और स्वारूप तथा गति की मात्रा; (5) विचार, ध्वनि और शब्दों की कई संसर्गीय प्रक्रियाएँ और (6) दृष्टि-संवेदना। इस प्रकार भाषण तीन प्रकार के प्रतीकों का समुच्चय है। (1) प्राथमिक प्रतीक—शारीरिक चेष्टाएँ; (2) द्वैतीयिक प्रतीक—भाषण ध्वनियाँ

1. गार्डिनर : स्पीच एंड लैंग्वेज, पृष्ठ 7।
2. वही, पृष्ठ 17।
3. वही, पृष्ठ 87।

तथा (3) तृतीयिक प्रतीक—लिखित भाषा। वैसे इनमें से पिछले दो ही रूप जनसाधारण को विदित होते हैं।

ह्विटने ने वाक्य से भाषण का आरम्भ अनर्गल माना था, पर गार्डिनर आदि ने शब्द और वाक्य की स्वतन्त्रता का निरूपण करते हुए यही सिद्ध किया है कि भाषण का आरम्भ वाक्य से होता है। भाषण का वाक्य ही चरमावयव है।[1] मनुष्य की प्रथमतः भाषण प्रवृत्ति कैसे हुई यह एक जटिल प्रश्न है। भाषण शक्ति मनुष्य में ही क्यों होती है, पशुओं में क्यों नहीं, इसका विवेचन करते हुए जेस्पर्सन ने मनुष्य की शारीरिक बनावट पर जोर दिया है और बताया है कि जहाँ पशु दो हाथों के न होने के कारण आत्मरक्षा आदि में मुख का उपयोग करते हैं, मनुष्य के लिए मुख का भोजन के अतिरिक्त और कोई उपयोग नहीं था, अतः उसमें भाषण शक्ति का सहज विकास हो गया। भाषण श्रोता को प्रभावित करने के लिए, वस्तुओं की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए और हर्ष-शोक आदि भावों को व्यक्त करने के लिए तो उपयोगी होता ही था, परन्तु विचारों की अभिव्यक्ति में भाषण सहायक सिद्ध हुआ, अथवा भाषण की क्रिया के प्रसाद स्वरूप मनुष्य ने विचार करना सीखा।[2] और इस प्रकार दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध सिद्ध हुआ।

भाषा की उत्पत्ति (दे० भाषोत्पत्ति) और शब्दों के विकास (दे० शब्द, शब्द समूह) के साथ ही भाषण की क्रिया भी विकसित हुई। ध्वनि संकेतों का अर्थ विशेष से संसर्ग हो गया और वे शब्द उस अर्थ के प्रकाशन के लिए प्रयुक्त होने लगे। भाषण क्रिया के सहारे पीढ़ियाँ एक दूसरे को उन प्रतीकों का उपयोग सिखाती गईं।

अन्त में भाषा और भाषण का अन्तर भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए क्योंकि गार्डिनर के अनुसार ये शब्द प्रायः एक दूसरे के पर्याय मान लिए जाते हैं और बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। फलतः उनके अन्तिम तत्त्व 'शब्द' और 'वाक्य' का समुचित विवरण देना तक कठिन हो जाता है।[3] सामान्यतः "विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों के व्यवहार" को भाषा कहते हैं और भाषा की परिभाषा भी यही है। दोनों का अन्तर यही है कि पहला रूप (भाषा) सिद्धान्त माना जा सकता है, स्थायी कहा जा सकता है और दूसरा उसका प्रयोग अथवा क्रिया कही जा सकती है, जो क्षण-क्षण प्रत्येक वक्ता या श्रोता के मुख-कान में परिवर्तित होती रहती है, एक को विद्वान् विद्या कहते हैं, और दूसरी को कला।[4] एक विज्ञान है, दूसरा उसका व्यावहारिक उपयोग। यद्यपि इन दोनों रूपों का ऐसा सम्बन्ध है, जो अभेद्य माना जाता है, परन्तु शास्त्रीय विचार के लिए इनका भेद करना आवश्यक है। भाषा से

1. वाक्यात्पदानामात्यन्तं प्रविवेको न कश्चन—वाक्यपदीय 1/77।
2. गार्डिनर : स्पीच एंड लैंग्वेज, पृष्ठ, 326-327।
3. वही, पृष्ठ 62।
4. भाषा रहस्य, पृष्ठ 51।

भाषण की उत्पत्ति हुई या भाषण से भाषा की, इस प्रश्न का उत्तर उतना ही कठिन है जितना इस प्रश्न का कि अंडे से पक्षी की उत्पत्ति हुई या पक्षी से अंडे की।

भाषण-ध्वनि—डा० सुनीति कुमार चटर्जी के शब्दों में भाषणावयवों द्वारा उत्पन्न निश्चित श्रवण गुण वाली ध्वनि भाषण-ध्वनि कही जाती है[1]। विशेष दे० ध्वनि।

भाषणावयव—बोलने में प्रयुक्त होने वाले अंग। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

भाषा—सामान्य अर्थ में भाषा 'मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे वे अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किये गए व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं'।[2] परन्तु व्यापक रूप में भाषा शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। देश-विशेष की भाषा के अर्थ में (जैसे हिन्दी, तिब्बती, चीनी आदि); उस देश के विभिन्न प्रान्तीय भेदों के अर्थ में (जैसे बिहारी, राजस्थानी आदि); जाति, बिरादरी या एक पेशे के लोगों की भाषा के अर्थ में (जाटों की भाषा आदि); शब्द-भंडार के उपयोग की दृष्टि में वैयक्तिक (व्यक्ति विशेष की) भाषा के अर्थ में और केवलमात्र साहित्यिक या शिष्ट भाषा के अर्थ में भी भाषा शब्द का प्रयोग चलता है। साथ ही टीकाकार इसके विपरीत संस्कृतेतर देशज भाषाओं को 'इति भाषायाम्' कहकर भाषा नाम देते हैं और तुलसी ने भी 'भाषा' शब्द उस अर्थ में प्रयुक्त किया है। डाँट खाकर शिशु नत माँ की ओर टुकुर-टुकुर निहारता है, अथवा जब भिखारी विमुख होकर द्वार पर से लौटने लगता है, तब उनके अभिप्रेत स्पष्ट हो जाते हैं। गूँगा प्यास लगने पर हाथ के संकेत से अपना भाव प्रकट कर देता है। पक्षी बिल्ली को आता देख शब्द करके सबको सावधान कर देते हैं। बछड़े के रंभाने पर गाय भी विकल-विह्वल हो जाती है।[3] एक गिद्ध को लाश का पता चलता है तो क्षण भर में अनेक गिद्धों को एकत्र कर लेता है। भाषा का ऐसा कोई भी शब्द नहीं जिसे तोता बोल न सकता हो। परन्तु मैक्समूलर के विचार से[4] यह अन्तर शारीरिक रूप में नहीं बल्कि मानसिक रूप में स्पष्ट होता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लॉक का भी यह विचार उद्धृत किया है कि पशुओं में मानसिक शक्ति नहीं होती। लार्ड मोनबोडो के शब्दों में अभी तक ऐसा एक भी पशु नहीं मिला है, जिसका भाषा पर अधिकार हो।[5] ग्रेट रेमन सरकस का कुत्ता गणित के प्रश्न कर लेता हो, परन्तु इसमें अभ्यास ही काम करता है, या उसे कुछ मानसिक शक्ति मिली हुई है, इसका निर्णय आज तक नहीं हो सका है। गूँगे-बहिरे भी वर्णात्मक शब्दों को बोल या सुन नहीं पाते, पर हस्तादि संकेतों से और चेष्टाओं से अपना काम चला लेते हैं। उत्तरी अफ्रीका के पश्चिम

1. बंगाली फोनेटिक रीडर, भूमिका, पृष्ठ 7।
2. डा. मंगलदेव शास्त्री : भाषाविज्ञान, पृष्ठ 17 और 28।
3. डा. बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषाविज्ञान, पृष्ठ 2।
4. मैक्समूलर : लैक्चर्स जिल्द 1, पृष्ठ 404।
5. वही, पृष्ठ 15।

दक्षिण भाग में अशन्ति के समीप रहने वाली ग्रेबो नाम की जाति में क्रियाओं के काल और पुरुष को केवल हाथों की चेष्टा से प्रकट करते हैं[1]।

तो व्यापक अर्थ में विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अपनाए जाने वाले प्रत्येक साधन को भाषा कहते हैं[2]। वह हमारे विचारों और अनुभूतियों को व्यक्त करने वाले ऐसे बाह्य संकेतों का समुच्चय है, जिनको इच्छानुसार उत्पन्न किया जा सकता है और दुहराया जा सकता है[3]। विचार-विनिमय के इन समग्र साधनों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पहले वर्ग में वे साधन आते हैं, जिनके द्वारा अभिव्यक्त विचारों का ग्रहण स्पर्श द्वारा होता है, जैसे चोर हाथ दबाकर बात करते हैं। दूसरे वर्ग में वे साधन आते हैं जिनमें विचारों की अभिव्यक्ति और ग्रहण में आँखों की आवश्यकता पड़ती है, जैसे हल्दी या सुपारी बाँट कर निमन्त्रण देना, आँख दबाना, आँख छुपाना, अंगुली दिखाना, स्काउटों की झंडी, नायक-नायिकाओं की भरे भवन में नयनों से होने वाली बातचीत आदि सब साधन इस वर्ग में आते हैं। तीसरे वर्ग में वे सर्वाधिक प्रचलित और महत्त्वपूर्ण साधन आते हैं, जिनके लिए कानों की आवश्यकता होती है। मुख की (ध्वनि-अवयवों द्वारा ही नहीं अन्यथा भी की गई) और चुटकी आदि की सभी ध्वनियाँ इस वर्ग में आती हैं।[4]

परन्तु मनुष्येतर प्राणियों द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले ये साधन भाषा की कोटि में नहीं आते। हुम्बोल्ट के शब्दों में उच्चरित ध्वनि को भावाभिव्यक्ति के उपयोगी बनाने की निरन्तर चेष्टा का फल भाषा है। यह चेष्टा मनुष्य में ही सम्भव है। जो उच्चरित ध्वनियाँ भावों के प्रकाशन के निमित्त निर्दिष्ट हैं, उनसे भावों के प्रकाशन का नाम भाषा है[5]। ऐसी कोई मानव जाति (पुरानी से पुरानी आदिम जाति तक) आज तक नहीं मिली जो भाषा का उपयोग न जानती हो। पुराने अस्थि-ढाँचों से यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि उस समय तक मनुष्य में ध्वनि-अवयवों का विकास न हुआ था, परन्तु ये विचार अपर्याप्त प्रमाणों पर आधारित होने से मान्य नहीं हैं[6]। शारीरिक-निर्माण से ही अर्थात् ध्वनि-अवयवों के विद्यमान होने से ही भाषा का ज्ञान अनिवार्य नहीं है[7]। भेड़ियों द्वारा उठा ले जाये गए बच्चे सर्वांगपूर्ण होने पर भी ध्वनि-अवयवों का उपयोग नहीं जानते। यह समाज की देन है और मनुष्य समाज में रह कर ही भाषा को सीखता है। प्रत्येक विदित मानव-वर्ग में भाषा जैसा

1. ए०एच० सेस, इंट्रोडक्शन टु दि साइंस आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 2 तथा आर०एन० कस्ट लिंग्विस्टिक एंड ओरिएंटल एसेज, सैकिंड सीरीज पृष्ठ 323,344 ; डा. मंगलदेव शास्त्री द्वारा उद्धृत।
2. अमरीकी विश्वकोष।
3. पी० डी० गुणे : एन इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलोजी, पृष्ठ 4।
4. भोलानाथ तिवारी: भाषा-विज्ञान, पृष्ठ 1। ब्रिटिश विश्वकोष।
5. नलिनी मोहन सान्याल: भाषा विज्ञान, पृष्ठ 32।
6. ब्रिटिश विश्वकोष।
7. चैम्बर्स विश्वकोष।

अभिव्यक्ति का कोई अन्य साधन देखने को नहीं मिला[1]। सारांशतः भाषा मानव-विचारों की वाहिका है[2]। गार्डिनर का यह दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक वयस्क मनुष्य भाषा के विशद ज्ञान का जीवित भंडार होता है। भाषा व्यक्तिगत वस्तु नहीं है, बल्कि वह अनेकों व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक अवबोध के लिए गढ़ी जाती है और उसका मुख्य कृत्य सहयोग की वृद्धि करना होता है[3]। वह सभी शब्द संकेतों का समुच्चय मात्र है और शब्दों के प्रभावी प्रयोग के लिए अपेक्षित ज्ञान भी उसके अन्तर्गत आता है[4]।

इस प्रकार भाषा में हस्तादि चेष्टाएँ, मुखाकृति और अन्य बाह्य संकेतों द्वारा दूसरे के निकट अपने भावों के प्रकाशन के अन्य सभी संकेत भी गिने जाते हैं, और लिखित संकेत भी अथवा चित्र संकेत भी इसका एक अंग है। इस प्रसंग में यह ध्यान में रखना उपयोगी होगा कि चीनी में ☰ शब्द का अर्थ यद्यपि तीन ही होता है, पर विभिन्न बोलियों में इसका उच्चारण विभिन्न रूपों में होता है, इस प्रकार चित्रलिपि श्रव्य भाषा से भिन्न रहती है। परन्तु उपर्युल्लिखित आँखों की भाषा या दृश्य भाषा और कानों की भाषा या श्रव्य भाषा में पिछली का महत्त्व सर्वविदित है, क्योंकि ध्वनि-अवयव हाथ-पैर आदि अंगों के निष्क्रिय रहने पर भी असंख्य प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न कर सकते हैं और उनका ग्रहण काफी दूरी पर भी और अन्धकार में भी हो सकता है। फिर भी अनेक आदिम जातियाँ दृश्य भाषा संकेतों को छोड़ नहीं सकी हैं और भाषा के सम्यक् विकास में उनकी सहायता भी अपेक्षित हो जाती है।[5]

भाषा अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को मिले अपेक्षतया उच्चतर गुणों का निदर्शन है।[6] भाषण की क्षमता मनुष्य की एक स्पष्ट विशेषता है। परन्तु कोई मनुष्य तब तक भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और अपने इन विशेष अवयवों से लाभ नहीं उठा सकता, जब तक वह अपने साथियों से इसका शिक्षण प्राप्त न करे[7] या उनको बोलते हुए देख उनका अनुकरण न करे। बच्चे को प्रेक्षण, विभेदीकरण आदि जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा भाषण का अभ्यास करना पड़ता है। वह अपने ध्वनि-अवयवों पर धीरे-धीरे ही नियंत्रण प्राप्त करता है। पहले अत्यन्त सन्निकट के सम्बन्धियों के और प्रिय पदार्थों के (मां, पापा, पानी, दूध आदि) नाम लेना सीखता है। दूध और पानी को निरन्तर सामने लाया जाता देख क्रमशः वह उनके गुण, स्वाद, रूप और नाम का भेद भी जान जाता है और फिर कुछ ही वर्षों

1. समाज विज्ञान विश्वकोष।
2. ह्विट्ने : लाइफ एंड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 1।
3. गार्डिनर : स्पीच एंड लैंग्वेज, पृष्ठ 5,21।
4. वही, पृष्ठ 88।
5. ब्रिटिश विश्वकोष।
6. ह्विट्ने : लाइफ एंड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 3 व 6।
7. वही, पृष्ठ 280।

में इतने विशाल शब्दकोष का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, जिनके उत्पन्न होने में शताब्दियाँ लगी थीं[1]। वह किसी सुनिश्चित रीति से शब्दों का ज्ञान प्राप्त नहीं करता और भाषा की समग्र जटिलताओं का ज्ञान प्राप्त करने में, लिंग, वचन, क्रियारूप, वाक्य-नियम आदि पर अधिकार प्राप्त करने में उसे समय लगता है, परन्तु यदि हम इसकी तुलना उस समय से करें, जितना एक विदेशी उस भाषा का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने में लगाता है और फिर भी कभी भी उस पर उतना अधिकार प्राप्त नहीं कर पाता है, तो हम देखेंगे कि स्थानीय बच्चा इसकी अपेक्षा कहीं कम समय लेता है।[2] परन्तु जैसा हम बार-बार कह चुके हैं, साथी बच्चों की सहायता के बिना उसका यह ज्ञान कभी पूरा नहीं हो सकता।

इस प्रकार हम पुनः उसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि भाषा का जन्म सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक विकास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। मनुष्य ने भावी पीढ़ियों के लिए भाषा का निर्माण नहीं किया था[3]। एक पीढ़ी किसी भी उपयोगी वस्तु की केवल नींव ही रखती है और समाजगत सम्पर्क के लिए उपयोगी होने के कारण उसका आगे स्वाभाविक विकास होता रहता है। केवल विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही नहीं, यद्यपि वह भी बौद्धिक प्राणी मनुष्य के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है, बल्कि प्रायः लोग भाषणेन्द्रियों के उपयोग से मिलने वाले आनन्द के लिए बोलते हैं। भाषा के विकास में इसने भी महत्त्वपूर्ण योग दिया था। भाषा सामाजिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है। एक भाषा बोलने वाले व्यक्ति स्वभावतः सभी प्रकार से अधिक निकटता का अनुभव करते हैं। चूँकि भाषागत सीमाएँ प्रायः राजनीतिक सीमाओं के समानान्तर नहीं होती हैं, अतः भाषा का प्रश्न राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विताओं का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन जाता है।[4] प्रत्येक वर्ग और क्लब तक में भाषागत विशेषता आ जाती है और आज हम यह सोच भी नहीं सकते कि भाषा के साधन के न होने पर आज हमारी सांस्कृतिक स्थिति क्या होती ?[5] सभ्यता और व्यक्तित्व के विकास में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान स्वीकार ही करना पड़ेगा। किसी भी व्यक्ति का भाषा सम्बन्धी प्रशिक्षण कभी पूरा नहीं होता और प्रत्येक व्यक्ति की भाषा पर उसके पड़ोसियों की भाषा का प्रभाव निरन्तर पड़ता रहता है। किसी भी युग की भाषा की बात करते समय हमें यह मान लेना पड़ता है कि उस युग में एक मानव समाज या समुदाय विद्यमान था और भाषा उस जाति या वर्ग की विद्यमानता का प्रत्यक्ष चिन्ह है।[6]। (विशेष दे० प्रागैतिहासिक खोज)।

---

1. ह्विटने : लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 10-14।
2. दे० ब्रिटिश विश्वकोष।
3. ह्विटने : लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 307-8।
4. दे० ब्रिटिश विश्वकोष।
5. दे० समाज विज्ञान विश्वकोष।
6. दे० चैम्बर विश्वकोष।

यदि हम अपनी भाषण क्रिया पर विचार करें, तो उसके दो आधार स्पष्ट देख पड़ते हैं, व्यक्ति ध्वनियाँ और उनके द्वारा अभिव्यक्त होने वाले विचार और भाव। इस प्रकार भाषण का एक भौतिक आधार होता है और दूसरा मानसिक।[1] भाषा ध्वनि-अवयवों का एक भौतिक संचालन मात्र नहीं है, इसमें साथ ही कुछ मानसिक क्रिया भी संनिहित है। जब हम आम या लाल का उच्चारण करते हैं, तो यह केवल ध्वनि-अवयवों का संचालन मात्र नहीं है, बल्कि हमारे आम या लाल शब्द के उच्चारण से पूर्व हमारे मस्तिष्क में विचार-सामग्री का व्यवस्थापन, उसके तत्वों का मूर्त प्रतीकों में वितरण आदि मानसिक प्रक्रियाएँ काम कर चुकी हैं।[2] ये दोनों तत्व साथ-साथ चलते हैं। भाषा की सहायता के बिना विचार सम्भव नहीं है। किसी भी विचार के मन में आने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि विचार और ध्वनि प्रतिमा आ जाएँ, मुख से बोली ध्वनियाँ चाहे आएँ या नहीं। विचारों के साथ ही ये प्रतिमाएँ भी बनती बिगड़ती रहती हैं। इस प्रकार भाषा का विचार से अटूट सम्बन्ध है। इसे मनुष्य अपने पूर्वजों से सीखता आया है।[3] डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में[4] भाषा के मानसिक आधार का विचार दो भागों में बाँटा जा सकता है—(1) भिन्न-भिन्न वर्णात्मक शब्दों के बोलने और सुनने में साधन रूप वक्ता और श्रोता के मानसिक व्यापार, (2) शब्दों द्वारा वक्ता से प्रकट किए जाने वाले और श्रोता के मन में उत्पन्न होने वाले अर्थ का विचार। यह विचारात्मक मानसिक आधार भाषा का प्राण है। उसके बिना भाषा का अस्तित्व असम्भव है। ग्रामोफोन के रिकार्ड से भी अर्थवान् ध्वनि निकलती है, पर उसके पीछे कोई मानसिक आधार नहीं है, अतः उसे भाषा नहीं कह सकते।[5] भाषा का यह मानसिक आधार शब्दों के यादृच्छिक उच्चारण में नहीं, बल्कि उनके साथ निश्चित अर्थों और भावों के सहयोजन में स्फुट होता है। इसीलिए भाषा के मानसिक आधार का सम्यक् विश्लेषण भाषा विज्ञान की शाखा अर्थ विचार में किया जाता है (दे० अर्थ विचार)। भाषा के सीखने की सामर्थ्य मनुष्य में स्वभावतः होती है और उचित वातावरण मिलने पर वह उसे सीख लेता है, अन्यथा नहीं। हम भाषा बचपन में सीखते हैं। यह प्रक्रिया बहुत धीमी होती है। बच्चा भाषा अपने साथियों और पड़ोसियों से स्वभावतः सीखता है, कोई उसे विधिवत् सिखाता हो ऐसी बात नहीं है। वह किसी शब्द को बार-बार दुहराए जाता हुआ देखता है और उसी ध्वनि का अनुकरण करने का अभ्यास करता है। पहले उसकी श्रवणेन्द्रिय विचलित होती है और फिर ध्वनि-अवयव। इस प्रकार आभ्यन्तर भाषण सुने हुए शब्दों और वाक्यों के स्मृति-बिम्ब पर निर्भर है। इन्ही स्मृति-बिम्बों को

1. भाषा रहस्य, पृष्ठ 52।
2. दे० गुणे: इण्ट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलौलोजी, पृष्ठ 4।
3. दे० डा० बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ 8।
4. दे० डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 32।
5. भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 26।

भाषण या ध्वनिभाव कहा जाता है।[1] (विशेष दे० भाषण) ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक नहीं है कि किसी ध्वनि को वह ठीक उसी तरह बोले जिस तरह वह मनुष्य या मनुष्य समुदाय, जिससे सुनकर उसने सीखा है, बोलता है, और न ठीक उसी अर्थ में।[2] ध्वनि-अवयवों के सम्यक् रूप से विकसित न हो सकने के कारण उच्चारण तो वह प्रायः गलत करता है और विशेषतः भीतरी अंगों से निकलने वाली (कंठ्य, तालव्य आदि) ध्वनियों के शुद्ध उच्चारण में तो विशेष अधिक समय लगता है। बच्चों द्वारा उच्चरित ध्वनियों के क्रम को देखने से पता चलता है कि यह क्रम कितना वैज्ञानिक है। बच्चे सबसे पहले ओठों से बोली जाने वाली पवर्गीय ध्वनियों का ही उच्चारण करते हैं और इसीलिए प्रायः सभी निकट सम्बन्धियों के सम्बोधन पवर्गीय वर्णों वाले शब्दों से बनते हैं, फिर तवर्ग (दंत्य) और टवर्ग (मूर्धन्य) ध्वनियाँ आती हैं और अन्त में तालव्य और कंठ्य। पीछे का यह क्रम सभी बच्चों के विषय में बिलकुल दृढ़ और सुनिश्चित क्रम ही हो, ऐसी बात तो नहीं है, पर कंठ्य और तालव्य ध्वनियों के लिए मूर्धन्य और दंत्य ध्वनियों का उच्चारण प्रायः सभी बच्चे करते हैं, जैसे काका को टाटा और चाचा को ताता आदि। परन्तु बच्चा यह नहीं समझता कि उसने उस शब्द का गलत उच्चारण किया है। साथ ही एक प्रकार की ध्वनियों के अनुसार उनके सादृश्य पर वह वैसी ही अन्य ध्वनियों का भी प्रयोग करने लगता है और इस प्रकार भाषा परम्परागत या समाजगत ही नहीं, उसके लिए व्यक्तिगत भी बन जाती है।

इससे हम भाषा के भौतिक आधार या बाह्य भाषण तक पहुँच जाते हैं। भौतिक आधार भाषा का शरीर है। विचार के पहुँचाने के लिए इस वाहन का सहारा मनुष्य को लेना पड़ता है।[3] भाषा के भौतिक आधार से अभिप्राय वायु के उन कम्पनों से है जो वक्ता के बोलने के शरीरावयवों के व्यापार से उत्पन्न होते हैं और श्रोता की श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचते हैं। शब्द करने से पहले हमारे फेफड़ों में वायु का होना आवश्यक है। बोलते समय हमारे बोलने के शरीरावयवों में कम्पन होने लगते हैं। उनके कम्पनों से फेफड़ों से निकलती हुई वायु में, जो शब्द का माध्यम है, कम्पन पैदा हो जाते हैं। वायु के यही कम्पन लहर रूप में चलकर श्रोता की श्रवणेन्द्रिय तक पहुँच-कर उसमें कम्पन उत्पन्न कर देते हैं। इसी को शब्द का सुनना कहते हैं।[4] डा० गुणे[5] ने फेफड़ों से बाहर निकलने वाली इस वायु की प्रक्रिया पर और अधिक प्रकाश डाला है। यह वायु गले के ऊपर आकर दो मार्गों से जा सकती है—मुख के बन्द होने पर नाक के स्वाभाविक मार्ग से और जब कौआ (अलिजिह्व) वह मार्ग बन्द

1. दे० गुणे : इण्ट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 7।
2. डा० बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ 9।
3. भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 26।
4. डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 29।
5. डा० पी० डी० गुणे : इण्ट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी पृष्ठ 5।

कर देता है, तो मुख-विवर से होकर। मुख-विवर में प्रविष्ट होते ही यह वायु ध्वनि बन जाती है। जीभ इसे मुख के विविध भागों में बाधा देती है और जब ध्वनि उससे टकराकर स्फोट करती है, तो अनेक व्यंजनों की सृष्टि होती है। जब जीभ वायु को बाधा नहीं देती, बल्कि उसके मार्ग को चौड़ा या संकरा कर देती है, तो अनेक प्रकार के स्वरों की सृष्टि होती है। इन्हीं स्वर-व्यंजनों से—वर्णों से—शब्द बनते हैं और शब्द से वाक्य और भाषा (विशेष दे० ध्वनि, ध्वनि-अवयव, स्फोट, ध्वनि विचार, ध्वनि तत्व, ध्वनि विज्ञान)। परन्तु इन सभी वर्णों के उच्चारण का स्वर या लहजा एक रूप नहीं होता। किसी शब्द के सभी अक्षर एक रूप नहीं बोले जाते। किसी पर स्वराघात अधिक तेज होता है और किसी पर कम, किसी पर संगीतात्मक और किसी पर बलात्मक (विशेष दे० स्वराघात)। यह तो उच्चारण की अथवा भाषा के बोले जाने वाले स्वरूप की बात हुई, परन्तु चिरकाल से भाषा का लिखित स्वरूप भी भाषागत विकास का एक अंग तथा सामाजिक संस्कृति का एक निश्चित प्रतीक रहा है। भाषा की इस लेखन कला को लिपि (दे० यथा०) कहते हैं, और भाषा के प्रत्येक विवेचन में लिपि के विवेचन का एक विशेष स्थान होता है।

भाषा का अन्त्यावयव शब्द होता है।[1] भाषा के विश्लेषण में शब्द का भी विशेष स्थान है। शब्द का यह विश्लेषण तीन प्रकार से होता है। पहले तो उपर्युक्त रूप में शब्द ध्वनियों का समुदाय मात्र है। दूसरे वह भाव या अर्थ का प्रतिबिम्ब भी है (दे० अर्थ, अर्थतत्त्व, अर्थविचार, शब्दार्थ सम्बन्ध, अर्थ निर्णय)। तीसरे वह सार्थक ध्वनि होने के अतिरिक्त वाक्य का अवयव भी है और उसके स्वरूप में, वाक्य में स्थिति के अनुसार विशेषतः योगात्मक शब्दों में परिवर्तन भी होते रहते हैं। (विशेष (दे० वाक्य, वाक्य-विचार, पद, सम्बन्ध तत्व, रूप विचार)। आरम्भ में भाषा में शब्दों के रूपों की संख्या अपेक्षतया अधिक रहती है और नियमों के स्थान पर अपवादों का आधिक्य होता है, पर आगे चलकर एक शिष्ट सम्मत टकसाली भाषा बन जाती है और वैयाकरणों द्वारा उसके नियम निर्धारित कर दिए जाते हैं (दे० व्याकरण)। भाषा के विकास के साथ उसमें अभिव्यंजना शक्ति तो बढ़ती है। साथ ही सामान्य से सामान्य भावनाओं के प्रकाशन के लिए पृथक् शब्दों का निर्माण भी होता रहता है। मनुष्य के सांस्कृतिक प्रौद्योगिक विकास के साथ ही उसकी भाषा के शब्दों की संख्या भी बढ़ती जाती है, यद्यपि व्यक्ति-व्यक्ति के शब्द-समूह के विषय में उसके व्यक्तिगत सांस्कृतिक विकास के अनुसार अन्तर रहता है (विशेष दे० शब्द, शब्द शक्ति, शब्द समूह)। इसके साथ ही शब्दों की उत्पत्ति के कारणों पर विचार करना भी बड़ा मनोरंजक और रोचक कार्य होता है। शब्दों की यह वृद्धि किस रूप में हुई और विशिष्ट शब्द, विशिष्ट अर्थ के द्योतक किस रूप में बने, भाषा का यह पहलू भी अत्यन्त मनोरंजक पहलू है। (विशेष दे० व्युत्पत्ति शास्त्र)।

1. भाषा रहस्य, पृष्ठ 53।

किसी वस्तु के लिए किसी ध्वनि संकेत का प्रयोग अर्थात् एक शब्द का एक अर्थ से सम्बन्ध सर्वथा आकस्मिक होता है। धीरे-धीरे संसर्ग और अनुकरण के कारण वक्ता और श्रोता उस सम्बन्ध को स्वाभाविक समझने लगते हैं।[1] इस आधार पर कुछ लोगों का विचार है कि लोग किसी शब्द को तर्क की कसौटी पर बिना कसे यथा व्यवहृत रूप में प्रयुक्त करने लगते हैं और इसी कारण भाषा पूर्वजों से सीखनी पड़ती है और वह परम्परागत वस्तु होती है। परन्तु अन्य अनेक विद्वानों का मत यह है कि भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है। विदेश में स्थित बालक विदेशी भाषा सीख जाता है अथवा दोनों भाषाएँ सीख जाता है[2] और उस स्थान की भाषा को भी उतने ही सहज रूप में सीख लेता है, जितने सहज रूप में वह अपनी परम्परागत भाषा सीखता है। दिल्ली में रहने वाले बंगाली या मद्रासी बच्चे दिल्ली की भाषा हिन्दी भी उतने ही स्वाभाविक रूप में सीख जाते हैं, जितने स्वाभाविक रूप में वे अपने घर की भाषा सीखते हैं। अतः भाषा किसी जाति या परम्परा का चिह्न नहीं है। डा० गुणे ने इतिहास से प्रमाण उद्धृत करते हुए इस बात की पुष्टि की है।[3] फ्रांसीसी सेल्टिक परम्परा में जन्मे हैं, परन्तु वे लेटिन भाषा से उद्भूत फ्रेंच भाषा बोलते हैं। भारत के पारसियों की भी यही दशा है। मध्य भारत और सतपुड़ा के भील भीली भाषा बोलते हैं, यद्यपि परम्परा और जाति की बात मानें, तो उन्हें मुंडा वर्ग की कोई भाषा बोलनी चाहिए। भाषा रहस्यकार के शब्दों में यही दशा हब्शियों की भी है। वे प्रायः संसार के सभी बड़े-बड़े देशों में फैले हुए हैं, पर वे कहीं अफ्रीका की भाषा नहीं बोलते। अतः भाषण शक्ति को छोड़कर भाषा का और कोई ऐसा अंग नहीं है, जो प्राकृतिक हो अथवा जिसका सम्बन्ध जन्म, वंश या जाति से हो।[4] यदि भाषा पैतृक सम्पत्ति होती तो लखनऊ में भेड़िए द्वारा उठा ले जाया गया रामू अपने पिता की भाषा बोलता, भेड़िए की बोली में गुर्राता नहीं। इस प्रकार भाषा सर्वांशतः एक अर्जित सम्पत्ति है।

प्रत्येक व्यक्ति भाषा का अर्जन करता है, उत्पादन नहीं। भाषा एक अर्जित सम्पत्ति होते हुए भी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। एक व्यक्ति उसका अर्जन कर सकता है, पर वह उसे उत्पन्न नहीं कर सकता। भाषा की रचना समाज द्वारा ही होती है।[5] यदि व्यक्ति भाषा का उत्पादन करता तो उसका सारा जीवन भाषा के उत्पादन में ही व्यय हो जाता तथा कुछ भी प्रगति न हो पाती और साथ ही वह जो कुछ गढ़ता वह दूसरों के लिए सर्वथा दुर्बोध होता।[6] भाषा पूर्णतः आदि से अन्त तक समाज से

1. भाषा रहस्य, पृष्ठ 54।
2. ह्विटने : लाइफ एंड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 8।
3. डा० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 9।
4. भाषा रहस्य, पृष्ठ 55-56।
5. वही।
6. डा० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 9।

सम्बद्ध है। अकेले में सोचते समय हम जब भाषा का सहारा लेते हैं तब समाज नहीं रहता, न उसकी आवश्यकता रहती है, पर वह सोचना स्वयं समाज-सापेक्ष है।[1] अरस्तू ने सभी कलाओं का मूल अनुकरण माना है, भाषा के अर्जन में भी मनुष्य समाज की भाषा का अनुकरण करता है। सम्बन्धियों और पड़ोसियों की बात सुनकर वह स्वयं वैसे ही बोलने का अभ्यास करता है और भाषा सीख जाता है।

हममें से अधिकांश व्यक्ति भाषा के केवल वर्तमान स्वरूप से ही परिचित होते हैं, परन्तु कुछ लोग उसका स्रोत हजारों वर्ष पीछे तक खोजते हैं। भाषा का इतिहास खोजने में प्राचीन लिखित भाषाओं से विशेष सहायता मिलती है, क्योंकि मौखिक भाषाओं के कुछ भी अभिलेख नहीं बचे हैं। परन्तु मिश्री और अन्य सेमेटिक भाषाओं के लिखित रूप भी विशेष सहायक इसी कारण नहीं होते कि उनसे उस काल के स्वरों का कुछ पता नहीं लग पाता। ग्रीक, संस्कृत, लेटिन आदि के विषय में यद्यपि स्वर-व्यंजन तो विदित हो गए हैं, तथापि तत्कालीन स्वराघात और लहजों आदि का कुछ ज्ञान आज संभव नहीं है। ध्वन्यनुरूप लिपि बोली जाने वाली भाषा को अधिकतम शुद्ध रूप में व्यक्त करने का एक प्रयास मात्र है और जब रूढ़िवादी या अपरिवर्तनवादी लोग पुराने ही रूप में शब्दों को लिखते रहते हैं, तो और भी कठिनाई पैदा हो जाती है। कविता की तुकें तथा अपढ़ों द्वारा की जाने वाली भूलें भाषा के बोले जाने वाले स्वरूप का ज्ञान कराने में पर्याप्त सहायक होती हैं और तत्कालीन ध्वनिशास्त्र के विवेचन, यदि उपलब्ध हों तो, विशेष सहायक हो सकते हैं। अतः भाषा का ऐतिहासिक विवेचन करते समय केवल लिखित भाषा का सहारा लेना भ्रामक सिद्ध हो सकता है।[2]

भाषा के विकास के लिए दे० भाषा-विकास; भाषा के विविध स्वरूपों और प्रकारों के लिए दे० भाषा-स्वरूप; भाषा की उत्पत्ति के लिए दे० भाषोत्पत्ति और भाषा की प्रक्रिया के लिए दे० भाषण।

भाषा मिश्रण—भाषा समाजगत वस्तु है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं कि एक भाषा वालों का ही एक राष्ट्र हो, एक समाज हो और वह अन्य भाषाभाषियों के सम्पर्क में न आए। भौगोलिक ऐतिहासिक व्यापारिक और राजनीतिक आदि कारणों से दो भिन्न भाषा-भाषी वर्गों को भी एक-दूसरे के सम्पर्क में आना पड़ता है और कोई भी राष्ट्र पूर्णतः एकाकी नहीं रहता है। ऐसे सभी सम्पर्कों के प्रतिफल भाषा पर पड़ते हैं। इस प्रकार उधार लिये गए शब्द थोड़े-बहुत तो नयी भाषा में घिस जाते हैं और उस भाषा के व्याकरण नियमों में ही नहीं बंध जाते बल्कि ध्वनि नियमों के अनुसार भी उनमें परिवर्तन आ जाते हैं। यद्यपि यह ध्वनि परिवर्तन सर्वत्र उन्हीं नियमों का अनुसरण नहीं करता है।[3] कुछ ऋण अप्रत्यक्ष रूप में लिए जाते हैं।

1. भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 28।
2. दे० ब्रिटिश विश्वकोष।
3. दे० वही।

अंग्रेजी पर भी अनेक भाषाओं की छाप पड़ी है। कंगारू शब्द आस्ट्रेलिया से, जेबरा अफ्रीका से, टी चीन से, काफी अरबी से, चाकलेट मैक्सिकन से, सत्याग्रह, लाख आदि हिन्दी से लिये गए हैं। हिन्दी पर भी लगभग एक दर्जन विदेशी भाषाओं की थोड़ी बहुत छाप है। अरबी-फारसी और अंग्रेजी शब्दों की भरमार तो सर्वविदित है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अंग्रेजी की विस्तृत शब्दावली के साथ-साथ निम्न भाषाओं के भी शब्द गिनाए हैं[1]—पुर्तगाली (अनन्नास, अल्मारी, अचार, आलपीन, इस्पात, इस्त्री, कमीज, कप्तान, कनिस्तर, कमरा, काम, काफी, काजू, काकातुआ, क्रिस्तान, किरच, गमला, गारद, गिरजा, गोभी, चाबी, तम्बाकू, तौलिया, तोला, नीलाम, परात, पाउरोटी, पादरी, पिस्तौल, पीपा, फर्मा, फीता, फ्रांसीसी, बर्गा, बपतिस्मा बालटी, बिसकुट, सुसाम, बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, मेज, यशू, लबादा, संतरा, साया, सागू); फ्रांसीसी (कारतूस, कूपन, अंग्रेज); डच (तुरुप, बम); पश्तो (पठान, रोहिला) और तुर्की (आका, उजबक, उर्दू, कलगी, कैंची, काठू, कुली, कोर्मा, खातुन, खाँ, खानुम, गलीचा, चकपक, चाकू, चिक, तमगा, तगार, तुरुक, तोप, दरोगा, बख्शी, बावर्ची, बहादुर, बीवी, बेगम, बकचा, मुचलका, लाश, सौगात, खुराक, ची—जैसे मसालची, खजांची, आदि में)। उपर्युक्त कंगारू (आस्ट्रेलिया), जेबरा (अफ्रीका) और चाकलेट (मैक्सिकन) शब्द अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी आ गए हैं। द्राविड़ (पिल्लै पुत्र) शब्द कुछ अर्थ-परिवर्तन (कुत्ते के बच्चे के अर्थ में) हिन्दी में आया है। कोड़ी शब्द और बीस-बीस करके गिनने की प्रणाली शायद कोल भाषाओं का प्रसाद है। पड़ोसी भारतीय आर्य भाषाओं उड़िया, बंगला, मराठी, गुजराती और पंजाबी आदि से भी बहुत शब्द हिन्दी में आकर घिस-पिट गए हैं। संस्कृत से मिले तत्सम और तद्भव शब्द तो हिन्दी के अपने ही शब्द हैं।

भाषा-वर्गीकरण—विश्व की विभिन्न भाषाओं में परस्पर कुछ समानताएँ-विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। ये समानताएँ दो प्रकार की होती हैं। पहली समानता है सम्बन्ध तत्व अर्थात् प्रत्यय या शैली की समानता। इस समानता के आधार पर भाषाओं का जो वर्गीकरण किया जाता है, उसे आकृतिमूलक वर्गीकरण (दे० यथा०) कहते हैं। समानताओं का दूसरा प्रकार है अर्थ तत्व या भाषा-सामग्री की समानता। इस समानता के आधार पर भाषाओं का जो वर्गीकरण किया जाता है उसे ऐतिहासिक या पारिवारिक वर्गीकरण (दे० पारिवारिक वर्गीकरण) कहते हैं।

भाषा वैज्ञानिकों ने अपने अजस्र अध्ययन के बल पर यह निश्चित किया है कि दुनिया की सारी भाषाओं में ऊपरी विभिन्नता होने पर भी उनमें कुछ बातों में परस्पर समता या एकता रहती है। पड़ोस की भाषाओं में किसी अलंघ्य भौगोलिक भाषा-सीमा के सुनिश्चित न रहने पर उनमें अनेक बातों में समता आज भी देखने को मिलती है, यद्यपि इस समता व विषमता के लिए पड़ोस अनिवार्यतः आवश्यक नहीं है।

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास।

यह समता विशेषतः दो प्रकार से परिलक्षित होती है। एक तो शब्दों में एक प्रकार के सम्बन्ध तत्व (दे० यथा०) और शैली का अपनाव और दूसरे सम्बन्ध तत्व की विभिन्नता के होते हुए भी अर्थतत्व (दे० यथा०) और सामग्री का एक ही प्रकार का होना। सम्बन्धतत्व की समता पर भाषाओं का वर्गीकरण आकृति मूलक वर्गीकरण (दे० यथा०) कहा जाता है। साथ ही अर्थतत्व और सामग्री आदि की दृष्टि से सारी दुनिया की भाषाओं के लिए कुछ परिवारों की कल्पना की गई है और उन परिवारों की भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन की पृष्ठभूमि में सामंजस्य स्थापित किया गया है। इस प्रकार के वर्गीकरण को पारिवारिक वर्गीकरण या ऐतिहासिक वर्गीकरण (दे० यथा०) कहते हैं। इसका आधार शब्द व्युत्पत्ति और व्याकरण है (और दे० भाषा-परिवार)।

भाषा विकास—भाषा में व्यक्ति की महत्ता, समाजगत विविधता, ध्वनिगत भेदों, भाषा के स्वरूप आदि (दे० भाषा) सब कारणों से यह सिद्ध हो जाता है कि भाषा में विकार अथवा परिवर्तन अवश्यंभावी है, इसे भाषा का विकास कहते हैं। एक साधारण मनुष्य भाषा की परिवर्तन शीलता को ठीक-ठीक अनुभव नहीं करता। जिस भाषा को वह बचपन से लेकर बुढ़ापे तक बोलता है, उसी को दूसरे लोग बच्चों से बूढ़ों तक बोलते हुए देखते हैं। इसलिए वह यही समझता है कि भाषा इसी रूप में स्थिर है और आगे भी रहेगी।[1] परन्तु वस्तुतः मानव संसार की प्रत्येक वस्तु स्वयं मनुष्य भी परिवर्तनशील है। उसका विकास होता है। अतः उसकी भाषा में परिवर्तन और विकास का होना स्वाभाविक ही है। जिस प्रकार धीरे-धीरे मनुष्य जाति का उद्भव और विकास हुआ है, उसी प्रकार उसकी भाषा का भी उद्भव और विकास हुआ है। मनुष्य जीवन का विकसित वैचित्र्य भाषा में भी प्रतिफलित देख पड़ता है।[2] किसी भी भाषा को उदाहरण के लिए ले लें। उसके प्रत्येक अवयव में—क्या ध्वनि, क्या पद, क्या वाक्य-विन्यास और क्या अर्थ—सभी में परिवर्तन होता रहता है और इसका अन्दाज किसी भी भाषा के सौ दो सौ वर्ष पूर्व के रूप के साथ तुलना करने से लग सकता है।[3] अनुकरणशील प्राणी होने पर भी मनुष्य का अनुकरण सर्वथा पूर्ण नहीं होता और शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के कारणों से अनुकरण में कुछ न कुछ भेद आ जाना नितान्त स्वाभाविक है। पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी तक जाने में इस प्रकार भाषण सामग्री में परिवर्तन होता रहता है, यद्यपि इनमें से कुछ अत्यन्त सामान्य परिवर्तन होते हैं और कुछ गम्भीर। ये पिछले प्रकार के परिवर्तन ही भाषेतिहास का अनुशीलन करने वालों के अध्ययन का मुख्य विषय होते हैं।[4] यद्यपि यह ध्यान रखना होगा कि भाषण सामग्री में इस

1. डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 79।
2. भाषा रहस्य, पृष्ठ 56।
3. डा० बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 26।
4. दे० ब्रिटिश विश्वकोष।

परिवर्तन की या नव-निर्माण की गुँजाइश अपरिमित रूप में नहीं होती कुछ टर्की-तातार भाषाएँ एक हजार वर्षों में भी नाम मात्र को परिवर्तित हुई हैं, और फिनो-उग्रिकन अब भी सरल समीकरणों के आधार पर चलती है।[1] फिर भी प्रत्येक भाषा अपने जीवन-काल के प्रत्येक क्षण में परिवर्तन की ओर अग्रसर होती रहती है।[2]

पाल ने इस विकास के तीन कारण गिनाए हैं। पहले तो प्रत्येक पदार्थ बारम्बार बिम्बग्रहण कराते-कराते और बारम्बार दुहराए जाने के कारण दुर्बल हो जाता है। दूसरे भाषण, श्रवण और विचार तीनों ही स्थलों पर भाषण-सामग्री में कुछ नई वस्तु जुड़ जाने की गुंजाइश रहती है। दुहराने में भी भाषण यन्त्र के कुछ क्षण विशेष शक्तिशाली हो जाते हैं। तीसरे पुराने भाषण-तत्वों को सुदृढ़ बनाने और नया मसाला जोड़ने में भाषण अवयवों में स्थिति-परिवर्तन होता रहता है। भाषा के इस विकास या परिवर्तन का प्रभाव ध्वनि (दे० ध्वनि विचार), अर्थ (दे० अर्थ-विचार), पद (दे० रूप विचार) और वाक्य (दे० वाक्य विचार) चारों अंगों पर पड़ता है, और इसके कारणों का पृथक्-पृथक् स्थल पर सम्यक् विवेचन किया गया है। यहाँ पर कुछ सामान्य कारणों को सम्मिलित रूप में लिया जा सकता है। महाभाष्यकार का मत है कि सभी शब्द देशान्तर में प्रयुक्त होते हैं[3] अर्थात् स्थान भेद से भाषा में परिवर्तन हो जाते हैं। यह बात इतनी सर्वविदित है कि इसके प्रमाण में उदाहरण भी उपन्यस्त करना आवश्यक नहीं है। कहावत है कि कुछ कोसों के बाद भाषा बदल जाती है। जितनी दूरी बढ़ती जाती है, भाषागत भेद भी उतनी ही तीव्रता से बढ़ता जाता है। यदि कोई व्यक्ति हिन्दी प्रदेश के पश्चिम से (मान लो राजस्थान से) पूर्व की ओर चले, तो जयपुर, दिल्ली, अलीगढ़, प्रयाग और पटना की बोलियों में उसे स्पष्ट अन्तर दीख पड़ेगा। प्रायः देखा जाता है कि उच्चारण या लहजे की थोड़ी विशेषता या किसी विशेष शब्द या वाक्यांश के प्रयोग से वक्ता का जिला ही नहीं, किन्तु कभी-कभी नगर भी ज्ञात हो जाता है। प्रदेश का ज्ञान हो जाना तो कोई कठिन बात नहीं।[4] परन्तु स्थानीय बोलियों पर शिक्षितों का प्रभाव पड़ता है और एक प्रधान भाषा उन सब को एक सूत्र में बाँधे रहती है। वैसे देखा जाए तो प्रान्त या नगर ही नहीं, कुटुम्ब-कुटुम्ब और व्यक्ति-व्यक्ति की भाषा में भी अन्तर होता है। कुटुम्ब विशेष की सांस्कृतिक परम्परा और विकास से उसकी भाषा भी अनुप्राणित होती है।

डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार भाषा के विकास के मूल कारणों के सम्बन्ध से विद्वानों में सामान्य रूप से चार मत चलते हैं। (१) शारीरिक विभिन्नता—एक मनुष्य का शरीर-संस्थान दूसरे से भिन्न होने के कारण उनके उच्चारण-अवयव भी

1. चैम्बर विश्वकोष।
2. डा० गुणे : इण्ट्रोडक्शन टु कम्परेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 14।
3. महाभाष्य, पस्पशाह्निक।
4. डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 93।

भिन्न प्रकार के होते हैं और इससे भाषा भेद हो जाता। परन्तु डा० सक्सेना के अनुसार यह बात विशेष युक्तिसंगत नहीं है। एक ही समुदाय में रहने वाले विविध आकार या डील-डौल के शरीर वाले व्यक्तियों में भाषागत विभिन्नता नहीं आती, और दूसरी जातियाँ भी उस देश में बसकर सहज ही वहाँ की भाषा सीख जाती हैं। दूसरा मत यह है कि ठण्डे पहाड़ों या गर्म रेगिस्तानों जैसी विकट भौगोलिक परिस्थिति में रहने वाले व्यक्ति मैदानों के व्यक्तियों की अपेक्षा मुँहबन्द रखते हैं, इससे भाषा भेद हो जाता है। परन्तु ऐसी विकट परिस्थितियों का सामना करने वाले व्यक्तियों के अवयव मैदान वालों के अवयवों की अपेक्षा कहीं दृढ़ होते हैं, अतः यह बात भी टिकती नहीं। तीसरा मत है कि जातीय मानसिक अवस्था-भेद से भाषा भेद होता है और तदनुसार भाषा में प्रवाह-शैथिल्य, सुकुमारता-रूक्षता आदि आती हैं, परन्तु प्रत्येक भाषा वाला अपनी ही भाषा को सर्वाधिक प्रवाहपूर्ण, मधुर और सुकुमार बताता है। चौथा मत प्रयत्न-लाघव का है, जो मनुष्य के प्रत्येक कार्य में देखा जाता है और सचमुच भाषा-विकास का प्रधान कारण है। डा० मंगलदेव ने इन कारणों को असाक्षात् और साक्षात् दो वर्गों में बाँटा है।[1] जलवायु का भेद, भिन्न-भिन्न भाषओं को बोलने वाली जातियों का परस्पर सम्पर्क आदि असाक्षात् या आनुषंगिक कारण हैं। ये बाह्य कारण भी कहे जाते हैं। नैतिक वातावरण (गर्मी-सर्दी का स्वभाव, पर प्रभाव संचार सुविधा से एकता अन्यथा विभिन्नता, उपजाऊ भूमि में सांस्कृतिक उन्नति, अन्यथा नहीं), और सांस्कृतिक प्रभाव (जैसे द्रविड़, आर्य, यवन संस्कृतियों का सम्मेलन, आर्यसमाज जैसी संस्था-विशेष का प्रभाव या किसी कवि विशेष का प्रभाव आदि) भी भाषा-विकास के आनुषंगिक कारण हैं। साक्षात् कारण मुख्यतया दो होते हैं—1. प्रयत्न की शिथिलता या उच्चारण के लिए अपेक्षित प्रयत्न की परिमितता या लाघव और 2. शब्दों की रचना में सादृश्य (अथवा मिथ्या-सादृश्य)। प्रयत्न-लाघव की दिशाएँ विशेषतः ध्वनि परिवर्तन (दे० ध्वनि विचार) में स्फुटित होती हैं, परन्तु संक्षेप में हम उनको यहाँ पर ले सकते हैं। 1. वर्ण व्यत्यय या स्थान विपर्यय या परस्पर विनिमय—जैसे नखलऊ, (लखनऊ), (बूड़ना) डूबना, मतबल (मतलब) काचू (चाकू) आदि। 2. लोप (ध्वनि लोप, स्वरलोप या अक्षर लोप—जैसे—पिअ (प्रिय), छोटी जी (छोटी जिज्जी), जहि (जहीहि) आदि। 3. समीकरण—(क) पुरोगामी—जैसे चक्क (चक्र), लग्न (लग्ग) और (ख) पश्चगामी—जैसे वक्कल (वल्कल), उक्खु (इक्षु) आदि। 4. विषयीकरण—जैसे मुकुल (मउल-मौर), अष्टमी (अट्ठिमी), लांगल (नांगल) आदि। 5. स्वर भक्ति या विप्रकर्ष—जैसे भक्त (भगत), इन्द्र (इन्दर) आदि। 6. प्रागुपजन या अग्रागम—जैसे इस्कूल, इस्टेशन, अस्नान, इस्त्री आदि। 7. उभय-संमिश्रण—जैसे अवध में फिन शब्द फिर और पुनः के संमिश्रण से।

---

1. भाषा विज्ञान, पृष्ठ 106-8।

प्रयत्न लाघव के सामान्य उदाहरण सतेन (सत्येन्द्र), मिमुर (रामेश्वर), हिरदा (हीरावल्लभ दादा) आदि में देखे जा सकते हैं।

सादृश्य अथवा मिथ्या सादृश्य भी भाषा के विकास में विशेष सहायक होता है, जैसे करिणा के सादृश्य पर हरिणा और कर्माणि के सादृश्य पर गृहाणि। इसी प्रकार पाश्चात्य के सादृश्य पर पौर्वात्य शब्द चल पड़ा है।

उपर्युक्त कारणों से विपरीत कारणों के उपस्थित होने पर भाषा के विकास में व्याघात भी पड़ता है।[1] संचारहीन भौगोलिक स्थिति में भाषागत विकास नहीं हो पाता, जैसे भारोपीय परिवार की आइसलैंडिक अपेक्षतया अविकसित रही। इसी प्रकार रेगिस्तानी, जंगली आदि भाषाएँ भी कम विकसित होती हैं। प्रचलित भाषा से चिपटे रहने की भावनाएँ भाषा के विकास में बाधक होती हैं। समाज के भय और व्याकरण सम्मत आदर्श भाषा का प्रयोग भी भाषा के अग्रेतर विकास में बाधक होता है। विशेष दे० भाषा।

भाषा विज्ञान—तुलनात्मक भाषाशास्त्र या केवल भाषा शास्त्र (फिलोलौजी) को भाषा विज्ञान (साइंस आफ लैंग्वेज) की कहते हैं। तत्काल प्रचलित तुलनात्मक भाषा-शास्त्र, वैज्ञानिक व्युत्पत्ति शास्त्र, ध्वनि विचार, शब्द विचार और लिंग्विस्टिक्स आदि नामों के स्थान पर मैक्समूलर ने सीधासादा भाषा विज्ञान शब्द अधिक अच्छा समझा,[2] और तभी से इस शास्त्र के लिए यह शब्द प्रचलित हो गया है। यद्यपि चैम्बर विश्व-कोष के अनुसार इंगलैंड में विज्ञान शब्द के संकीर्ण अर्थ के कारण इस शब्द को कुछ क्षति पहुँची है और भारत में भी विज्ञान शब्द विशेषतः भौतिकी और रसायन आदि के लिए प्रयुक्त होता है। कदाचित सभी विश्वकोषों में इसी कारण भाषा के गठन और विकास आदि से सम्बन्धित इस शास्त्र की विवेचना मूलतः भाषा शब्द के अन्तर्गत की जाती है। हिन्दी में यद्यपि आरम्भ से ही भाषा विज्ञान शब्द विशेष प्रचलित रहा है (और इसी कारण हम इसको इस शब्द के अन्तर्गत ही ले रहे हैं) तथापि ऐतिहासिक तुलनात्मक व्याकरण, भाषातत्व, भाषा शास्त्र, भाषा विचार आदि नाम भी व्यवहृत होते हैं और डा० मंगलदेव शास्त्री ने वैकल्पिक नाम तुलनात्मक भाषाशास्त्र दिया है। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार भाषा विकास के जिन मूल तत्वों को मनुष्य की बुद्धि ने पकड़ लिया है, ये उस अध्ययन को विज्ञान की श्रेणी में स्थान पाने का अधिकारी बनाते हैं अतः इसका नाम भाषा विज्ञान उपयुक्त है, भाषा शास्त्र नहीं।[3] वस्तुतः भाषा विज्ञान और भाषा शास्त्र दोनों शब्दों का प्रयोग इस शास्त्र के लिए किया जा सकता है। भाषा-विज्ञान शब्द इस शास्त्र के लिए रूढ़ हो चुका है, यह तर्क इस शब्द के पक्ष को और भी पुष्ट करता है। तथापि भाषा शास्त्र शब्द भी सर्वथा त्रुटिहीन रूप में इस शास्त्र का निर्देश करता है। भारत की अन्य भाषाओं में भी भाषाशास्त्र

1. भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 34-35।
2. मैक्समूलर, लैक्चर्स : जिल्द 1, पृष्ठ 4।
3. सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ 4।

नाम का भाषा विज्ञान नाम की अपेक्षा अधिक प्रचलन है। दूसरे इस शब्द का प्रयोग करने से विज्ञान शब्द को लेकर उठाई जाने वाली आपत्ति भी नहीं उठाई जा सकती। अनेक दृष्टियों से भाषा को लेकर होने वाली समग्र खोज की जितने व्यापक रूप में इस शब्द द्वारा अभिव्यक्ति होती है, उतनी शायद भाषा विज्ञान शब्द से भी नहीं हो सकती। परन्तु इस विवाद में न पड़कर हमने दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया है। ग्रन्थ के नामकरण में भाषा शास्त्र शब्द अपनाया गया है, और इस शास्त्र की सविस्तार चर्चा लोक-प्रचलित भाषा-विज्ञान शब्द के अन्तर्गत की जा रही है। स्वयं यूरोप में, जहाँ इस शास्त्र का जन्म हुआ है, आरम्भ में इसके लिए फिलोलौजी (भाषा या शब्द से प्रेम) शब्द प्रचलित हुआ। बाद में इसके पहले कम्पैरेटिव (तुलनात्मक) विशेषण जोड़ा गया, परन्तु पीछे से वह फिर हटा दिया गया। इस शास्त्र की जन्मस्थली जर्मनी में Sprachwissenschaft नाम बहुत समय तक चलता रहा। फ्राँसीसियों ने लिंग्विस्टिक्स शब्द अपनाया। मैक्समूलर ने उपर्युल्लिखित भाषा विज्ञान (साइंस आफ लैंग्वेज) शब्द दिया। इस शताब्दी के शुरू में टकर ने अब तक के सभी शब्दों का वैज्ञानिक परीक्षण करते हुए उन्हें अशुद्ध बताकर साइंस आफ टंग या ग्लौटोलोजी नाम दिया। परन्तु यह नाम भी प्रचलित न हो सका और आज लिंग्विस्टिक और फिलोलौजी दोनों नाम चल रहे हैं। उसी प्रकार हमारे यहाँ भी भाषा-विज्ञान और भाषा-शास्त्र दोनों नाम चल सकते हैं।

भाषा विज्ञान की परिभाषा 'भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन या भाषा के ढाँचे और विकास[1] आदि का अध्ययन' शब्दों में की जाती है। ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा के जन्म, गठन, विकास, स्वरूप, अंग, परिवार आदि का विवेचन करने वाले शास्त्र को भाषा विज्ञान कहते हैं। भाषामात्र के विभिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन, मानवीय भाषण प्रक्रिया, भाषामात्र की उत्पत्ति, विकास, विकार, आदि का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन, अध्ययन और अनुशीलन भाषा विज्ञान है। हेनरी स्वीट के अनुसार भाषाओं के व्यावहारिक अध्ययन का वैज्ञानिक आधार भाषा-विज्ञान है, जो ध्वनिविज्ञान और मनोविज्ञान के सहारे बोली जाने वाली भाषा के शुद्ध प्रेक्षण से शुरू होता है और भाषा सम्बन्धी समग्र अध्ययन का आधार इस प्रक्रिया को बनाता है।[2] डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में भाषा विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें (1) सामान्य रूप से मानवी भाषा का, (2) किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का, और अन्ततः (3) भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।[3] ह्विटने के शब्दों में यद्यपि भाषा विज्ञान एक नया विज्ञान है, तथापि आधुनिक शास्त्रों में उसने एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। यह अपने लक्ष्य की निश्चितता,

1. ब्रिटिश विश्वकोष।
2. ए प्रैक्टिकल स्टडी आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 1।
3. भाषा विज्ञान, पृष्ठ 3।

पदार्थों की विशदता, उपायों की स्थिरता और परिणामों की सफलता—किसी भी दृष्टि से अन्य विज्ञानों से कम नहीं है। अनेक महत्त्वपूर्ण मानवीय भाषाओं के सूक्ष्म तथा गहन अध्ययन और शेष सभी के सावधानीपूर्वक किये गए परीक्षण और वर्गीकरण के आधार पर इसकी नींव बहुत दृढ़ रूप से स्थापित की गई है और इनसे मनुष्य तथा जाति के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ ऐसे तथ्यों का उद्घाटन किया गया है, जो अन्यथा सम्भव न था।[1]

तुलनात्मक भाषा विज्ञान और विशुद्ध भाषा विज्ञान का अन्तर यही है कि पहला केवल एक भाषा का नहीं बल्कि अनेक भाषाओं का अध्ययन है और अन्त में सभी भाषाओं का अध्ययन उसका ध्येय बन जाता है।[2] भाषा विज्ञान के निकट भाषा साधन मात्र है, या तुलनात्मक भाषा विज्ञान के लिए भाषा वैज्ञानिक अनुशीलन का ध्येय ही बन जाती है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान सम्बद्ध भाषाओं का एक-सा स्वरूप, विकास और अन्य असम्बद्ध भाषाओं से उसके अन्तर का निरूपण करता है। उन भाषाओं का अध्ययन पुराने शास्त्र ग्रन्थों के उद्धरणों आदि के आधार पर किया जाता है। कुछ कल्पित निर्देशात्मक शब्दों को तारांकित (*) करके उनका निर्देश किया जाता है। यह तुलनात्मक प्रक्रिया एक श्रमसाध्य प्रक्रिया है और विशेषत: पुरानी भाषाओं के आधार पर ही आगे बढ़ा जाता है।

ह्विटने के शब्दों में भाषा विज्ञान का लक्ष्य पशुओं के संकेतों से पृथक् मानवीय अभिव्यक्ति के साधन के रूप में भाषा की एकता का और साथ ही ढाँचे की दृष्टि से इसकी आन्तरिक विभिन्नता का अध्ययन करना है।[3] यह भाषाओं की समानता अथवा विभिन्नता के कारणों का अनुसन्धान करते हुए उनका वर्गीकरण करता है और उनकी समानता-विभिन्नता की सीमा निर्धारित करता है। किसी वर्ग-विशेष की भाषा के तुलनात्मक भाषा विज्ञान का लक्ष्य उन भाषाओं की पारस्परिक समानता खोजना और उसका स्पष्टीकरण करना है।[4]

अत: भाषा विज्ञान का क्षेत्र उतना ही विस्तृत है जितनी कि मनुष्य जाति, क्योंकि इसका सम्बन्ध मनुष्य मात्र की जीवित, मृत, साहित्यिक, असाहित्यिक, शुद्ध, अशुद्ध, लिखित, अलिखित, सभी प्रकार की भाषाओं की पर्यालोचना करना है।[5] इसका क्षेत्र किसी देश विशेष, काल विशेष, या जाति विशेष की भाषा के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है। उपर्युक्त तारांकित चिह्न वाले शब्दों की काल्पनिक भाषा तक इसके क्षेत्र में आती है। न केवल भूतकाल की भाषाओं का बल्कि वर्तमान भाषाओं का और उनके विकास की प्रत्येक दशा का अध्ययन इसके क्षेत्र में आता है। सभी सभ्य भाषाओं के

1. लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 5।
2. मैक्समूलर : लेक्चर्स, जिल्द 1, पृष्ठ 85।
3. लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 4।
4. डा० पी० डी० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 2।
5. वही, और दे० डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 3-4।

अध्ययन के साथ ही कभी-कभी भाषा के विकास और परिवर्तन के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के लिए असभ्य और अनगढ़-असंस्कृत भाषाओं का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। समग्र मानवी भाषाओं के स्वभाव, विकास, उत्पत्ति, आदि का अध्ययन इसके क्षेत्र में आता है। ध्वनियों का उद्भव, उनका अक्षरों में संयुक्त होना, फिर शब्दों और वाक्यों में उनका उपयोग यह सब इसके क्षेत्र में आता है। भाषा की उत्पत्ति, इसके कारण, विकास और परिवर्तन आदि के नियमों का अध्ययन भी इसकी परिधि में आता है। इसलिए तुलनात्मक और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं द्वारा वह भाषा के विकास का पूरा चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। शब्दों के प्रयोग और अर्थों से उनका सहयोग[1] और विचारों के वहन के लिए शब्दों का उपयोग आदि कारणों पर प्रकाश डालते हुए एक ओर वह मनोविज्ञान की सीमा-रेखा लांघ जाता है, तो दूसरी ओर ध्वनियों के उच्चारण की विवेचना करता हुआ वह शरीर-विज्ञान और श्रवण-विज्ञान की सीमाएँ छूता है।

मनोरंजन और व्यावहारिक उपयोगिता कलाओं की यह दुहरी कसौटी होती है और भाषा विज्ञान को इस नाते हम एक कला नहीं कह सकते। भाषा विज्ञान ज्ञान की पिपासा का समाधान करता है। काव्य, नाटक, संगीत आदि जैसा उदात्त मनोरंजन उससे नहीं होता। दूसरी ओर उसे विज्ञान भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसके नियम वैज्ञानिक नियमों की भाँति देश काल का बंधन लांघते हुए स्थायी और सुनिश्चित नहीं होते। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण नियम, या चार और चार जोड़ने पर आठ होना या एक से कम संख्या से गुणा करने पर संख्या का घटना और अधिक से गुणा करने पर बढ़ना आदि विज्ञान नियमों की भाँति भाषा विज्ञान के नियम सुनिश्चित नहीं होते। घर्म और कर्म का तो घाम और काम रूप हिन्दी में बन गया है, धर्म का धाम और नर्म का नाम आदि नहीं बने। फिर भी भाषाओं के सूक्ष्म विश्लेषण, गहन परीक्षण, निपुण वर्गीकरण आदि के आधार पर विद्वान् इस शास्त्र को विज्ञान की ओर अधिक झुका हुआ मानते हैं।

महाभाष्यकार पतंजलि ने व्याकरण शास्त्र के अध्ययन के जिन प्रयोजनों और उपयोगों पर प्रकाश डाला है,[2] उन्हें हम व्यापक रूप से भाषा विज्ञान के भी प्रयोजन मान सकते हैं। वेदों की रक्षा के लिए वर्णों का आगम, विकार आदि जानना आवश्यक है। दूसरा प्रयोजन ऊहा करके यथास्थान मंत्रों में यथोचित परिवर्तन कर सकने में कुशलता प्राप्त करना है। तीसरा प्रयोजन ब्राह्मणों द्वारा निष्काम षडंग वेद का अध्ययन है, जिनमें व्याकरण प्रधान अंग है। चौथी बात यह है कि व्याकरण के बिना शब्दों का सम्यक् ज्ञान सरलता से और अल्प प्रयत्न से प्राप्त नहीं किया जा

1. सर्वो हि शब्दोऽर्थप्रत्ययनार्थं प्रयुज्यते (तन्त्रवार्तिक 1/3/8) अर्थगत्यर्थः शब्द प्रयोगः (महाभाष्य 3/1/7), रूपसामान्यादर्थसामान्यं नेदीयः (गोपथब्राह्मण 1/1/26), अर्थनित्यः परीक्षेत (निरुक्त 1/1)।
2. महाभाष्य, पस्पशाह्निक।

सकता। अज्ञान के कारण स्वभावतः पैदा होने वाले सन्देह के निवारणार्थ भी व्याकरण पढ़ना आवश्यक है।[1] इसके अतिरिक्त म्लेच्छों (असभ्यों) की भाँति अपशब्दोच्चारण न होने पाए। वाग्वज्र दुष्ट शब्दों का प्रयोग न होने पाए[2], पारस्परिक व्यवहार में लोक और स्वर्ग में उभयत्र इष्टसाधक उपयुक्त शब्दों का प्रयोग हो सके, अभिवादन आदि के उचित शब्द जाने जा सकें, मन्त्रों में यथोचित परिवर्तन किए जा सकें और उनके सम्यक् पाठ द्वारा विद्वत्ता और ब्रह्मवत्ता प्राप्त की जा सके, वाणी का रहस्य जाना जा सके, जिससे वह हस्तामलकवत् हो जाए, और विद्या को लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की साधक बना सके तथा लोक-व्यवहार और धर्मतत्वज्ञान में कुशलता प्राप्त हो सके—इन सब कारणों से भी व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। महाभाष्यकार द्वारा निरूपित इन सब प्रयोजनों का सम्बन्ध वस्तुतः शब्द ज्ञान करने वाले व्याकरण शास्त्र या शब्दानुशासन (शब्दशास्त्र) से है, परन्तु शब्द विचार भाषा विज्ञान का एक अंग होने के नाते ये सब प्रयोजन साधारणतः भाषा विज्ञान के भी बताए जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त मनुष्य जाति के प्राचीनतम इतिहास के पृष्ठ पलटने में भी भाषा विज्ञान का उपयोग होता है। मनुष्य जाति विज्ञान, तुलनात्मक मतविज्ञान, तुलनात्मक पुराण विज्ञान आदि के ज्ञान में भी भाषा विज्ञान सहायता देता है। इन सबके अलावा भाषाओं और विशेषतः एक परिवार की भाषाओं के अध्ययन में भाषा-विज्ञान सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान से होने वाले लाभ संक्षेपतः ये हैं : प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक सभ्यता संस्कृति पर प्रकाश, किसी भी देश-काल की किसी जाति या समग्र मानवता के चिंतन की धारा का सम्यक् ज्ञान, शब्दों और अर्थों के विकास की रोचक परम्परा का ज्ञान और अन्यथा अनोखे लगने वाले कारणों का समाधान (जैसे करिणा के सादृश्य पर हरिणा शब्द की व्युत्पति आदि), और इस प्रकार जन्म से परिचित भाषा के सम्बन्ध में जिज्ञासा की तृप्ति, भाषाओं के विश्वव्यापी परिवारों की खोज के आधार पर विश्वबन्धुत्व की भावना का परिपोष और पिछले अनुभवों के आधार पर भविष्य की दिशा का अनुमान और अवांछित पतन आदि का पहले से निरोध।

इतने उपयोगों और लाभों वाला शास्त्र कभी रूखा नहीं रह सकता। सच पूछा जाए तो व्याकरण जैसे रूखे विषय को भी भाषा विज्ञान की सहायता से अत्यन्त रोचक बनाया जा सकता है। साधारण व्यक्ति भी नगरों आदि के शब्दों की अनेक व्युत्पत्तियाँ जोड़ा करता है, फिर भला विज्ञान के द्वारा सिद्ध होने वाला वह कार्य कहीं अधिक आनन्ददायक और महत्त्वपूर्ण होता है। बनारस की लोक-प्रचलित साधारण व्युत्पत्ति 'रस के बनने से बनारस', लखनऊ की व्युत्पति का लाख शब्द से जोड़ा जाना और पुरुष का अर्थ शरीर में होने वाला (पुरि शेते) या शत्रु का सामना

1. रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्—महाभाष्य, पस्पशाह्निक।
2. दुष्टः शब्दः स्वरतोऽर्थतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह, इत्यादि वहीं।

करने वाला (परं विषहते) आदि व्युत्पत्तियों द्वारा जनसाधारण की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है, परन्तु इन शब्दों के वास्तविक मूल शब्दों[1] वाराणसी, वृक्ष-राजि और पुंवृष को जानकर हमें अतुलित आनन्द प्राप्त होता है। भद्र शब्द के विपरीत स्वभाव वाले दो बेटों भद्दा और भला तथा हिंस्र के सिंह बनने की कहानी भी ऐसी ही रोचक है। उपाध्याय का घिसते-घिसते झा मात्र रह जाना भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। वाजपेयी, भक्त, वार्ता, क्रंदन, आर्द्र, इंधन, कृशर, शल्क, निगलति, शकट, अश्ववार आदि अनेक तत्सम शब्दों की प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि में होते हुए आधुनिक भाषाओं में बासबेहल, भात, बात, कांदना, आला (ओढ़ा), ईंधन, खिचड़ी, छिलका, निगलना, छकड़ा और सवार आदि रूप प्राप्त कर लेने की कहानी भी कम मनोरंजक और कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसी प्रकार गोपेन्द्र, स्नापित, मनोर्थ, पश्च, आदि संस्कृत शब्दों से विकसित गोविन्द, नापित, मनोरथ, पुच्छ आदि का पुनः संस्कृत में ग्रहण भी कम मनोरंजक नहीं है।[2]

भाषा सम्बन्धी प्रश्नों में से कुछ के मुख्य तथा कुछ के गौण होने के कारण भाषा विज्ञान के अंगों को भी मुख्य तथा गौण दो प्रकार के विभागों में बाँटा जाता हैं। ध्वनि विचार, वाक्य विचार, रूप विचार और अर्थ विचार (दे० यथा०) भाषा विज्ञान के प्रधान अंग हैं। ध्वनि विचार के अन्तर्गत ध्वनि, ध्वनि परिवर्तन, ध्वनि नियम (सभी दे० यथा०) आदि पर प्रकाश डाला जाता है और ध्वनि विज्ञान (दे० यथा०) भी इसी का एक उप-विभाग है। वाक्य विचार के अन्तर्गत (1) ऐतिहासिक और (2) तुलनात्मक दो दृष्टियों से वाक्यों के गठन, स्वरूप और विकास आदि का विवेचन होता है। किन्हीं भाषाओं के वाक्यों का तुलनात्मक ज्ञान अत्यन्त कठिन प्रक्रिया है, और दोनों भाषाओं पर असामान्य अधिकार प्राप्त किए बिना यह असम्भव है। शायद इसी कारण इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं हो सकी है। इस विचार के अन्तर्गत शब्दों के रूपों—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात आदि का विशद विवेचन होता है। अर्थ विचार के अन्तर्गत मानव-विचारों में ध्वनियों में होने वाली अभिव्यक्ति और शब्दों में निहित अर्थों का सूक्ष्म विवेचन होता है। ध्वनियों और अर्थों के स्वाभाविक सम्बन्ध का विश्लेषण, शब्दों द्वारा पदार्थ विशेष या वस्तु विशेष की अभिव्यक्ति, अर्थ संकेत ग्रहण की प्रक्रिया और शब्दों के विकास के साथ-साथ या स्वतन्त्र रूप से होने वाले अर्थपरिवर्तन पर इसके अन्तर्गत प्रकाश डाला जाता है।

भाषा की उत्पत्ति की समस्या, विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण, व्युत्पत्ति शास्त्र, शब्द समूह, पुरातत्व सम्बन्धी खोज और लिपि (सभी दे० यथा०) आदि से सम्बन्धित प्रश्न भाषा विज्ञान के गौण अंग हैं। ये प्रश्न भी कम मनोरंजक नहीं है। भाषा की उत्पत्ति (दे० भाषा) के विषय में अभी हम किसी सर्वसम्मत समाधान पर नहीं पहुँचे हैं और न ऐसी आशा ही है। भाषाओं का वर्गीकरण उपर्युक्त चार मुख्य अंगों के

1. भाषा रहस्य, पृष्ठ 25।
2. वही, पृष्ठ 26-27।

तुलनात्मक अध्ययन का परिणाम है, जिसके आधार पर विश्व की भाषाओं को गठन, रूप या परिवार की दृष्टि से विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। व्युत्पति शास्त्र कदाचित् भाषा विज्ञान का सबसे मनोरंजक पहलू है, जैसा ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। यह भी सर्वथा स्वतन्त्र विभाग न होकर ध्वनि, अर्थ और रूप आदि के विचारों के परिणामस्वरूप किया गया एक सम्मिलित प्रयोग मात्र है। शब्द समूह की चर्चा व्युत्पत्ति शास्त्र की चर्चा को एक पग और आगे बढ़ाती है और इसके अन्तर्गत शब्द समूह के परिवर्तन, नवनिर्माण विदेशों से ऋण आदि प्रश्नों पर प्रकाश डाला जाता है। पुरातत्वसम्बन्धी प्रागैतिहासिक खोज भाषा विज्ञान का साक्षात् लक्ष्य भले ही न हो, पर प्राचीन भाषाओं के सूक्ष्म अध्ययन और तुलनात्मक विवेचन से प्राचीन इतिहास पर भी अनायास प्रभाव पड़ता है और भाषा सम्बन्धी साक्ष्य अपेक्षतया कहीं अधिक प्रामाणिक साक्ष्य होता है। लिपि की उत्पत्ति और उसके विकास आदि का विचार करना भी भाषा विज्ञान का एक अंग है। भाषा विज्ञानी ध्वन्यनुरूप लिपि की महत्ता पर जोर देते हुए वैज्ञानिक परम्परा का प्रवर्धन करता है और रूढ़िवादियों को इस सम्बन्ध में उचित उत्तर देता है। इन अंगों के अतिरिक्त भाषा सम्बन्धी अन्य सभी बातों का विवेचन और भाषा विज्ञान-इतिहास (दे० यथा०) भाषा विज्ञान के महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

भाषा विज्ञान के उपर्युक्त प्रयोजनों और अंगों की चर्चा से ही स्पष्ट हो जाता है कि अन्य सभी शास्त्रों में उसका सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध व्याकरण से है। दोनों का पार्थक्य स्पष्ट रूप से अवगत करने के लिए उनका अन्तर स्पष्टतः समझ लिया जाना चाहिए। डा० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार सबसे प्रधान भेद यह है कि व्याकरण ठीक-ठीक अर्थों में कोई विज्ञान नहीं, किन्तु एक कला है और भाषा विज्ञान एक विज्ञान है। दूसरे व्याकरण भाषा के सिद्ध और साधारण स्वरूप को सिखाता है, परन्तु भाषा विज्ञान उस स्वरूप के कारण या मूल की खोज करता है। अब भाषा विज्ञान व्याकरण या आधारभूत और दूसरे शब्दों के व्याकरणों का व्याकरण है। साथ ही व्याकरण केवल 'क्या' का समाधान करता है, जबकि भाषा विज्ञान 'क्यों, कब, कैसे' आदि का उत्तर देता है। भाषा विज्ञान व्याकरण से दो पग आगे चलता है और व्याकरण पीछे से उसकी बात अनुमोदन भर कर देता है। व्याकरण की परिधि किसी एक देश-काल की एक भाषा तक सीमित होती है, पर भाषा विज्ञान के क्षेत्रों में ये बन्धन नहीं होते। (विशेष दे० व्याकरण)

प्राचीन भाषाओं की प्रयोगशाला साहित्य ही है। अतः इस नाते भाषा विज्ञान का साहित्य से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के लिए भाषा विज्ञान को अपनी सामग्री साहित्य से ही प्राप्त करनी पड़ती है। वस्तुतः आधुनिक भाषा विज्ञान का जन्म संस्कृत साहित्य की खोज के सहारे ही हो सका है (दे० भाषा विज्ञान-इतिहास)। शब्दों की वैज्ञानिक व्युत्पत्ति, उनके अर्थ परिवर्तन आदि का ज्ञान व्याकरण से ही नहीं हो सकता और उसके लिए साहित्य का सहारा

लेना पड़ता है। दूसरी ओर भाषा विज्ञान अर्थ, उच्चारण और प्रयोग, आदि की प्राचीन शंकाओं का समाधान करके साहित्य का उपकारक बन जाता है और इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। डा० मंगल देव शास्त्री के शब्दों में एक भाषा-विज्ञानी और साहित्यसेवी में वनस्पति विज्ञानी और माली जैसा भेद है। एक सभी वनस्पतियों की बनावट आदि के नियमों का पता लगता है और दूसरा केवल सुन्दरता, सुगन्ध या उपयोग की दृष्टि से आवश्यक वनस्पतियों को ही चुन लेता है। भाषा विज्ञानी के लिए अनेक भाषाओं का ज्ञान आवश्यक होता है, साहित्यकार के लिए यह उतना आवश्यक नहीं है। (यद्यपि डा० मंगलदेव शास्त्री ने यह सिद्ध किया है कि भाषा विज्ञानी का बहुभाषा ज्ञानी होना आवश्यक नहीं है, तथापि एकाधिक भाषाओं के कम-से-कम कुछ रूपों का ज्ञान उसके लिए आवश्यक है— साहित्यकार के लिए यह आवश्यक नहीं है।)

भाषा के विचारों पर आधारित होने के कारण भाषा की कुछ आन्तरिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए भाषा विज्ञान मनोविज्ञान की सहायता लेता है, परन्तु भाषा के सहारे चलने वाले मनोविज्ञान के लिए भी भाषा विज्ञान की सहायता अपेक्षित रहती है। ध्वनियों के उच्चारण में उपयोगी ध्वनि-अवयवों के ज्ञान के लिए भाषा-विज्ञानी को शरीर-विज्ञान की भी सहायता प्राप्त करनी पड़ती है। श्रवणेन्द्रिय का ज्ञान भी शरीर-विज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। ध्वनियों, शब्दों, अर्थों और वाक्यों के गठन और विकास के ज्ञान के लिए भाषा विज्ञानी को इतिहास से भी सहायता प्राप्त करनी पड़ती है। संस्कृतियों और समाज के प्रभाव तत्कालीन भाषा पर पड़े बिना नहीं रहते, इनका ज्ञान भाषा-विज्ञानी को इतिहास द्वारा ही होता है। सैंधव (घोड़ा, नमक) जैसे शब्दों के ज्ञान के लिए भूगोल की सहायता प्राप्त करना भाषा विज्ञानी के लिए आवश्यक हो जाता है। साथ ही दूसरी ओर प्रागैतिहासिक भूगोल और तमसावृत इतिहास ज्ञान प्राप्त करने में भाषा विज्ञान भी सहायक सिद्ध होता है। पुराने इतिहास-भूगोल आदि का ज्ञान शिलालेखों-ताम्रलेखों आदि से होता है, जिनका निर्वचन भाषा विज्ञान की सहायता के बिना सम्भव नहीं है। यही बात पुरातत्व तथा मानव जाति विज्ञान और भाषा विज्ञान के सम्बन्ध के बारे में भी कही जा सकती है। प्रायोगिक ध्वनि विज्ञान में भौतिकी (फिजिक्स) और श्रवण विज्ञान (स्काउस्टिक्स) की भी सहायता ली जाती है। भाषा विज्ञान वर्णनात्मक शास्त्र न होकर एक व्याख्यात्मक शास्त्र है और इस नाते तर्क शास्त्र भी अर्थ विचार और सिद्धान्तों की ऊहापोह में उसकी सहायता करता है। समाजशास्त्र के अध्ययन में भी भाषा-विज्ञान सहायक सिद्ध होता है। भाषा मनुष्य-समाज की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्था है और संस्कृति, सभ्यता तथा व्यक्तित्व की जैसी छाप सम्बन्धित भाषा पर पड़ती है, वैसी किसी अन्य साधन द्वारा सुलभ नहीं हो सकती। इस दिशा में भाषा-विज्ञान समाज-शास्त्र की सहायता करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः सभी विज्ञानों, कलाओं और शास्त्रों का भाषा-विज्ञान से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध है। सभी को भाषा

का सहारा लेना पड़ता है। उनके विकास का माध्यम भी भाषा ही होती है। इस प्रकार भाषा जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तु से सम्बन्ध होने के कारण भाषा विज्ञान का प्रायः सभी शास्त्रों से कुछ न कुछ सम्बन्ध है।

भाषा विज्ञानेतिहास—डा० भांडारकर[1] के शब्दों में भारत निश्चय ही वैज्ञानिक भाषा-विज्ञान की जन्मस्थली होने का दावा कर सकता है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता से उद्धरण[2] देते हुए वह कहते हैं कि उसमें भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के स्पष्ट चिह्न दिखाई देते हैं। देवताओं ने इन्द्र से वाणी (भाषा) को स्पष्ट करने को कहा, और इन्द्र ने उनके अनुरोध पर उसे स्पष्ट किया। स्पष्ट ही उस उद्धरण में एक व्याकरण का भी उल्लेख है, जिसकी परम्परा पाणिनि व्याकरण से पूर्व की है। वैदिक युग के बाद लिखे गए ब्राह्मणों में भी जहाँ-तहाँ शब्दों के व्याकृत (खण्ड-खण्ड) करने का प्रयास किया गया है, यद्यपि ब्राह्मणकारों का मुख्य कार्य ध्वनि या अर्थ का संकेत करना नहीं था। एक ब्राह्मण में किये गए अपाप (अप+अप) के खण्ड (अ+पाप) किये गए। ब्राह्मणों के बाद शाकल्य ऋषि द्वारा किये गए संहिताओं के पद-पाठ का उल्लेख इस सम्बन्ध में किया जा सकता है। इसमें संधिच्छेद करके समासादि को अलग-अलग किया गया है और वाक्य-विचार के साथ ही स्वराघात के तत्वों पर भी ध्यान दिया गया है। इस दिशा में अपेक्षतया अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रातिशाख्यों में किया गया बताया जाता है। प्रातिशाख्य संहिताओं के परम्परागत उच्चारणों को सुरक्षित रखने के लिए लिखे गए थे, अतः भाषा विज्ञान के स्वराघात, मात्राकाल तथा उच्चारण सम्बन्धी तत्वों पर इनमें ध्यान दिया गया। इनमें संस्कृत ध्वनियों का समुचित वर्गीकरण भी किया गया और पदों के नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार विभाग भी किये गए। यद्यपि मूल प्रातिशाख्यों के न मिलने के कारण ये सब बातें विद्वानों के अनुमानों पर ही आधारित हैं और उनका कहना है कि उनमें धातु, संज्ञा आदि पर भी प्रकाश डाला गया होगा। प्रातिशाख्यों के बाद वैदिक शब्द-संग्रह-ग्रन्थ निघंटु आते हैं, यद्यपि अब पाँच के स्थान पर केवल एक निघंटु ही मिलता है, जिस पर यास्क का प्रसिद्ध निरुक्त आधारित है। यास्क आठवीं शताब्दी ई० पू० में पैदा हुए होंगे, ऐसा विद्वानों का मत है। निरुक्त के पाँच अध्याय क्रमशः 17,22,30, 3 और 6 खण्डों में बांटे गए हैं। पहले तीन अध्यायों में शब्द पर्याय के अनुसार रखे गए हैं, चौथे में कठिन शब्द रखे गए हैं और पाँचवें में देवताओं के नाम। अर्थविचार का यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें शब्दों के अर्थ समझाने का प्रयास किया गया है। उनकी उत्पत्ति, रचना और विकास पर भी ध्यान दिया गया है। संज्ञाओं के नामकरण और आरम्भ की ओर संकेत करते हुए रोचक शंकाएँ उठाई गईं

1. कलेक्टेड वर्क्स आफ डा० भांडारकर (1929) जिल्द 4, पृष्ठ 244।
2. वाग्वै पराच्य व्याकृतावदत्ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाच व्याकुर्विति सोऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यं चैवैष वायवे च सह गृह्याता इति तस्मादैन्द्रवायवा सह गृह्यते तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरो-त्तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते। तै० सं० 6/4/7।

हैं। निरुक्त और पाणिनि के बीच के समय में भी आचार्यों की एक परम्परा अवश्य चलती रही होगी। पाणिनि की अपेक्षा सरल पर कम विकसित ऐन्द्र सम्प्रदाय भी पाणिनि का पूर्ववर्ती था। डा० बेलवालकर ने पाणिनि का समय 700 ई० पू० निश्चित किया है, यद्यपि मैक्समूलर, बेबर आदि उन्हें 350 ई० पू० तक खींच लाते हैं और गोल्डस्टकर भण्डारकर 500 ई० पू० मानते हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी अध्यायों, पादों और सूत्रों में बांटी गई है। 14 माहेश्वर सूत्रों से बनने वाले प्रत्याहारों के सहारे यह कार्य बड़े संक्षेप में निपटाया गया है। पाणिनि ने सभी शब्दों को एकाक्षर धातुओं पर आधारित किया है और उपसर्गों और प्रत्ययों के सहारे अनेक शब्दों के बनने का निरूपण किया है। ध्वनियों का स्थान और प्रयत्नों के आधार पर निरूपण किया गया है (दे० सवर्ण)। इतना सुगठित व्याकरण-ग्रन्थ आज तक न लिखा जा सका और परवर्ती वैयाकरण पाणिनि से प्रभावित हुए बिना न रह सके। कात्यायन (500 ई० पू०) के वार्तिकों और पतञ्जलि (150 ई० पू०) के महाभाष्य ने इस व्याकरण को पूर्णतः परिपुष्ट कर दिया। पाणिनीय शाखा के वैयाकरणों में जयादित्य, वामन, जिनेन्द्र बुद्धि, हरदत्त, भर्तृहरि, कय्यट, विमल सरस्वती, रामचन्द्र, भट्टोजि दीक्षित, और वरदराज के नाम उल्लेखनीय हैं। संस्कृत के व्याकरण की पाणिनीतर शाखाएँ चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हेमचन्द्र, कातन्त्र, सारस्वत, वोपदेव, जौमर, सौपदन, हरिनामावृत आदि हैं। ये सब व्याकरण पाणिनि से प्राय: प्रभावित रहे हैं और इनमें से अधिकांश का उद्देश्य पाणिनीय व्याकरण को अपेक्षतया सरल रूप में प्रस्तुत करना है। प्राकृत के वैयाकरणों में प्राकृत-प्रकाश के प्रणेता वररुचि **और** सिद्ध-हेमचन्द्राभिधस्वोपज्ञशब्दानुशासन के प्रणेता हेमचन्द्र के नाम हमारे सामने आते हैं। पाली के वैयाकरणों में कच्चायन, मोग्गलान और आगवंश के नाम लिए जाते हैं। वैयाकरणों के अतिरिक्त नैयायिकों और साहित्यशास्त्रियों ने भी अर्थ, शब्दशक्ति, ध्वनि आदि तत्वों पर प्रकाश डाला है।

यूरोप में भाषा के प्रश्न की ओर सबसे पहले यूनानियों ने ध्यान दिया। सुकरात ने संज्ञी में संज्ञा के आरोपित करने का सिद्धान्त माना, अन्यथा सभी भाषाओं में एक वस्तु का एक ही नाम होता। प्लेटो ने भी शब्दव्युत्पत्ति की ओर संकेत किया और वाक्य-विश्लेषण भाषा और विचार के परस्पर सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पोयटिक्स में भाषा विषयक कुछ प्रश्न उठाये हैं, जो भाषा-विज्ञान से सीधा सम्बद्ध न होने पर भी महत्त्वपूर्ण हैं। आठ शब्द-विभाग (पार्टस आफ स्पीच भी) इसी में सबसे पहले निश्चित किये गए हैं। यूनानी वैयाकरणों में थ्रैक्स और डिसकोलस के नाम भी उल्लेखनीय हैं। लेटिन भाषा के वैयाकरणों में लौरेंशस वाल, वारो और प्रिस्किअन के नाम लिये जा सकते हैं।

पीटर महान् और रानी कैथरिन द्वितीय के प्रोत्साहन पर कुछ तुलनात्मक शब्द-संग्रह निकाले गए। लीबनिज, पल्लस, हर्वस और एडलंग ने इस दिशा में विशेष

योगदान दिया। रूसो, केडिलेक, हर्डर और जेविश ने भी भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन को आगे बढ़ाया।

परन्तु भाषा विज्ञान में यूरोपीय विद्वान् विशेषतः यूरोप में संस्कृत के प्रवेश के बाद ही अग्रसर हुए। फ्राँसीसी पादरी कोर्डो ने 1767 में कुछ शब्दों का तुलनात्मक संकलन फ्रेंच इंस्टीट्यूट भेजा था। परन्तु उस लेख के प्रकाश में न आने से उसे अपेक्षित मान्यता न मिल सकी। यूरोप के आरम्भिक संस्कृत विद्वानों में, जिन्होंने तुलनात्मक भाषा विज्ञान को जन्म देकर पल्लवित किया, सर विलियम जोन्स, कालब्रुक, फ्रेडरिक वान श्लेगल, अडोल्फ डब्ल्यू० श्लेगल, हम्बोल्ट, रैस्मस रैस्क, जैकब ग्रिम, फ्रांत्स बाप, आगस्ट पाट, रैप, रूडल्फ राथ, ओटो वाटलिक, श्लाइखर, कुर्टिअस और मैंडविग के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं। इस ज्योति को जगाए रखने वालों में मैक्समूलर, ह्विटनी, स्टेन्थल, ब्रुगमैन, ग्रासमैन, वर्नर, डेलब्रुक, पाल, ब्रील, टकर आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

भारत में भी भाषा विज्ञान का अध्ययन यूरोप के ही संसर्ग में शुरू हुआ। जान बीम्स और केलाग के हिन्दी व्याकरणों ने इस परम्परा को जन्म दिया। डा० आर० जी० भंडारकर ने विलसन व्याख्यान माला में सात व्याख्यान दिये, जो अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। हार्नली ने पूर्वी हिन्दी और ग्रियर्सन ने बिहारी भाषाओं पर विशेष प्रकाश डाला। टर्नर ने प्रसिद्ध तुलनात्मक नेपाली कोष के अतिरिक्त मराठी, गुजराती और सिन्धी पर भी कुछ कार्य किया है। जूल ब्लाख ने मराठी और द्रविड़ भाषाओं पर कार्य किया है। वैसे केल्डवेल ने द्रविड़ भाषाओं पर विशेष खोज की है। डा० लक्ष्मण स्वरूप ने यास्क के निरुक्त पर काम किया है और विश्वबंधु शास्त्री और डांडेकर ने वैदिक भाषा पर। संस्कृत और दर्द भाषाओं पर सिद्धेश्वर वर्मा ने भी काम किया है। कुलकर्णी, सुकुमार सेन और कपिलदेव द्विवेदी ने भी संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में काम किया है।

ए० सी० बुलनर और मनमोहन घोष ने प्राकृत पर; वापट, विधुशेखर भट्टाचार्य, जगदीश भिक्षु और शहीदुल्ला ने पाली पर; हीरालाल जैन, प्रबोध चन्द्र बागची और बनारसीदास जैन आदि ने अपभ्रंश पर; तारापोरवाला, पूनवाला, कपाड़िया, कागा और सुकुमार सेन, आदि ने अवेस्ता पर; डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, सुकुमार सेन, हेमन्तकुमार सरकार, गोपाल हल्दर, कृष्णपद गोस्वामी और प्रफुल्ल भट्टाचार्य ने बंगला और उसकी बोलियों पर; गोपाल चन्द ने उड़िया पर; बानीकान्त काकाती ने आसामी पर; जूल ब्लाख और कुलकर्णी ने मराठी पर; कत्रे ने कोंकणी पर; टर्नर ने गुजराती पर; कैल्डवेल ने द्रविड़ भाषाओं पर; रामकृष्ण अमृतराय और नीलकंठ शास्त्री ने तामिल पर; रामस्वामी ऐयर ने मलयालम पर; डेविड डे एस० बे ने ब्राहुई पर; बिलहेम गाइयर ने सिंहली पर; टर्नर और ट्रंप ने सिन्धी पर; बनारसीदास जैन, डा० खजुरिया, ग्रैहम बेली, परमानन्द बह्ल, हरदेव बाहरी और दुनीचन्द आदि ने

पंजाबी पर; सिद्धेश्वर वर्मा ने लहंदा, दर्द और काश्मीरी पर विशेष रूप से कार्य किया है।[1]

हिन्दी और उसकी बोलियों पर कार्य करने वाले विद्वानों का एकत्र संकलन भोलानाथ तिवारी ने निम्न रूप से किया है :

सुभद्र झा (मैथिली), उदयनारायण तिवारी (भोजपुरी), वाचस्पति उपाध्याय (बनारसी), बाबूराम सक्सेना और रामाज्ञा द्विवेदी (अवधी), धीरेन्द्र वर्मा (ब्रज भाषा), टेसीटरी (राजस्थानी), जान टी प्लाट्स (हिन्दुस्तानी), सी० जे० लाल (हिन्दुस्तानी), केलाग्र (हिन्दी), कादरी (हिन्दुस्तानी ध्वनि), कामता प्रसाद गुरु (हिन्दी), दुनीचन्द (हिन्दी पंजाबी), हरदेव बाहरी (हिन्दी अर्थ विचार), हरिशंकर जोशी (कुमाऊँनी) और ग्रैहम वेली (वांगरू)।

भाषा विज्ञान पर सामान्य ग्रन्थ लिखने वाले भारतीयों में अंग्रेजी में भण्डारकर, गुणे, तारापोरवाला और सुनीतिकुमार चटर्जी और हिन्दी में श्यामसुन्दर दास, नलिनी मोहन सान्याल, मंगलदेव शास्त्री, दुनीचन्द, राममूर्ति महरोत्रा और भोलानाथ तिवारी के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं।

भाषा-स्वरूप—भाषा के विविध स्वरूप या प्रकार देखे जाते हैं। एसपिरेंतो जैसी भाषाएँ कई राष्ट्रों के व्यवहार के लिए गढ़ ली जाती हैं और कृत्रिम भाषा कही जाती हैं। इसके सिवा विविध प्रयोजनों से कुछ अन्य कृत्रिम भाषाएँ भी गढ़ी जाती हैं (विशेष दे० कृत्रिम भाषा)। कुछ भाषाएँ कई परिवारों के मूल में रहती हैं (दे० मूल भाषा)। कुछ भाषाएँ तो राष्ट्र के व्यवहार के लिए स्वीकार कर ली जाती हैं (दे० राष्ट्रभाषा)। कुछ व्यवसायों या वर्गों की कुछ विशिष्ट भाषाएँ होती हैं (दे० विशिष्ट भाषा)। कुछ भाषाएँ अपने लिखित या मौखिक रूप में आदर्श भाषाएँ मान ली जाती हैं (दे० आदर्श भाषा)। साथ ही एक सामान्य भाषा या साहित्यिक भाषा के स्तर तक पहुँचने से पहले प्रत्येक भाषा एक बोली के रूप में रहती है। एक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं और कालान्तर में कोई भी बोली साहित्यिक क्षेत्र में उस भाषा को अपदस्थ कर सकती है। (विशेष दे० बोली)

भाषोत्पत्ति—हमने भाषा अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से ग्रहण की है, और उसने भी अपने से पूर्ववर्ती पीढ़ी से और फिर उसने अपने से पूर्ववर्ती पीढ़ी से और इस प्रकार हम एक आदिम पीढ़ी तक पहुँच सकते हैं, परन्तु फिर भी प्रश्न उठता है कि उस आदिम पीढ़ी ने मूलतः भाषा कहाँ से पाई ?[2] भाषा के साथ हमारा अति गहरा सम्बन्ध रहने से प्रायः यह प्रश्न भी हमारे मन में कभी उत्पन्न नहीं होता कि मनुष्य भाषा की उत्पत्ति या प्रवृत्ति संसार में आदि-आदि में किस प्रकार हुई होगी। एक साधारण अशिक्षित मनुष्य से यदि इस प्रश्न को पूछा जाए, तो वह यही उत्तर देगा कि उसकी भाषा उसी रूप में जिसमें वह बोलता है सदा से चली आई है।[3] पर

1. भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 318-19।
2. डा० गुणे : एन इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 9।
3. डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषाविज्ञान, पृष्ठ 143।

वैज्ञानिक चर्चा में इस उत्तर से सन्तोष नहीं हो सकता। उस आदि पीढ़ी को भाषा किसने सिखाई और यदि कोई सिखाने वाला न था, तो मनुष्य ने किस प्रकार उसका सृजन किया ?[1]

इस प्रश्न के उत्तर में विद्वानों ने अनेक मत उद्धृत किए हैं। सबसे प्राचीन मत यह है कि भाषा को ईश्वर ने उत्पन्न किया और उसे मनुष्यों को सिखाया। यही मत पूर्व और पश्चिम के सभी देशों में प्रचलित था। इसी कारण धार्मिक लोग अपने-अपने धर्मग्रन्थ की भाषा को आदि भाषा मानते थे।[2] संसार के भिन्न-भिन्न धर्मों से सम्बन्ध रखने वाले धर्मगुरुओं के भाषोत्पत्ति विषयक मत प्रायः इसी मत के अन्दर आ जाते हैं। इन लोगों का विचार है कि ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना मानने पर यह भी मानना चाहिए कि ईश्वर ने उसी समय शब्दों और धातुओं आदि के द्वारा मनुष्य भाषा का भी निर्माण किया। अधिकांश लोगों द्वारा अपने धर्मग्रन्थों की भाषा ही आदि भाषा या मनुष्य की स्वाभाविक भाषा मानी जाती है। हिन्दुओं का विश्वास है कि प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ऋषियों को ईश्वरीय ज्ञान (वेद के रूप में) प्रदान करता है। इन आदिम ऋषियों को उस वैदिक भाषा का स्वतः ज्ञान होता है और ये परम्परा से अपने बाद वालों को और वे फिर अपने बाद वालों को सिखाते चले आए हैं। ब्रह्मा ने भिन्न-भिन्न कर्मों और व्यवस्थाओं के साथ सारे नामों का निर्माण भी सृष्टि के आदि में वेद शब्दों से ही किया है।[3] उनके अनुसार वैदिक भाषा ही दुनियाँ की मूल भाषा है और देवता उसी भाषा में बोलते थे और संसार की अन्य भाषाएँ उसी से निकली हैं। बौद्ध भी अपनी धर्म पुस्तकों की भाषा पाली (मागधी) को मनुष्य की मूल भाषा मानते हैं, यद्यपि वह स्पष्ट ही संस्कृत से निकली है। कात्यायन कहते हैं कि एक ही भाषा सारी भाषाओं की मूल है, कल्प के आरम्भ में मनुष्य और ब्राह्मण जिन्होंने पहले कभी मनुष्य के स्वर में बात नहीं की थी दूसरी भाषा में बोलने लगे। भगवान् बुद्ध भी इसी भाषा में बोले थे और यह भाषा मागधी है। शेष भाषाओं में परिवर्तन होते हैं, पर मागधी में नहीं। निर्जन में रखे गए बच्चे मागधी में ही सम्भवतः बोलेंगे। ऐसी ही एक कहानी फ्रिजियन के बारे में भी है कि एकान्त में रखे गए बच्चों[4] ने सबसे पहले फ्रिजियन शब्द बेकोस (रोटी) का उच्चारण किया। बाइबिल (जीनेसिस 2/19) में भी यही बताया गया है कि परमात्मा ने प्राणियों की रचना की और उसको एडम के सामने ले जाया गया, तथा एडम ने उनको जिन नामों से पुकारा उन प्राणियों के वही नाम चल पड़े। इस प्रकार ईसाई जगत में प्राचीन विधान (ओल्ड टेस्टामेंट) की भाषा

1. डा० बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 12।
2. भाषा रहस्य, पृष्ठ 145।
3. सर्वेषां तु नामानि कर्माणिच्च पृथक् पृथक्,
   वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे। मनुस्मृति 1/29
4. सेमेटिकस (मिश्र) और अकबर ने भी ऐसे प्रयोग किए थे, पर बच्चे बिलकुल गूंगे निकले।

हिब्रू ही मूल भाषा मानी गई। बहुत समय बाद लीबनीज ने इस धारणा का खंडन करने का साहस किया। पीछे हर्वास और एडलुंग आदि ने उसकी बात का समर्थन किया।[1] सारांशतः ये सारे मत अन्धविश्वास पर ही आधारित हैं। अन्य मानवीय कलाओं के समान ही मानव भाषा भी विकसित हुई है। सृष्टि को विकासवाद की नींव पर रखने वाले आधुनिक मनुष्य के निकट भाषोत्पत्ति की समस्या इतनी साधारण नहीं है। संस्कृत में विंशति, लेटिन में विजन्ती, अंग्रेजी में ट्वेण्टी और जर्मन ट्स्वान्ट्सिक शब्द बीस के लिए आते हैं। यदि इनमें संस्कृत मूल भाषा है, तो द्विदशति न कहकर विंशति क्यों रखा गया! इससे संस्कृत को हम आदि भाषा कैसे कह सकते हैं?[2] एक जाति का ईश्वर एक प्रकार की भाषा सिखाए और दूसरी जाति का दूसरी—यह बात ईश्वर की सार्वभौमता पर सन्देह करती है। अतः इस सिद्धान्त में केवल इतनी ही सचाई है कि ईश्वर ने यह शक्ति अन्य जीवों को न देकर केवल मनुष्य को दी है।

भाषा की उत्पत्ति के विषय में दूसरा मत यह हो सकता कि यद्यपि भाषा को मनुष्य सृष्टि के साथ ईश्वर ने नहीं रचा, तो भी भाषा को सृष्टि के आदिकालीन मनुष्य समाज ने स्वयं विचारपूर्वक संयत होकर बना लिया।[3] आदि काल में जब मनुष्यों ने हस्तादि के साधारण संकेतों से काम चलता न देखा तब उन्होंने कुछ ध्वनि संकेतों को जन्म दिया।[4] इन प्रतीक या सांकेतिक नामों से भाषा का आरम्भ हुआ। इस सिद्धान्त को निर्णय सिद्धान्त, सांकेतिक सिद्धान्त, प्रतीकवाद, संकेतवाद, स्वीकारवाद आदि भी कहा जाता है। इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सिद्धान्त शब्दार्थ सम्बन्ध में लोकेच्छा का शासन मानता है। साथ ही गार्डिनर के शब्दों में भाषा का जन्म सामाजिक स्थिति के प्रतिफल के अतिरिक्त और कुछ सोचा भी नहीं जा सकता।[5] परन्तु एक साधारण से तर्क पर इसका सारा महल ढह जाता है। वह यह कि विचार विनिमय के साधन के बिना यह निर्णय किस प्रकार किया गया और कुछ साधन था तो इसकी आवश्यकता ही क्या पड़ी?

भाषोत्पत्ति विषयक तीसरा सिद्धान्त मनुष्य की अनुकरणमूलक प्रवृति का सहारा लेकर यह बताता है कि अनुकरण की प्रवृत्ति से ही भाषा का जन्म हुआ। कोयल को कुहू-कुहू और बिल्ली को म्याऊँ नाम उसी प्रकार दिये गए जैसे आज मोटर को पोंपों कहते हैं। काक, कौआ, कोकिल, कम्कू, घुग्घू, हिनहिनाना, भों-भों करना आदि शब्दों की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई। यह भाषोत्पत्ति का अनुकरणमूलकतावाद है। यह सिद्धान्त यह कल्पना कर लेता है कि मनुष्य जब मूक अवस्था में था

1. मैक्समूलर : लैक्चर्स, जिल्द 1, 145-147।
2. डा० मंगल देव शास्त्री : भाषाविज्ञान, पृष्ठ 151।
3. वही, पृष्ठ 154-155।
4. भाषा रहस्य, पृष्ठ 57।
5. गार्डिनर : स्पीच एंड लैंग्वेज, पृष्ठ 19।

तो उसने पशुओं-पक्षियों की ध्वनियों, बादलों की गरज, समुद्र का गरजना, पत्तियों की खड़-खड़ाहट, झरनों की कल-कल आदि सुनी और उनका अनुकरण करके अपनी भाषा का विकास किया, ऐसा हर्डर आदि का मत है। परन्तु मैक्समूलर के शब्दों में इसमें बहुत थोड़े शब्दों की व्युत्पत्ति खोजी जा सकती है।[1] उसने इसे बाउ-वाउ सिद्धान्त के नाम से पुकारा था। यह ऐसा सर्वथा ही त्याज्य सिद्धान्त नहीं है क्योंकि निश्चय ही भाषा निर्माण में यह एक प्रवृत्ति है और कुछ शब्द (भले ही संख्या नगण्य हो) इसके अनुसार बनते हैं। इसके समर्थन में लेफेवर ने अपनी 'रेस एंड लैंग्वेज' पुस्तक में मनुष्य की ध्वनि-अवयवों के गठन के साथ ही ध्वनि के विविध लहजों और विचार से अपेक्षतया विरहित आवाजों का निरूपण किया है। ये आवाजें ही आरम्भ में मनोभावों को प्रकाशित करती हैं।[2] किन्तु यह सिद्धान्त मनुष्य को पशुओं से गया-बीता मान लेता है, दूसरे ऐसे शब्द भी विशेष अधिक नहीं हैं।

चौथा सिद्धान्त मनोभावाभिव्यंजकतावाद है, इसके अनुसार भाषा उन विस्मय, हर्ष, शोक आदि मनोभावों के बोधक शब्दों से प्रारम्भ होती है, जो मनुष्य के मुख से सहज संस्कारवश ही निकल पड़ते हैं। उक्त सिद्धान्त अन्य प्राणियों की ध्वनियों के अनुकरण पर भाषा का जन्म मानता था, यह सिद्धान्त स्वयं मनुष्य की उन सहज स्वयंभू ध्वनियों से, जिनके उत्पन्न होने के कुछ शारीरिक कारण डारविन ने निरूपित किए हैं, भाषा का जन्म मानता है। मैक्समूलर इसे पूह-पूह वाद नाम देते हैं। छिः-छिः, धत्, हुश्, ओह, हा-हा, पूह, पिश, फाई, वाश, वाह, आह, धिक् आदि शब्द इस कोटि में आते हैं। परन्तु बेनफे के अनुसार भावावेश आदि में भाषा के अभाव में से विस्मयादिबोधक शब्द उपयुक्त होते हैं। वास्तविक शब्द और विस्मयादि-बोधक शब्द के बीच मैक्समूलर के अनुसार विशेष अन्तर रहता है। हा-हा और हँसना तथा आह और वेदना का अन्तर स्पष्ट है। फिर हम खाँसते, छींकते और चिल्लाते तो ठीक उसी प्रकार से हैं जिस प्रकार अन्य प्राणी। पर क्या हम उनकी तरह बोलते भी हैं? अतः थोड़े-से शब्द भले ही इस प्रकार बने हों, परन्तु भाषा का जन्म इन्हीं से नहीं माना जा सकता। व्युत्पत्ति शास्त्र भी इस वाद का समर्थन नहीं करता। फिर ये शब्द भी सांकेतिक और परम्परागत होते हैं। विभिन्न देशों में विभिन्न भावों के द्योतन के लिए एक से ही शब्द होते हों, ऐसी बात नहीं है।

पाँचवाँ सिद्धान्त श्रमपरिहरणमूलकतावाद या मैक्समूलर के अनुसार यो-हे-हो वाद है। इसके जन्मदाता नायर का कहना है कि जब मनुष्य कोई शारीरिक परिश्रम करता है तो श्वास-प्रश्वास का वेग बढ़ जाना स्वाभाविक और विश्राम देने वाला होता है। इसी कारण स्वर-तन्त्रियों में भी कम्पन होने लगता है और जब आदिकाल में लोग मिलकर कुछ काम करते थे, तो स्वभावतः उस काम का किसी ध्वनि अथवा

1. मैक्समूलर, लैक्चर्स : जिल्द 1, पृष्ठ 407-409।
2. दे० डा० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 101।

किन्हीं ध्वनियों के साथ संसर्ग हो जाता था। प्रायः वही ध्वनि उस क्रिया अथवा कार्य की वाचक हो जाती थी।[1] मजदूर मिलकर जब बोझे का या अन्य कोई भारी काम करते हैं, तो चिल्लाते जाते हैं—'जोर लगा दे हे ईसा' आदि। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि इस प्रकार की ध्वनियों को करते हुए काम करने से परिश्रम कम प्रतीत होने लगता है।

मैक्समूलर भाषोत्पत्ति विषयक छठा मत उपन्यस्त करते हुए यह विचार प्रकट करता है कि समस्त प्रकृति में यह नियम पाया जाता है कि चोट लगने पर प्रत्येक वस्तु अनुरणन करती है। प्रत्येक पदार्थ में अपनी अनोखी आवाज (झंकार) होती है। आदिकाल में मनुष्य में भी इसी प्रकार की एक स्वाभाविक विभाविका शक्ति थी, जो बाह्य अनुभवों के लिए वाचक शब्द बनाया करती थी। मनुष्य जो कुछ देखता-सुनता था उसके लिए आपसे आप ध्वनि-संकेत (शब्द) बन जाते थे। जब मनुष्य की आत्मा विकसित हो गई तब उसकी यह सहज शक्ति नष्ट हो गई।[2] मैक्समूलर ने इसे डिंगडैंगवाद नाम दिया था। परन्तु जैसा इस मत की व्याख्या से ही स्पष्ट हो जाता है, यह मत भी निर्दोष नहीं है और भाषा के एक प्रतिशत शब्द भी इस प्रकार गढ़े हुए नहीं माने जा सकते। पीछे स्वयं मैक्समूलर ने ही यह मत छोड़ दिया था।

भाषोत्पत्ति विषयक सातवाँ मत धातुवाद या धातु सिद्धान्त नाम से पुकारा जाता है और इसके विधाता हेस हैं, पर इसका पल्लवन भी मैक्समूलर ने ही किया है। यदि भाषा के शब्दों और रूपों पर से सभी कुछ कृत्रिम और औपचारिक टीप-टाप हटा ली जाए, तो 400-500 मूल तत्व या धातुएँ शेष रह जाएँगी।[3] भाषोत्पत्ति विषयक समूची अराजकता के पहले यही एक राजमार्ग दिखाई देता है। भाषा के वर्तमान स्वरूप का प्रारम्भ इन्हीं मूलतत्वों या धातुओं से हुआ है। इन मूलतत्वों से और पीछे खोज करना असम्भव है। अरस्तू, हीराक्लिटस। डेमोक्रिटस, पैथागोरस और लॉक आदि दार्शनिकों के मतों को उद्धृत करते हुए मैक्समूलर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि किसी विचार को लेकर यद्यपि कई सम्भव धारणाएँ बनती हैं, तथापि 'प्राकृतिक चुनाव' के अनुसार भाषा के उर्वर-कण ही जीवित बचते हैं, जिनसे आगे चलकर भाषा-वृक्ष की उत्पत्ति होती है। शब्द निर्माण की वह स्वाभाविक शक्ति विचार को वर्णात्मक शब्द में प्रकट करके फिर लुप्त हो गई। इस मत में भी कुछ दुर्बलताएँ हैं। उस शक्ति की आदि-मानव में बिना प्रमाण के कल्पना करना ही दिव्य-उत्पत्ति या जादुई-चमत्कार का समर्थन भर है। फिर उस स्वाभाविक शक्ति को पीछे छुट्टी नहीं मिल सकती।[4] फिर वर्णात्मक शब्द की सत्ता समाजगत होती है, व्यक्तिगत नहीं।

1. भाषा रहस्य, पृष्ठ 60।
2. वही, पृष्ठ 60-61।
3. मैक्समूलर : लैक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 329।
4. डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 155-160।

स्पष्टत: ये सारे के सारे मत सतह को ही छूते हैं और भाषा के शरीर के एक अंग की ही व्याख्या करते हैं। इतने विवेचन के बाद भी किसी एक निश्चित समाधान पर नहीं पहुँचा जा सका। भाषा विज्ञानी के स्वल्प साधनों से इस प्रश्न का समाधान नहीं हो सकता।[1] अल्पज्ञानी मनुष्य के ज्ञान की वर्तमान स्थिति में इस समस्या का हल नहीं सूझता। इसी कारण पिछली पीढ़ी के भाषा वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न को उठाया तो पर टाल दिया था और यह कहा था कि इससे हमें सरोकार नहीं; हम तो जैसी भाषा पाते हैं उसका अध्ययन करते हैं और उसके मूलतत्वों तक पहुँचने की कोशिश करते हैं, भाषा की उत्पत्ति का विषय तो दर्शन के क्षेत्र में आता है।[2] पर आधुनिक भाषावैज्ञानिक यह हार मानने को तैयार नहीं। पहले तो वह इन सभी वादों के एक समन्वित रूप अर्थात् समन्वयवाद की कल्पना करते हुए यह कहता है कि भाषा का यह रूप इन सब प्रकारों से बने हुए शब्दों से मिलकर बना है। दूसरे फिर डारविन के इस विकासवाद के युग में भाषा के भी विकसित रूप या विकासवाद की कल्पना करता है। अर्थात् भाषा इन सब प्रकारों से बने हुए शब्दों का विकसित रूप है। इतने से भी सन्तोष न होने पर वह असभ्य आदिम जातियों, बच्चों और भाषा के इतिहास के द्वारा भाषा की उत्पत्ति का समाधान खोजने के लिए प्रयत्नशील होता है। बच्चा जिस प्रकार बोलना सीखता है, उसी प्रकार मनुष्य ने शुरू में बोलना सीखा था; भेद यही है बच्चा एक विद्यमान भाषा सीखता है, अत: भाषा की उत्पत्ति उसकी निरर्थक प्राकृतिक ध्वनियों में खोजनी चाहिए। और इसी प्रकार आदिम जातियों की भाषाएँ आदिम भाषा की एक निकटतर अवस्था की निरूपक होती हैं।[3] इन्हीं आधारों पर जेस्पर्सन ने अपना यह सिद्धान्त निरूपित किया है कि जहाँ तक उपलब्ध सामग्री हमें पीछे की ओर जाने दे, हमें उसके सहारे पीछे जाना चाहिए। जेस्पर्सन का निष्कर्ष है कि आदिम भाषा में आज की अपेक्षा रूपों का आधिक्य रहा होगा[4], व्याकरण आदि के नियमों की स्वाधीनता रही होगी और आदि-भाषा पक्षियों और बच्चों की ध्वनियों की भाँति पारस्परिक व्यवहार के लिए नहीं बल्कि आत्म-प्रकाशन के ही लिए विशेषत: प्रयुक्त होती होगी। बच्चे मामा, पापा, बाबा, ताता आदि शब्द अकारण ही बोला करते हैं बुद्धिपूर्वक नहीं। सम्बन्धी उन्हें अपने लिए समझ लेते हैं और वे उनके वाचक हो जाते हैं।[5] आदिम मनुष्यों ने कुछ ऐसी अनुकरणात्मक ध्वनियाँ निकाली होंगी, जो साथियों को बहुत पसन्द आई होंगी और क्रमश: रूढ़िगत हो गई होंगी। जिस प्रकार उसने पहले खलियान काटना सीखा था और पीछे बोलना, उसी प्रकार उसने पहले सुनना-समझना सीखा और

1. दे० समाज विज्ञान विश्वकोष।
2. डा० बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 16।
3. एरिक पार्टिज : वर्ल्ड आफ वर्ड्स, पृष्ठ 62।
4. और दे० ब्रिटिश विश्वकोष।
5. जेस्पर्सन : लैंग्वेज, पृष्ठ 154-160

पीछे बोलना। और जिस प्रकार घास का निराना, खाद डालना, ऋतु के अनुसार फसलें पैदा करना, सिंचाई की व्यवस्था करना आदि बातों का ज्ञान उसे बहुत पीछे चलकर हुआ। उसी प्रकार भाषा में परिमार्जन और संस्कार बहुत पीछे चलकर हुए। पहले वह संगीतमय अर्द्ध विश्लेषित व्यक्तिगत अभिव्यक्ति मात्र थी। उसकी ध्वनियाँ और शब्द कठिन और दुर्वाच्य थे और वे भाव-प्रकाशन के सम्यक् माध्यम न थे। परन्तु प्रगति की प्रवृत्ति आदि काल से ही रही है। अनुकरण मूलक और मनोभावाभिव्यंजक शब्द तो थोड़े-बहुत अवश्य रहे होंगे, क्योंकि अनुकरण तो मनुष्य की सबसे बड़ी प्राकृतिक विशेषता है। साथ ही ध्वनि विशेष का पदार्थ विशेष से संसर्ग आरम्भ में एक आकस्मिक घटना या संयोग मात्र रहा होगा। श्वान को पहली बार श्वान क्यों कहा गया, इस प्रश्न का उत्तर खोजना आज असम्भव है। परन्तु धीरे-धीरे वे शब्द उस पदार्थ के लिए रूढ़िगत होते गए और अनियमितताएँ दूर होती गईं। क्रमशः भाषा में एकरूपता और सौन्दर्य का भी पदार्पण होता गया। जेस्पर्सन द्वारा की गई यह व्याख्या ही एरिक पार्टिज के शब्दों में भाषोत्पत्ति की सच्ची व्याख्या है।

भुआनी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 11 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भूजल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 3 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

भूटानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 157 है। ये लोग उत्तर भारत (संभवतः भूटान) में रहते हैं।

भूनिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

भूपन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,741 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

भूरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 11 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भूलिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 25 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भूली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 72 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भोइ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 99 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भोजन-नालिका—ध्वनियों के उच्चारण में सहायता देने वाली मुख की प्रणाली। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

भोजपुरी—बिहार के शाहाबाद जिले के एक छोटे-से कस्बे भोजपुर के नाम पर

हिन्दी की इस क्षेत्रीय बोली का यह नाम पड़ा है। वैसे यह दूर-दूर तक बोली जाती है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, गाज़ीपुर, बलिया, गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ़, शाहाबाद, चम्पारन, सारन और छोटा नागपुर तक बोली जाती है। भाषागत कुछ बातें भले ही बिहारी से मिलती हैं, पर यह प्रदेश हिन्दी प्रदेश के अधिक निकट रहा है। काशी के प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र की बोली होने पर भी भोजपुरी की अपेक्षा अवधी और ब्रजभाषा ही साहित्यिकों द्वारा अपनाई गई हैं।

भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,164 है। जो निम्न प्रकार से बँटी हुई है : पूर्वोत्तर भारत 260, पूर्वी भारत 1,902 और भारत का मध्य भाग 2।

भोटिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या दो वर्गों में बतायी गई है। तिब्बत की भोटिया के बोलने वालों की संख्या 116 है और ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं। अन्य भोटिया के बोलने वाले 23,079 हैं, जो निम्न प्रकार से बँटे हुए हैं : पूर्वोत्तर भारत 50, पूर्वी भारत 23,029।

भोपाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 32 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में (संभवतः भोपाल में) रहते हैं।

भोयारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 13,100 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

भोरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 112 है। ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं।

भ्रामक व्युत्पत्ति—व्युत्पत्ति के सामान्य नियमों पर बिना ध्यान दिए की जाने वाली मनचाही व्युत्पत्ति को भ्रामक या लौकिक व्युत्पत्ति कहते हैं। विशेष दे० व्युत्पत्ति शास्त्र।

म

म्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ, आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह अल्पप्राण, घोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक स्पर्श-व्यंजन है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में इसका उच्चारण ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजनों के समान दोनों होठों को छुआकर होता है, परन्तु अन्य अनुनासिक व्यंजनों की भाँति इसके उच्चारण में कुछ हवा नासिका-विवरों में प्रविष्ट होकर गूँज उत्पन्न करती है।

उदा० माया, समान, काम।

मंडली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 50 है। ये लोग भारत के उत्तरी भाग में रहते हैं।

मगही—बिहारी भाषा की एक बोली। यह पटना और गया के आस-पास बोली जाती है। विशेष दे० बिहारी।

भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,728 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मघई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मणीपुरी—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा का अन्य नाम मैथेई भी है। विशेष दे० मैथेई।

मदनी (1)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 25 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मदनी (2)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 32 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मद्रासी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,311 है। इनमें से 5,014 व्यक्ति भारत के मध्य भाग, 870 पूर्वी भाग और शेष पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

मध्यप्रदेशी लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार[1] मध्य प्रदेशी लिपि का प्रचार मध्य प्रदेश, बुंदेलखण्ड, हैदराबाद के उत्तरी भागों तथा मैसूर के कुछ भागों में था और यह वहाँ पर लगभग पाँचवीं शताब्दी से लगभग नवीं शताब्दी तक

---

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ 43, 82-83।

प्रचलित रही। गुप्तों, वाकाटकों तथा शरभपुर और महाकोशल के राजाओं के शिला-लेखों और दानपत्रों में इस लिपि के रूप देखने को मिलते हैं। दानपत्रों की संख्या और आकार दोनों ही शिलालेखों की अपेक्षा अधिक विस्तृत हैं। डा० ओझा के अनुसार इस लिपि के अक्षर लम्बे अधिक और चौड़े कम होते हैं और प्रायः समकोण के आकार के होते हैं। अन्यथा यह पश्चिमी लिपि से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

मध्यस्वर—स्वरों के उच्चारण में जीभ के अगले (अग्र), बिचले (मध्य) तथा पिछले (पश्च) भागों के उपयोग से भेद हो जाता है। जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का बीच का भाग धंस-सा जाता है, और अगले तथा पिछले भाग उठते हैं, उन्हें मध्यस्वर कहते हैं। विशेष विवरण के लिए दे० मूलस्वर।

मनोभावादिव्यंजकतावाद—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ भाषावैज्ञानिकों का विचार है कि उसकी उत्पत्ति हर्ष शोक आदि मनोभावों के प्रकाशन में अनायास निकलने वाले वाह-आह आदि विस्मयादिबोधकों से होती है। भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या अत्यल्प होने से यह मत विशेष प्रचलित नहीं हुआ। मैक्समूलर ने तो उपहास में इसे पूह-पूह-वाद नाम ही दे डाला। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)

मन्ने—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,561 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मनकारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 702 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मपुओतोंगसुल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 23 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मरघी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

मराठी—मराठी महाराष्ट्री प्राकृत की पुत्री और महाराष्ट्र क्षेत्र की भाषा है और हिन्दी, गुजराती तथा द्रविड़ भाषाओं के बीच के प्रदेश में बोली जाती है। पूना के निकट की बोली ने ही साहित्यिक रूप प्राप्त कर लिया है। यह प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी-छापी जाती है। शिवाजी के मन्त्री बालाजी आवाजी द्वारा आविष्कृत "मोडी" लिपि का भी दैनिक व्यवहार में प्रयोग होता है।

मराम—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,797 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मरारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 46,998 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मरिंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,987 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मलय-पालीनेशिया परिवार—प्रशान्त महासागरीय खण्ड की भाषाओं के परिवार का एक नाम। विशेष दे० प्रशान्त महासागरीय खण्ड।

मलयालम—द्रविड़ परिवार (दे० यथा०) की मुख्य भाषाओं में से एक। यह नवीं शताब्दी में आस-पास तामिल से अलग रूप प्राप्त करने लगी थी। यह भी तामिल की भाँति संस्कृत शब्द बहुला है, बल्कि इसमें तो सभी द्रविड़ भाषाओं से अधिक संस्कृत शब्द पाए जाते हैं। यह ब्राह्मणों का प्रभाव बताया जाता है। यह मैसूर के दक्षिणी भाग और त्रावणकोर कोचीन में मलाबार-तट पर बोली जाती है। 13वीं सदी से इसमें साहित्य रचना होने लगी थी।

मलायन परिवार—इंडोनेशिया परिवार का एक अन्य नाम। विशेष दे० इंडोनेशिया परिवार।

मलेनेशिया परिवार—प्रशान्त महासागरीय भाषा खण्ड का यह भाषा परिवार फिजी आदि छोटे-छोटे द्वीपों में फैला हुआ है। इसमें फिजियन, वैलीडोनी, ल्वायल्ती, हेब्रिडी, सोलोमोनी आदि भाषाएँ आती हैं, जो इन्हीं नामों के द्वीपों में बोली जाती हैं फ़िजियन में कई बोलियाँ हैं। यह इंडोनेशियन परिवार से मिलती-जुलती है, पर इस परिवार की भाषाएँ इंडोनेशियन परिवार की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। इसमें एक-बचन, द्विवचन, त्रिवचन और बहुवचन—चार-चार वचन होते हैं। जोर देने के लिए वीप्सा का प्रयोग होता है। इंडोनेशियन परिवार की भाँति इन भाषाओं में भी एक ही शब्द से आवश्यकता के अनुसार संज्ञा, क्रिया, क्रिया-विशेषण आदि का काम लिया जाता है।

मलार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 289 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मलाबारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 29 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मल्हाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 49 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मसासी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

महरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 21,054 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

महली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 154 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

महाकुल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल एक है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

महाप्राण—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ वर्ण और श, ष, स और ह महाप्राण होते हैं। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

अल्पप्राण और महाप्राण का पारस्परिक भेद यही है कि जिनमें ह ध्वनि नहीं होती, जैसे क् ग् त् द् आदि उनको अल्पप्राण कहते हैं और जिनमें इनके विपरीत ह ध्वनि

होती है, जैसे ख् घ् थ् ध् आदि उन्हें महाप्राण कहते हैं। लैरिंगोस्कोप यन्त्र की सहायता से इनका भेद स्पष्ट समझा जा सकता है।

महाप्राणीकरण—उच्चारण की सुविधा के लिए अल्पप्राण वर्गों को महाप्राण बना देने की प्रवृत्ति, जैसे—गृह् का घर आदि कर देना। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

माँग गरोड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 94 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मांगर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 23,994 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मांझी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 311 है। इनमें से 238 भारत के पूर्वी भाग में और शेष मध्य भाग में रहते हैं।

माओ (1)—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के, जिसे मेमी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 90 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

माओ (2)—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14,495 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मागरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 27 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मागधी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

माघी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,253 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मातू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 195 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

माते—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 194 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मात्राकाल—किसी ध्वनि के उच्चारण में लगने वाली समय की मात्रा (परिमाण) को मात्राकाल कहा जाता है। प्राचीन काल के वैयाकरण केवल स्वरों के ही आधार पर मात्राकाल की माप किया करते थे और ह्रस्व स्वर में एक मात्रा, दीर्घ स्वर में दो मात्राएँ तथा प्लुत स्वर में तीन मात्राएँ माना करते थे और व्यंजनों की एक भी मात्रा न मानते थे। परन्तु प्लुत के उच्चारण में ह्रस्व स्वर के उच्चारण से तिगुना ही नहीं, बल्कि तेरहगुने से भी अधिक तक समय लग सकता है। दूसरे भले ही बिना स्वरों की सहायता के व्यंजनों का उच्चारण न हो सके, पर उनके उच्चारण में भी कुछ तो समय लगता ही है। उदाहरण के लिए 'दैर्घ्य' शब्द में र् + घ् + य् इन तीन व्यंजनों के उच्चारण में दो ह्रस्व स्वरों या एक दीर्घ स्वर जितना समय लग सकता है। सामान्य व्यंजन के उच्चारण में भी अर्द्ध ह्रस्व जितना समय तो लगता ही है।

मात्राओं के लिखने के लिए छन्द शास्त्र में । ऽ चिह्न (क्रमशः ह्रस्व और दीर्घ के लिए प्रयुक्त होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय लिपि ह्रस्व के आगे (.) और दीर्घ के आगे (:) लगाया जाता है। हिन्दी आदि में ह्रस्व दीर्घ के लिए और चिह्नों की आवश्यकता नहीं है। प्लुत के लिए आगे 3 लिख देते हैं। किसी भी स्वर को प्लुत बनाया जा सकता है।

मात्रा भेद—उच्चारण की सुविधा के लिए ह्रस्व को दीर्घ बना देना और दीर्घ को ह्रस्व बना देना; जैसे जिह्वा से जीभ और आषाढ़ से असाढ़ आदि। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

माथरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

माथी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

माथुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वाले की संख्या 647 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मान-ख्मेर—कुछ विद्वान् इस भाषा परिवार को पृथक् मानते हैं। कुछ इसे आग्नेय भाषा परिवार में समेटते हैं। मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में बर्मा में पीगू में बोली जाने वाली बोलियाँ तथा भारतवर्ष में खासी पहाड़ियों की बोलियाँ इसी भाषा-परिवार से सम्बन्ध रखती हैं।

इनमें से मान नामक परिमार्जित साहित्यिक भाषा बर्मा के पीगू और मर्तवान की खाड़ी के पास बोली जाती है। यह साहित्यिक भाषा है। यह कंबोडिया और स्याम-बर्मा सीमा पर बोली जाती है।

पलौंग और बा बोलियाँ बर्मा के उत्तरी जंगलों में बोली जाती हैं।

खासी भाषा खासी और जयन्तिया की पहाड़ियों में बोली जाती है। नीकोबारी को भी मानख्मेर में गिना जाता है, पर वह इंडोनेशियन से भी मिलती-जुलती है।

मानी (1)—बर्मा में उत्तर-पूर्व के करेन प्रदेश में करेनी के साथ-साथ बोली जाने वाली भाषा। इसे विश्व के किसी निश्चित भाषा परिवार में नहीं रखा जा सका है। ग्रियर्सन ने करेनी के साथ इसे एक पृथक् भाषा-परिवार में रखा है।

मानी (2)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 73 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मारवाड़ी—भारत की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 45,14,737 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न संख्याओं में बंटे हुए हैं : उत्तर भारत—9,320, पूर्व भारत—22,447, दक्षिण भारत—2,835, मध्य भारत—1,88,642, पश्चिमोत्तर भारत—42,91,491 और अण्डमान नीकोबार—2।

मारू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 11 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

माल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मालटो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 27,857 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मालदीवियन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

मालद्वीपी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 16 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

माल पहाड़िया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 374 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मालपामा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मालवी (1)—इस बोली या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 8,66,895 है, जो निम्न रूप से बँटी हुई है—मध्य भारत 5,31,304, पश्चिमोत्तर भारत 3,35,591। इसमें राजस्थान की सगारी और अहीरी की संख्या भी सम्मिलित है।

मालवी (2)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 52 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

माली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 45 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मालुरल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

माल्टो—द्राविड़ परिवार की एक भाषा। यह बंगाल-बिहार सीमा पर राजमहल की पहाड़ियों में रहने वाली माल्टो जाति द्वारा बोली जाती है। यह कुरुख या ओरांव (दे० यथा०) की एक शाखा मात्र बताई जाती है।

माहिली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,827 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

माहेश्वरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 11 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मिकिर—पूर्व भारत में बोली जाने वाली एक आदिम जाति भाषा या उपभाषा। इसके बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,30,746 है।

मिकिरदोन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 147 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मितानी—विश्व की उन अनिश्चित और प्राचीन भाषाओं में से एक, जो अबतक

किसी भी परिवार में वर्गीकृत नहीं की जा सकी हैं। यह दजला-फरात नदियों के आस-पास बोली जाती थी, पर एक धर्म पुस्तक के अतिरिक्त और कुछ सामग्री न मिलने से इस भाषा के बारे में विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता है।

मिर्जापुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 286 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मीजो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 600 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मीना—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 7 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मीरगानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 260 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मीरदाही—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 571 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मीरधा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,899 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मीरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 57,623 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मीश्मी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 86 है। ये लोग भारत के मध्य भाग रहते हैं।

मीशिंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 106 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मीहू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 45 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मुंडा—मंगलदेव शास्त्री के अनुसार यद्यपि मुंडा भाषाओं को बोलने वाली जातियाँ शरीराकृति की दृष्टि से द्राविड़ भाषा-भाषियों के ही ढंग की हैं, परन्तु ये भाषाएं द्राविड़ भाषाओं से बिलकुल भिन्न हैं। मुंडा भाषी द्राविड़ भाषियों से भी पहले भारत आए थे। ये भाषाएं श्मिट के अनुसार आग्नेय (आस्ट्रिक) भाषाओं में आती हैं। मुंडा भाषाओं का प्रधान क्षेत्र भारत है। मध्य भारत, मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मद्रास आदि प्रदेशों के कुछ जंगली-पहाड़ी भाग इनके प्रमुख क्षेत्र हैं। मुंडा नाम मैक्समूलर ने दिया है, पहले इन्हें कोल भाषा नाम से पुकारा जाता था।

भोलानाथ तिवारी ने इनका विभाजन इस प्रकार से किया है: कनावरी (शिमला), खेरवारी वर्ग (जिसमें हो, संथाली, मुंडारी और भूमिज आदि आती हैं), कुर्कू (मालवा, मेवाड़), खड़िया (रांची के पास), जुआंग या पतुआ (केंदूसर और ढेंकानाल में), शाबर (आंध्र) और गदबा। उनके ही अनुसार मुंडा की प्रधान

विशेषताएँ निम्न हैं—तुर्की की भाँति अश्लिष्ट योगात्मकता, महाप्राण ध्वनियों में महाप्राणत्व की अधिकता, प्रत्यय और उपसर्ग के अलावा मध्य में भी परसर्गों का जोड़ा जाना (दे० आकृतिमूलक वर्गीकरण)। चीनी की भाँति एक ही शब्द से संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि सभी का काम लिया जाना, तीन वचन और दो लिंग, एक से दस और बीस—इन 11 संख्याओं से सभी संख्याओं का प्रकट किया जाना, जोर देने के लिए वीप्सा आदि।

मंगलदेव शास्त्री के अनुसार इनमें किसी प्रकार का साहित्य न होने से धीरे-धीरे आर्य-भाषाओं के सामने ये नष्ट होती जा रही हैं। बीस के आधार पर गिनती, बिहारी बोलियों में क्रिया की जटिलता, मालवी में कुछ सर्वनामरूप, भोजपुरी-बंगला में क्रियाओं में लिंग की कमी आदि प्रभाव मुंडा भाषाओं के कारण पड़े हैं, ऐसा विद्वानों का विचार है।

आदिम जाति की इस भाषा को भेद-प्रभेद समेत बोलने वालों की जनसंख्या निम्न प्रकार से है—

मुंडारी	5,36,338	मुख्यतः पूर्व भारत में;
मुंडा	45,277	पूर्व भारत में;
मुंडा (अनिर्दिष्ट)	2,415	पूर्व भारत में;
मुंडा या मुंडारी	1,181	मध्य भारत में।

मुओन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 521 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मुडारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 86 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

मुरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 288 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मुरारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मुल्तानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,971 है। इनमें से 1,345 व्यक्ति भारत के मध्य भाग में, 615 उत्तरी भाग में और शेष दक्षिणी भाग में रहते हैं।

मुसलमानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 80 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मुवासी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17,996 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मूर्धा—ध्वनियों के उच्चारण में प्रयुक्त होने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में सेरेब्रल कहते हैं। यह मुख की छत के बीच का पिछला भाग है। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

मूर्धन्य—स्पर्श ध्वनियों का दूसरा विभाजन। इसमें तालु के बीच के भाग का, जिसे मूर्धा कहते हैं, जिह्वाग्र द्वारा स्पर्श किया जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिन्दी मूर्धन्य टवर्ग के उच्चारण में जीभ उलटकर मूर्धा का स्पर्श करती है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार ऋ, टवर्ग, र और ष ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं। अंग्रेजी में इन्हें सेरेब्रल कहते हैं।

मूर्धन्यभाव नियम—पाणिनि सूत्र 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (8/4/1) और अट् कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि (8/4/2) के अनुसार यदि किसी समान पद में र् (ऋ समेत) और ष् के बाद न आए तो उसका तो ण् हो ही जाता है, बीच में चाहे जितनी बार सभी स्वर, ह्, य्, र् व्, कवर्ग, पवर्ग भी आजाएँ तब भी न् का ण् हो जाता है। प्रातिशाख्यकार तथा वररुचि और जेकोबी तथा मैकडानल सभी ने इस मूर्धन्यभाव के नियम को माना है। यह भी एक प्राचीन ध्वनिनियम है।

मूल भाषा—भाषा वैज्ञानिकों ने प्राचीन भाषाओं के परीक्षण के सहारे भारत-यूरोप की अधिकांश भाषाओं के प्रारम्भ में एक मूल भाषा की कल्पना की है। यह कल्पना संस्कृत, ग्रीक, लेटिन, अवेस्तन आदि के प्राचीनतम रूपों की तुलना और साम्य के आधार पर की गई है। उनका अनुमान है कि इन सारी भाषाओं के मूल में एक भाषा थी, जो संघ रूप में एकत्र रहने वाले प्राचीन भारोपीय जाति (आर्यों) की भाषा थी। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कालान्तर में उस जाति को विभिन्न धाराओं में विभक्त होना पड़ा। शायद जनसंख्या वृद्धि और भोजन आदि की कमी ही इसका हेतु रही होगी। वे लोग कई शाखाओं में बँटकर विभिन्न दिशाओं को चले गए। नए स्थलों पर वे कुछ पीढ़ियों तक रहे और भाषा के विकास सिद्धान्त के अनुसार उनकी भाषाओं में क्रमशः परिवर्त्तन आते गए और वे एक-दूसरे से दूर हटती गईं। इन शाखाओं से फिर कालान्तर में उन्हीं कारणों से प्रशाखाएँ फूटीं और नवीन स्थानों में जाकर कालान्तर में उनकी भी यही दशा हुई। इस प्रकार भूगोल और समय के प्रभावी कारणों से एक मूल भाषा ही आज सैकड़ों ही नहीं, बल्कि हजारों भाषाओं और बोलियों में विभक्त हो गई है। इसी प्रकार अन्य भाषाओं के लिए परिवारों की कल्पना की गई है (दे० भाषा-परिवार)। भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि सभी परिवारों के मूल में एक मूल भाषा रही होगी।

मूलस्वर—मुखविवर से अबाध निकलने वाली अघोष ध्वनि को स्वर कहते हैं। स्वरतन्त्री से निकलने वाली ध्वनि प्रायः एक-सी होती है, परन्तु जीभ के अगले भाग (अग्र), बीच के भाग (मध्य) तथा पीछे के भाग (पश्च) से स्पर्श होने के कारण तीन प्रमुख भेद हो जाते हैं। साथ ही आभ्यन्तर प्रयत्नों, मुखावयवों के खुले या बन्द रहने की मात्रा के कारण संवृत (सँकरे या बिलकुल बंद से), अर्द्ध संवृत (अर्ध-संकरे), विवृत (खुला), अर्द्धविवृत (अधखुला) आदि भेदों से भी इनकी ध्वनि में अन्तर हो जाता है। इन्हीं आधारों पर डैनियल जोन्स ने अपनी 'इंगलिश प्रोनाउंसिग डिक्शनरी' (अंग्रेजी उच्चारण कोष, आई०एम० डेंट एण्ड संस, लन्दन द्वारा प्रकाशित)

में इन्हीं आधारों पर आठ प्रधान स्वर या मूल स्वर (कार्डिनल वौवेल्स) निश्चित किए हैं। उनका बहुजन उद्धृत चित्र निम्न है :
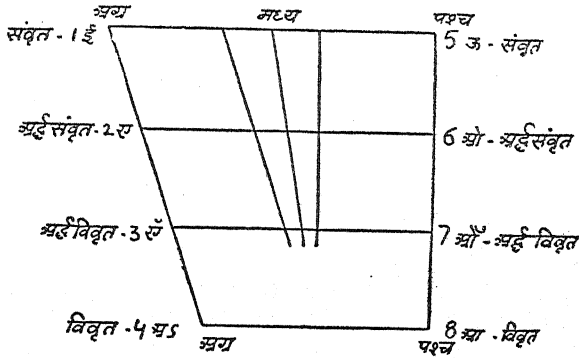
इन्हीं प्रधान स्वरों को ध्यान में रखते हुए विद्वानों (कादरी, चटर्जी, सक्सेना, धीरेन्द्र वर्मा, दास ने हिन्दी के मूलस्वर निम्न प्रकार से निश्चित किए हैं :
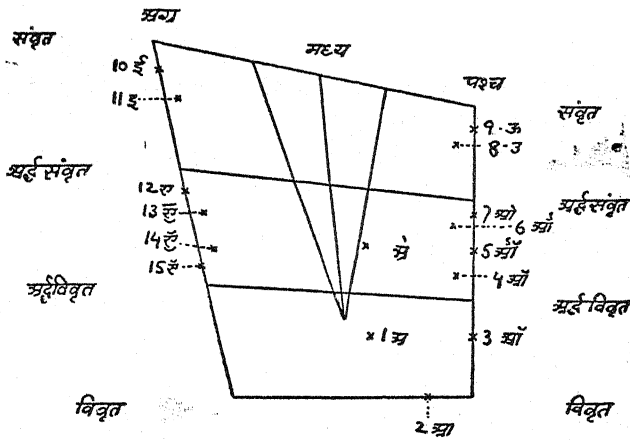
मेच—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,347 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मेमान—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 27 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मेमानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 159 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मेमी—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के, जिसे माओपी कहते है, बोलने वालों की संख्या 90 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मेरिया—इस आदिम जाति भाषा या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,40,583 है, जो सारी की सारी भारत के मध्य भाग में रहती है।

मेवाती—इसके बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,11,083 है, जिसमें 2,993 मध्य भारत में और 1,08,090 पश्चिमोत्तर भारत में रहती है।

मेवाड़ी—इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 20,14,874 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप से बंटी हुई है—मध्य भारत 23,465, पश्चिमोत्तर भारत 19,91,409।

मेवाड़ी-खैरारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 65,098 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

मैथिली (1)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 97,757 है। इनमें से केवल 3 व्यक्ति भारत के मध्य भाग में और शेष पूर्वी भाग में रहते हैं।

मैथिली (2)—बिहारी भाषा की एक बोली। यह गंगा के उत्तर दरभंगा के आसपास बोली जाती है। विशेष दे० बिहारी।

मैथेई—इस आदिम जाति भाषा या उपभाषा को मणीपुरी भी कहते हैं। इसके बोलने वालों की कुल जनसंख्या 4,85,787 है। यह निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप से बंटी हुई है—पूर्वभारत—4,85,759, दक्षिण भारत—2, पश्चिमी भारत—25, मध्य भारत—1।

मैलाप्रॉपिज्म—सुन्दर या बड़े शब्दों के प्रयोग की धुन में शब्दों का अनुचित प्रयोग। शेरिडन के 'द राइवल्स' के एक पात्र श्रीमती मैलाप्राप के आधार पर इस प्रकार के प्रयोगों का यह नाम पड़ा है। उसको इस प्रकार के प्रयोगों की आदत थी। आज हिन्दी में भी लोग उपसर्गों आदि का मनमाना उपयोग कर रहे हैं—जैसे, ज्ञान के लिए अभिज्ञानं आदि और कभी-कभी दुहरे भाववाचक भी लगा बैठते हैं जैसे सौन्दर्यता आदि। इस प्रकार या तो ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिनका अर्थ कुछ और है या जिनका निर्माण ही व्याकरण-सम्मत नहीं है।

मोंगसेन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 337 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मोंडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 46 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मोघिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 162 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मोची—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 145 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

मोनवंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मोनलूम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

मोरानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 74 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

म्रुंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे त्साकचीप और तिपुरा भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 2,586 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

म्ह्—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह महाप्राण, घोष, ओष्ठय, अनुनासिक व्यंजन है। कादरी और सक्सेना न्ह (दे० यथा०) के समान इसे भी संयुक्त व्यंजन नहीं मानते बल्कि मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं। इसकी भी पुष्टि छंदशास्त्र से होती है, उसके अनुसार भी इसका उच्चारण संयुक्ताक्षर की भाँति नहीं होता और पूर्ववर्ती लघु वर्ण दीर्घ नहीं हो जाता। इसका प्रयोग तद्भव शब्दों में ही होता है।

उदा० तुम्हारा, कुम्हार।

म्हार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 13,160 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

य

य्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु, आभ्यंतर प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक विद्वानों के अनुसार वह तालव्य, घोष, अर्द्धस्वर है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जाकर किया जाता है। किन्तु जीभ न चवर्गीय ध्वनियों के समान तालु को अच्छी तरह छूती ही है और न इ आदि तालव्य स्वरों के समान दूर ही रहती है। इसे अर्द्धस्वर के साथ ही अन्तस्थ नाम से भी पुकारते हैं। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार य्, र्, ल् और व् चार अन्तस्थ व्यंजन हैं। हिन्दी की बोलियों में जिस प्रकार व् के स्थान पर ब् हो जाता है उसी प्रकार य् के स्थान पर ज् हो जाता है, जो उच्चारण की दृष्टि से कुछ सरल पड़ता है, जैसे जमुना (यमुना) आदि।

उदा० यमुना, नियम, संशय।

याचम—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के, जिसे यिमस्तुंग भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 429 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

यादुई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 165 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

यिमस्तुंग—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के, जिसे याचम भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 429 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

यूराल-अल्टाइक परिवार—यूराल और अल्टाई पर्वत श्रेणियों के बीच में—टर्की, हंगरी, फिनलैंड से लेकर भूमध्य ओखोट्स्क और उत्तरी सागरों तक के विशाल क्षेत्र में —बोली जाने वाली भाषाओं का परिवार। इसे तूरानी स्कीथियन और फिनो-तातारिक नाम भी दिये गए थे, पर अब यह भौगोलिक नाम चल निकला है। यूराल-अल्टाई क्षेत्र ही इन सभी भाषाओं का मुख्य स्थान रहा था, ऐसा विद्वानों का मत है। वैसे ध्वनि और शब्दसमूह की दृष्टि से यूराल और अल्टाइक ही दो भिन्न परिवार लगते हैं, पर व्याकरण की दृष्टि से दोनों में काफी एकता है।

इस परिवार में तुर्की अश्लिष्ट अन्तयोगात्मक भाषा का एक प्रमुख उदाहरण है। पर फिनिश आदि श्लिष्ट होती जा रही हैं। इस परिवार में धातुएँ अव्ययों की भाँति अविकारी रहती हैं। कभी-कभी सम्बन्ध वाचक सर्वनाम प्रत्यय के रूप में संज्ञाओं के साथ जोड़ दिए जाते हैं। इस परिवार की एक विचित्रता स्वर-अनुरूपता है, प्रकृति के स्वरों के अनुसार प्रत्ययों के स्वर भी बदल जाते हैं, जैसे, लर (बहुवचन के लिए) अट् के साथ अटलर (घोड़े) बनता है और एव के साथ एवलेर (अनेक घर)।

इसके फिनो-उग्रिक और मंगोल-तातार दो विशेष वर्ग हैं। पहले में फिनिश, शूडिक, करेलियन, इस्थोनियन, लैपोनिक आदि फिनिश तथा मनियार, बोगल और ओस्टिआफ उग्रिक भाषाओं के साथ ही बलगैरिक और परमेनियन भाषाएँ और उनकी उपभाषाएँ भी समेटी जाती हैं। दूसरे में शारा या मंगोलियन, बरियट और फल्गुक आदि मंगोलियन भाषाएँ और तुर्की, उइगुरिक, याकूत, किरपिज और नौगेर आदि तातारिक भाषाएँ आती हैं। केवल समोएडिक और टुंगूज दो अवर्गीकृत भाषाएँ बच रहती हैं।

डा० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार टर्की, फिनलैंड और हंगरी के आधुनिक साहित्य का कोई ऊँचा स्थान नहीं है। फिनिश में 16वीं शताब्दी के बाद अच्छा साहित्य मिलता है। इसमें भारोपीय शब्दसमूह का प्रयोग खूब होता है। मनियार भी 12वीं सदी से विकसित होने लगी थी। तुर्की में अरबी और फारसी शब्दों की बहुत बड़ी संख्या पाई जाती है। फारसी में भी बहुत-से तुर्की शब्द आए हैं और उससे और उर्दू से होकर हिन्दी में भी तोप, कैंची, चाकू, चकमक, चोंगा, कलाबत्तू, काबू, उर्दू, मुगल, खान बेगम आदि शब्द खप गये हैं। तुर्की में बाबर ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तुजुक बाबरी' लिखा था। कथा-काव्य साहित्य भी खूब विकसित हुआ है। कमाल पाशा के प्रयत्नों से तुर्की में बहुत सुधार हुए हैं और अरबी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपना ली गई है। फिनिश, तुर्की और मनियार के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

यूरेशिया खण्ड—विश्व की भाषाओं का एक प्रमुख खण्ड। सभ्यता का केन्द्र होने से यह खण्ड सदैव अग्रणी रहा है। इस खण्ड में भाषाओं का प्राचीन से प्राचीन रूप मिलता है और भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी सबसे अधिक अध्ययन इसी खण्ड की भाषाओं का किया गया है।

इस खण्ड में सात मुख्य भाषा परिवार हैं—सैमेटिक, काकेशस, यूराल-अल्टाइक, एकाक्षर, द्राविड़, आग्नेय और भारोपीय। इसके अतिरिक्त एत्रुस्कन, सुमेरी, मितानी कोसी, बन्नी, एलामाइट और हिट्टाइट, कप्पडोसी-जैसी प्राचीन भाषाएँ और कोरियाई, ऐनू, बास्क, हाइपरबोरी, जापानी, अंडमानी, करेनी और बुरुशास्की-जैसी वर्तमान भाषाएं एक अनिश्चित वर्ग में रखी जा सकती हैं। विशेष विवरण दे० यथा०।

येरूकला—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे इसला भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 45,817 है। इनमें से 22,215 भारत के दक्षिणी भाग और 23,602 मध्य भाग में रहते हैं।

योगात्मक भाषा—आकृतिमूलक या रूपात्मक वर्गीकरण की दृष्टि से भाषा का एक मुख्य भेद। इन भाषाओं का डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में अर्थ-तत्व सम्बन्ध तत्व से जोड़ दिया जाता है, इनमें सम्बन्ध तत्व और अर्थ-तत्व का योग होता है। इन भाषाओं में शब्दों की कोई पृथक् सत्ता नहीं रहती, सब कुछ प्रत्ययों पर निर्भर रहता है। इसी से कुछ विद्वान् इन्हें प्रत्यय-प्रधान भाषा भी कहते हैं। जब कि अयोगात्मक

भाषाओं के शब्द प्रधानतः एकाक्षर होते हैं। योगात्मक भाषाओं के शब्द एकाधिक अंशों के मेल से बनते हैं। प्रकृति में जोड़े गए प्रत्ययों से प्रकृति में ऐसा अन्तर नहीं रहता कि वह अपनी सत्ता खो दे और न प्रत्यय परम्परा ही अपना व्यक्तित्व खोती है। डा० गुणे के शब्दों में इन भाषाओं में प्रत्यय जोड़ने पर प्रकृति में भारोपीय भाषाओं जैसा अन्तर नहीं होता। प्रत्ययों को प्रकृति से सरलता के साथ पृथक् किया जा सकता है और उनका पृथक् शब्दत्व भी बना रहता है। भले ही पृथक् शब्द के रूप में उनका उपयोग न हो। इसका लाभ यह है कि एकवचनांत और बहुवचनांत शब्दों का विशेष अन्तर नहीं होता और एक प्रत्यय के रखने-हटाने से ही यह काम पूरा हो जाता है। डा० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार इन भाषाओं का यह सामान्य नियम है कि प्रत्ययांशों का स्वर प्रकृत्यंश के अन्तिम स्वर से मिलता-जुलता होना चाहिए। विकार भी स्वरों की अनुरूपता के नियम के अनुसार ही होते हैं। इन भाषाओं में प्रकृत्यांश और प्रत्ययांश नाममात्र को जुड़े होते हैं और जुड़ने पर भी अपने भेदभाव को स्पष्ट रखते हैं। इसी से डा० मंगलदेव शास्त्री इन भाषाओं को उपचयात्मक या संचयात्मक भी कहते हैं। विशेषतः तुर्की, फिनलैंड और हंगरी की भाषाएँ इस कोटि में आती हैं।

योग के स्वरूप के कारण इन भाषाओं के तीन भेद होते हैं—

1. श्लिष्ट (इन्फ्लेक्टिंग)
2. अश्लिष्ट (सिंपिल एग्लटिनेटिंग), और
3. प्रश्लिष्ट (इनकॉरपोरेटिंग)।

इनके विशेष विवरणों के लिए क्रमशः दे० श्लिष्ट योगात्मक भाषा, प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा और अश्लिष्ट योगात्मक भाषा।

योहेहोवाद—भाषोत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि परिश्रम करते समय मनुष्य अनायास जो ध्वनियाँ निकालता है, उन्हीं ध्वनियों से भाषा की उत्पत्ति हुई। इसे सामान्यतः श्रमपरिहरणमूलकतावाद कहते हैं, पर मैक्समूलर ने इसे योहेहोवाद नाम दिया है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)।

र

र्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान मूर्धा, आभ्यंतर प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्प प्राण,संवार, नाद और घोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह लुंठित अल्पप्राण, वर्त्स्य, घोष ध्वनि है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसके उच्चारण में जीभ की नोक दो-तीन बार वर्त्स या ऊपर के मसूड़े को छूती है। बच्चों को इसके उच्चारण में कठिनाई होती है और वे इसे देर से सीख पाते हैं। चटर्जी और कादरी आधुनिक र को लुंठित (जीभ जिसके उच्चारण में लोटती या लपेट खाती है) न मानकर उत्क्षिप्त मानते हैं। उनके अनुसार जीभ लपेट नहीं खाती।
उदा० रखना, करना, पार।

रंगलुंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 359 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

रंगारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 98 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रघुवंशी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 557 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रणपाउलो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 33 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रनगडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रपंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

रसगोड—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

राँची—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 175 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

राइ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 84,177 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

राजगुर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

राजपूतानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे राजपूती भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 2,386 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

राजवंशी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

राजस्थानी—गुजराती के उत्तर और पंजाबी के दक्षिण तथा हिन्दी (मध्य प्रदेश) के प्रश्चिम में राजस्थानी भाषा बोली जाती है। इस प्रदेश की साहित्यिक भाषा डिंगल रही थी, जिसमें वीरकाव्य का परिपाक देखने को मिला था। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य मारवाड़ी में पाया जाता है। आजकल राजस्थानी की किसी भी बोली को साहित्यिक भाषा का दरजा नहीं मिला हुआ है, बल्कि हिन्दी ही इन प्रदेश की साहित्यिक भाषा है और देवनागरी साहित्यिक लिपि। वैसे घरेलू व्यवहार और हिसाब-किताब में मारवाड़ी या मुड़िया लिपि का प्रयोग होता है, जो मारवाड़ियों के साथ सारे भारत में ही प्रचलित हो गई है। पुरानी मारवाड़ी बोली गुजराती से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में राजस्थानी में चार मुख्य बोलियाँ हैं।

(1) मेवाती-अहीरवाती—अलवर और दिल्ली के दक्षिण (गुड़गाँव) में।

(2) मालवी—मालवा में (इंदौर के आस-पास)।

(3) जयपुरी-हाडौती—जयपुर, कोटा, बूँदी में।

(4) मारवाड़ी-मेवाड़ी—जोधपुर, बीकानेर, जैसलपीर तथा उदयपुर राज्यों में।

प्रकाशित जनगणना पत्र के अनुसार इस भाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 6,45,001 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है—उत्तर भारत 42; पूर्व भारत 12,171; दक्षिण भारत 236; पश्चिम भारत 2,60,627; मध्य भारत 13,503; पश्चिमोत्तर भारत 3,58,422।

राजहड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,403 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

राठिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 237 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

राठी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 18,147 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

राठोरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे लोभंती भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 47 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

राठौरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रानाती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

राभा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 19,033 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

राल्टे—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 51 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

राष्ट्रभाषा—क्षेत्र या प्रदेश विशेष की साहित्यिक या शिष्टसम्मत भाषा को तो हम उस प्रदेश की आदर्श भाषा (दे० यथा०) कह सकते हैं; पर जब कोई बोली प्रदेश विशेष की आदर्श भाषा बनने के बाद अन्य प्रदेशों के बीच परस्पर व्यवहार का माध्यम भी भौगोलिक, राजनीतिक आदि कारणों से बन जाती है, तो वह उन सब प्रदेशों से मिलकर बनने वाले राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा कही जाती है । राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त करने के लिए राजनीतिक और शासकीय मान्यता भी आवश्यक होती है। क्योंकि एक केन्द्रीय सरकार के राजकाज में और प्रदेशों की सरकारों के परस्पर व्यवहार में जब तक उस भाषा को मान्यता नहीं मिलती, वह राष्ट्र-भाषा नहीं कहला सकती। भारत में मध्य देश की भाषा भौगोलिक परिस्थितियों के कारण सदैव समूचे प्रान्तों में पारस्परिक व्यवहार की भाषा रही है और देश की राजधानी के इसी क्षेत्र में स्थित होने के कारण इस प्रदेश की भाषा को राजकीय मान्यता भी सदैव प्राप्त रही है। हिन्दी के साथ आज के प्रजातन्त्रीय शासन में सबसे बड़ा आग्रह यह था कि समूचे देश की लगभग आधी जनसंख्या इसे समझ और बहुत कुछ बोल तक सकती है। इन्हीं कारणों से हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा बन गयी है। यूरोप में बहुत-कुछ आज तक फ्रेंच राज्यों के पारस्परिक व्यवहार की भाषा बनी हुई है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजी का व्यवहार देखकर लोग इसे विश्व की राष्ट्रभाषा या अंतर्राष्ट्रीय भाषा कह सकते हैं। किसी बोली की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा राष्ट्रभाषा बनना ही होती है।

राहित—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

राहिबा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

राही—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रिनवापरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे रिवाई भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रिवाई—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे रिनवापरी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रिवाड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,218 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

रिषि—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 58 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रीऊंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17,586 है। य लोग भारत के पूर्वी भाग त्रिपुरा में रहते हैं।

रीमा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 17 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

रुंगदिग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 41 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते है।

रूढ़ शब्द—कामताप्रसाद गुरु के शब्दों में रूढ़ उन शब्दों को कहते हैं जो दूसरे शब्दों के योग से नही बने। ये शब्द अन्य कारणों से बनकर बहुत समय से अर्थ-विशेष में रूढ़ चले आ रहे हैं। शब्द का यह विभाजन व्युत्पत्ति की दृष्टि से किया जाता है। जब एक शब्द एक अर्थ में रूढ़ हो जाता है, तो उसी शब्द को अर्थान्तर में जोड़ना कठिन हो जाता है। यन्त्रणा दारुण वेदना के अर्थ में रूढ़ है, पर डा० रघुवीर ने इंजीनियरिंग के लिए (संस्कृत शब्द यन्ता के आधार पर) अभियान्त्रिकी शब्द निश्चित किया, जो इसी कारण जनसाधारण में प्रचलित नहीं हो सका।

व्युत्पत्ति में केवल यौगिक शब्दों (दे० यथा०) की रचना का ही विचार किया जाता है, रूढ़ शब्दों की रचना या उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इसका विवेचन व्युत्पत्ति-शास्त्र का विषय नहीं है। भाषाशास्त्री ऐसे रूढ़ शब्द के भाषागत विकास की खोज मूल शब्द के आधार पर करते हैं, परन्तु रूढ़ शब्दों के उपसर्ग धातु, प्रत्यय आदि की विवेचना उतनी सरल नहीं होती।

रूप-विचार—डा० गुणे के शब्दों में रूप-विचार शब्दों के रूपों का अध्ययन है है और इसका लक्ष्य वाक्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों (पदों) के कृत्य और विकास का विवेचन करना है। इस प्रकार पद दो वस्तुओं से मिलकर बनता है—मूल-शब्द और वे विभक्ति-प्रत्यय-परसर्ग आदि जो उसे वाक्य के अन्य शब्दो के साथ जोड़ देते हैं। चेंबर विश्वकोष के अनुसार यह भाषा विज्ञान की स्वायत्त और सर्वव्यापी शाखा नहीं है, क्योंकि चीनी अयोगात्मक भाषाओं में इसका प्रसार नहीं देखा जाता है।

भाषा वाक्यों का समूह है, और वाक्य-ध्वनियों का समूह है। उच्चारण और अर्थ की सुविधा के लिए इस ध्वनि समूह में से छोटे-छोटे ध्वनिसमूह और बना लिए जाते हैं। जिन्हें पद अथवा शब्द कहते हैं। वाक्य के सभी पदों का ग्रहण समष्टि रूप में होता है, परन्तु उनमें से कुछ ध्वनियाँ अर्थतत्त्व का और कुछ सम्बन्ध का (दे० सम्बन्धतत्त्व) बोध कराती हैं। इस सम्बन्धतत्त्व से युक्त ध्वनि समूह (शब्द) ही पद कहे जाते हैं और इनसे युक्त न रहने पर उस ध्वनिसमूह को शब्द कहते हैं। सारांशतः वाक्य में प्रयुक्त (सम्बन्धतत्त्व युक्त) शब्द को ही पद कहते हैं।

शब्दों और पदों के रूप एक से नहीं रहते, बल्कि ध्वनि परिवर्तन की भाँति रूप परिवर्तन भी होता रहता है। दोनों प्रकारों के परिवर्तन निकट के परिवर्तन हैं और मोटे रूप से उनमें अन्तर नही दिखाई देता। रूप परिवर्तन और ध्वनि परिवर्तन के

कारण ही शब्दों और पदों में भी अन्तर आता है। दोनों प्रकार के परिवर्तनों में प्रधान अन्तर यही है कि रूप परिवर्तन का सम्बन्ध शब्द से है, जबकि ध्वनि परिवर्तन का शब्द से इतना साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। दूसरे सामान्य ध्वनि नियम उस भाषा की वैसी सभी ध्वनियों को साधारणतः प्रभावित करते हैं, पर रूप परिवर्तन का क्षेत्र एक शब्द के ही परिवर्तन तक सीमित रहने के कारण अपेक्षतया संकुचित होता है।

पदों के रूपों के विकास के अध्ययन के लिए किसी भाषा के व्याकरण के लिंग, वचन, काल, धातु, विभक्ति, कारक आदि के क्रमिक विकास पर दृष्टिपात करना पड़ता है। अंग्रेजी, बंगला आदि में क्रिया में लिंग भेद नहीं होता, परन्तु हिन्दी में होता है, जिसका कारण हिन्दी क्रियाओं का संस्कृत कृदंत पर आश्रित होना है। संस्कृत में विशेषण का लिंग विशेष्य के अनुसार होता है, पर हिन्दी में कभी ऐसा होता है—कभी नहीं होता है—काली साड़ी, काला कोट, सुन्दर साड़ी और सुन्दर कोट। हिन्दी में लिंग की गड़बड़ी की शिकायत अन्य भाषा-भाषी बहुत समय से करते चले आ रहे हैं। परन्तु पहले तो यदि कुछ गड़बड़ है भी तो वह संस्कृत नपुंसक लिंग के हिन्दी में पुल्लिग या स्त्रीलिंग में परिवर्तित हो जाने के कारण है। दूसरे जैसा डा० बाबूराम सक्सेना का विचार है कोई भी भाषा इस दोष से सर्वथा मुक्त नहीं होती। संस्कृत में स्त्री-वाचक दारा, महिला और कलत्र शब्द क्रमशः पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग हैं। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार स्त्री के लिए पुल्लिग शब्दों का प्रयोग (जैसे संस्कृत दारा) स्त्री के गृहप्रबन्ध आदि पुरुषोचित गुण देखकर किया गया होगा और नपुंसक (जैसे संस्कृत कलत्र) का प्रयोग उसमें पतिगृह जाने पर सामग्री के प्रेषण की भाँति तटस्थता को देखकर किया गया होगा और इसी प्रकार अचेतन जल के लिए अप् स्त्रीलिंग का प्रयोग उसके सुख-शान्ति प्रद गुणों को देखकर किया गया होगा।

लिथुआनियन आदि एकाध भाषाओं को छोड़कर विश्व की प्रायः सभी भाषाओं से द्विवचन का प्रयोग उठ गया है, पर अफ्रीका की कुछ भाषाओं में त्रिवचन भी दिखाई देता है। संस्कृत में द्विवचन के आविर्भाव का कारण डा० बाबूराम सक्सेना नित्ययुग्म इन्द्राग्नी आदि देवताओं और चक्षुषी आदि दुहरे शरीरावयवो में देखते हैं। पाली आदि परवर्ती आर्य भाषाओं में द्विवचन लुप्त हो गया।

कालों के रूपों में वर्तमान के रूप तो प्रायः सभी भाषाओं में स्पष्ट होते हैं, परन्तु भूत और भविष्यत् के विषय में ऐसी बात नहीं है। अंग्रेजी में भी ed लगाकर बनने वाले भूतकाल के रूपों के अनेक अपवाद हैं और इसी प्रकार भविष्यत् के बारे में भी विल और शैल को लेकर गड़बड़ी है। हिन्दी में डा० सक्सेना अवधी के जाय, जाइब, जइबे और ब्रज के जइहैं, जाई आदि का मूल संस्कृत कृत्य रूपों में (जिनका अर्थ चाहिए, होगा आदि होता था) खोजते हैं और खड़ी बोली जाएगा का जाए ∠याति + गा ∠गतः में। हिन्दी भूतकाल के रूप भी बिलकुल सीधे-सादे नहीं हैं। फिर प्रायः

सभी भाषाओं में वर्तमान के सामीप्य में भूतकाल और भविष्यकाल वर्तमानवत् हो जाते हैं तथा और भी गड़बड़ पैदा कर देते हैं।

संस्कृत में धातुरूप परम्परा अत्यन्त विशाल थी। समग्र धातुओं का दस गणों में विभाजन, फिर परस्मैपद, आत्मनेपद (और उभयपद) का भेद, फिर दस लकार, और प्रत्येक के तीन लिंगों और तीन वचनों में नौ-नौ रूप। इन गणों के बाद फिर प्रेरणार्थक, इच्छार्थक आदि अनेकों प्रक्रियाएँ थीं और कर्तृ, कर्म और भाव तीन वाच्य थे। आधुनिक भाषाओं तक आते-आते इतने विशाल विभाजन तो खो गए और इनकी विभिन्नता के इतिहास की खोज आज के भाषा विज्ञानी के लिए असम्भव-सी हो गई है। विभक्तियों और कारकों के विकास को लेकर भी समस्या इतनी सरल नहीं है। रूप-विकास की इन दिशाओं का कुछ अध्ययन हुआ है, परन्तु अभी बहुत-कुछ शेष है।

रूप-विकास की दिशाओं के इस संक्षिप्त दिग्दर्शन के बाद अब इन कारणों को लिया जा सकता है। इन सभी परिवर्तनों में एक प्रधान हाथ सादृश्य का रहता है। बहुत-से कारणों का मूल सादृश्यमूलक प्रवृत्ति में खोजा जा सकता है। सुविधा की दृष्टि से भी कभी-कभी पद-रूपों में परिवर्तन कर लिए जाते हैं। स्मरण शक्ति की कमी अथवा अज्ञान भी कभी-कभी रूपभेद का जनक बन जाता है। परन्तु अज्ञान के द्वारा किये गए रूपभेद प्रायः बाद में सुधार लिए जाते हैं, जैसे क्रिया के लिए करा का प्रयोग, कर नहीं पाता के समान 'पा नहीं पाता' (पा नहीं सकता के स्थान पर) का प्रयोग, या अंग्रेजी ओक्स का बहुवचन सामान्य रीति से ओक्सेज आदि। परन्तु सादृश्य के सहारे किये गए ऐसे बहुत-से रूपभेद ठहर भी जाते हैं जैसे—प्राकृत में गच्छन्तेण, हिमवन्तेण (गच्छता हिमवता के स्थान पर) के रूप। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार पदविकास के कारण दुहरे होते हैं। दिमाग़ का बोझ हल्का करने के लिए भिन्नरूपता के स्थान पर एकरूपता लाना। यह एकरूपता सादृश्य के आधार पर अन्य रूपों के सहारे लाई जाती है। वैयाकरण पीछे चलकर ऐसे रूपों को अपवाद ठहरा देते हैं। परन्तु दूसरी ओर सादृश्य के कारण एकरूपता बढ़ जाने पर अर्थ की बोधगम्यता के लिए अनेकरूपता भी आवश्यक हो जाती है और प्रायः उल्टी गंगा भी बहा करती है। सादृश्य के सहारे सभी रूपों के एक से हो जाने पर अर्थ स्पष्टता के लिए नवीन रूप और सम्बन्ध तत्त्व आवश्यक हो जाते हैं। हिन्दी में अब उत्तम पुरुष एकवचन प्रायः लुप्त हो चला है। उसके स्थान पर एकवचन के लिए भी हम शब्द का प्रयोग बोलचाल में बढ़ गया है। अब बहुवचन और एकवचन का रूप एक हो जाने से कुछ विसादृश्य भी आवश्यक हो गया, इसलिए बहुवचन के लिए हम लोग शब्द प्रयुक्त होने लगा है। कौन कह सकता है कि आगे चलकर शताब्दियों बाद कहीं 'लोग' शब्द सर्वनामों और संज्ञाओं के बहुवचन के निर्देशार्थ एक परसर्ग मात्र नहीं रह जाएगा। इस प्रकार अन्य अनेक परसर्ग भी जन्म लेते हुए देखे जा सकते हैं।

रूपात्मक स्वराघात—व्यक्ति विशेष के लहजे के आधार पर किया जाने वाला स्वराघात का एक नया भेद। व्यक्ति विशेष की उच्चारण विशेषता काइमोग्राफ पर देखी जा सकती है। विशेष दे० स्वराघात।

रूष्टो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

रेंगमा—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के, जिसे रौंगमेई भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 6,048 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

रेम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 373 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

रोंग—भारत की इस लेपचा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

रोवत—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 70 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

रोइसडी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रोहिल्ला—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

रोहिल्ली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

रौंगमेई—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के, जिसे रेंगमा भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 6,048 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

रौत्रा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति अंडमान-नीकोबार में रहता है।

र्ह्—यह र् का महाप्राण रूप है। यह भी न्ह, ल्ह, म्ह की भाँति संयुक्ताक्षर न होकर मूल महाप्राण ध्वनि है, ऐसा कादरी और सक्सेना का विचार है।

उदा० ब्रज—कर्हानो (हिं० कराहना), अवधी—अर्टी (हिं० अरहर)।

ल

ल्—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका उच्चारण स्थान दंत, आभ्यंतर प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट, तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। यह अंतस्थ वर्ण है। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह पार्श्विक, अल्पप्राण, घोष, वर्त्स्य ध्वनि है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसके उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को अच्छी तरह छूती है, किन्तु साथ ही जीभ के दाएँ-बाएँ जगह छूट जाती है, जिसके कारण हवा पार्श्वों से निकलती है (इसी से इसे पार्श्विक ध्वनि कहते हैं)। इसका उच्चारण र के स्थान से ही होता है, पर बच्चों के लिए र की अपेक्षा ल का उच्चारण सरल रहता है।

उदा० लाल, ललना, खाल।

लंधा—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम जंगली भी है, बोलने वालों की संख्या 37 है। इनमें से 16 भारत के पूर्वी और 21 मध्य भाग में रहते हैं।

लंबाडी—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 6,28,166 है। इसमें से 74,754 दक्षिण भारत में रहती हैं और 5,53,412 मध्य भारत में।

लकादीवि—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 27 है। ये लोग अंडमान-नीकोबार में रहते हैं।

लद्दाखी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 70 है। ये लोग भारत के उत्तरी भाग में रहते हैं।

लभानी—बनजारी नामक आदिम जाति बोली या उपभाषा का एक अन्य नाम। विशेष दे० बनजारी।

लम्हाग्रो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 374 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लहंदा—यह पाकिस्तान (पश्चिमी पंजाब) की भाषा है और पंजाबी के साथ इसकी सीमाएँ इतनी मिली हुई हैं कि भेद करना कठिन है। इसके नाम पश्चिमी पंजाबी, जटकी, उच्ची तथा हिन्दकी आदि भी हैं, पर वे उपयुक्त नहीं हैं। लहंदे का अर्थ सूर्यास्त या पश्चिम की दिशा है। इसमें कोई विशेष साहित्य नहीं है। इसका व्याकरण और शब्दसमूह पंजाबी से काफी भिन्न है। इसकी अपनी भिन्न लिपि लंडा है। पर अब यह प्रायः फारसी लिपि में ही लिखी जाती है। उस प्रदेश से आने वाले विस्थापित

भारत में इसे अपने साथ लाए हैं और अब यह केवल उन्हीं विस्थापितों के परस्पर व्यवहार के काम आती है। भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 82 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

लाखेर—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6,381 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

लाड—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 85 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

लाडसी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,821 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

लामकंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,688 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लामा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

लारिआ—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 13,392 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लाल गोबरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

लालुंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 7,824 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लिंबू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 35,586 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लिएंगमई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,353 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लिपि—यह तो निश्चित ही है कि भाषा के विकास के उपरान्त ही लिपि का उद्‌भव और विकास हुआ होगा। जैसा भाषा की उत्पत्ति के विषय में अन्यत्र कहा गया है, अपनी-अपनी भाषा की भाँति ही अपनी-अपनी लिपि को भी कुछ प्राचीनतावादी अपने-अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार विश्व की सर्वप्रथम लिपि मानते रहे हैं। भारतीय पण्डित ब्राह्मी लिपि को ब्रह्मा द्वारा गढ़ी गई मानते रहे हैं, जिसका प्रमाण उसका नाम ब्राह्मी होना ही बताया जाता है। इसी प्रकार के विश्वास अन्य मतावलंबियों के भी हैं। परन्तु वैज्ञानिक खोज से यह धारणा निराधार सिद्ध हो जाती है। यह माना जा चुका है कि भाषा का विकास मनुष्य ने किया। लिपि का विकास भाषा के विकास का पूर्ववर्ती नहीं हो सकता, अतः यह निश्चित है कि लिपि भी मनुष्यों द्वारा ही विकसित की गई, देवताओं द्वारा नहीं। किसी विशेष बात को स्मरण रखने के लिए आरम्भ में किसी व्यक्ति ने कोई चिह्न चला दिया होगा, जिसे

काम का समझकर अन्य लोगों ने भी अपना लिया। इसी प्रकार क्रमशः संशोधन-परिवर्द्धन के बाद पूरी वर्णमाला का विकास हो गया होगा।

लिपि के विकास का क्रमबद्ध इतिहास तो उपलब्ध नहीं है, पर यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री के आधार पर उसकी कुछ अवस्थाओं का अन्दाज किया जाता है।

विश्व की सबसे पुरानी लिपि सम्भवतः रज्जु या ग्रन्थि या सूत्र लिपि रही होगी, जिसका रूप वर्षगांठ या सालगिरह के धागे और 'गांठ बाँधना' आदि मुहाविरों में शेष है। रस्सियों में गांठ बाँधकर या उनके रंगों से इस प्रकार भाव-प्रदर्शन किया जाता था। पशुओं की खालों में मूंगे-मोती आदि विविध रंग की वस्तुएँ बाँधकर भी काम चलाया जाता था। पीरू में इस प्रणाली को क्विपू कहते थे और दो फीट लम्बी रस्सी में लटकने वाले रंग-विरंगे धागों में अनेक प्रकार की गांठों में नाना-प्रकार के भावों का प्रदर्शन किया जाता था।

दूसरा रूप रेखा लिपि का था। देवनागरी अंक १, २ और ३ की उत्पत्ति डा० ओझा के अनुसार क्रमशः —, = और ≡ डैशों से हुई है। रोमन अंक तो आज भी I, II, III हैं। अफ्रीका की कुछ जातियों में आज भी ऐसे लिपि चिह्न चलते हैं।

तीसरा रूप चित्र-लिपि का है। सिन्धु-सभ्यता की मुद्राएँ आज तक भी पढ़ी नहीं जा सकी हैं, परन्तु विद्वानों के विचार से वह चित्र-लिपि का ही एक निदर्शन है। अन्य अनेक देशों के प्राचीन अवशेषों में भी चित्र-लिपि के रूप देखने को मिलते हैं। यह लिपि लोकप्रिय तो रही ही होगी, साथ ही इसका प्रयोग देश-विशेष तक सीमित भी न रहा होगा, क्योंकि हाथी के चित्र द्वारा उसकी अभिव्यक्ति किसी भी देशवासी के निकट हो सकती होगी। परन्तु चित्र-लिपि इतनी सरल न थी। न तो सभी उसका उपयोग कर सकते थे और न वह सभी भावों का शीघ्रतापूर्वक वहन ही कर सकती थी। इसका इतना महत्त्व अवश्य है कि कुछ लिपियों के कुछ अक्षर सम्भवतः इन्हीं भाव-चित्रों से विकसित हुए हैं। वीणा के स्वरूप से 'व' का विकास और अरबी जमल (ऊंट) के स्वरूप से जीभ का विकास इसका उदाहरण बताया जाता है। अंग्रेजी के अक्षर ए, एल और आर क्रमशः अहोम (उकाब चिड़िया), लबोइ(शेरनी) और रो (मुख) के आकार से विकसित हुए हैं, ऐसी विद्वानों की धारणा है।

लिपि के विकास के मुख्य कारण रूप को सुन्दर बनाने का प्रयास, अनुकरण की अपूर्णता, बिना कलम उठाए सुविधापूर्वक लिखने की प्रवृत्ति और लिखने में शीघ्रता है। विश्व की अनेक लिपियों के रूप प्रायः इन्हीं कारणों से विकसित हुए हैं। लिपि के भारतीय-इतिहास के लिए दे० ब्राह्मी, खरोष्ठी, नागरी (यथा०)।

लीखा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

लुंठित—हिन्दी की ऱ्, ऱ्ह् ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं। इसके उच्चारण में जीभ लोटती या लपेटे खाती है, जिह्वाग्र से दो-तीन बार वर्त्स्य या ऊपर के मसूड़ों को शीघ्रता से छुआ जाता है। बच्चों के लिए यह ध्वनि आरम्भ में कुछ कठिन पड़ती है।

लुश्राई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3,121 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लुशेई—भारत की इस आदिमजाति भाषा (या उपभाषा) को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 1,63,600 है। इसमें से 1,63,588 पूर्व भारत में, 10 दक्षिणी भारत में और 2 मध्य भारत में रहते हैं।

लेन्नी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 405 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लेपचा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 27,068 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

लेटिन—भारोपीय के केंटुम् वर्ग का एक भाषा परिवार। इसका नाम इटाली भी है। केल्टिक (दे० यथा०) की तरह इसके भी 'प' और 'क' दो वर्ग हैं—

लेटिन	**ओस्कन**
क्विक	पंपेरिअस
क्वाम	पाम
पेकुअस	पेपो

राजनीतिक कारणों से बाद में 'प' वर्ग की भाषाओं का लोप ही हो गया और उनके रूप अब शिलालेखों में ही देखे जा सकते हैं। 'प' प्रधान भाषाओं को अम्ब्रो सेमिनिटिक कहते हैं, जिसमें अम्ब्रियन, ओस्कन, सेबाइन, सार्सियन, विसेटाइन, बोलस्कियन आदि आती हैं। 'क' प्रधान भाषाओं के पहले संस्कृत लेटिन और प्राकृत लेटिन (लिंगुआ रोमना) दो भेद किए जाते हैं। प्राकृत लेटिन को निओलेटिन या व्लगार लेटिन भी कहते हैं। फिर इनके अन्तर्गत इटाली, स्पेनिश, पुर्तगाली, रेटोरोमानिक या रोमांश भाषाएँ, रोमानियन, प्रोव्हेंकल, फ्रेंच और सेफार्डी भाषाएं आती हैं।

'प' प्रधान अम्ब्रोसेमिनिटिक भाषाओं में अम्ब्रियन और ओस्कन ही मुख्य हैं, जो शब्द समूह के अलावा परस्पर काफी समान हैं। इन दोनों के अवशेष सिक्कों, शिलालेखों आदि में ही मिलते हैं, क्योंकि इनके प्रदेशों में अब 'क' प्रधान भाषाओं का राज्य है।

रोम साम्राज्य के साथ-साथ लेटिन भी खूब विकसित हुई। इसके 500 ई० पू० तक के शिलालेख मिलते हैं। इसके प्राचीन संहित रूपों में भारोपीय परिवार के स्पष्ट लक्षण दीख पड़ते हैं। उपधा पर बल प्रयोग इसका एक गुण है। यह भी अनेक भारोपीय भाषाओं की भाँति संयोग से वियोग की ओर प्रवृत्त होती रही है। प्राचीन लेटिन का काल 500 ई० पू० से 300 ई० तक माना जाता है। मध्यकालीन लेटिन के साहित्यिक (संस्कृत) और जनसाधारण की (प्राकृत) दो भेद माने गए हैं। यह तीसरी से सातवीं सदी तक साहित्य में प्रयुक्त होती रही। बाद में निओ-लेटिन विकसित हुई, जो विशाल रोम साम्राज्य के कारण लिंगुआ रोमना बन गई। रोम साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर स्थानीय बोलियाँ स्वतन्त्र भाषाएँ बन गईं और

रोमांश भाषाएँ कहलाईं। इनमें फ्रेंच, इटाली, स्पेनिश, पुर्तगाली, रूमानियन प्रधान हैं। रोमांश भाषाएँ स्पेन, फ्रांस, पुर्तगाल, बेलजियम, स्विट्जरलैण्ड, रोमानियां, सिसली, इटली के साथ ही अमेरिका और अफ्रीका महाद्वीपों में भी बोली जाती हैं।

इन भाषाओं में सबसे प्रधान भाषा फ्रेंच है। इसी का दूसरा रूप प्रोवेंकल है, जिसमें नवीं सदी में साहित्य लिखा जाने लगा था। प्रोवेंकल दक्षिणी फ्रांस की साहित्यिक भाषा है, पर यह फ्रेंच की तुलना नहीं कर सकती। फ्रेंच पेरिस की बोली का विकसित रूप है। फ्रांस की राजभाषा के साथ ही इसे समस्त यूरोप के शिक्षित वर्ग की भाषा होने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। आज भी यह विश्व की एक प्रमुख भाषा है और अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया के भी कुछ क्षेत्रों में प्रचलित है।

इटाली इटली, सिसली, और कोर्सिका में बोली जाती है और संस्कृति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसके 7वीं सदी तक के लेख मिलते हैं। फ्लारेंस नगर में उत्पन्न होकर महाकवि दांते ने अपना अमर काव्य लिखा, तभी से फ्लारेंटाइन बोली साहित्य में विशेष समादृत हो गई। आज वही साहित्यिक भाषा है, पर अन्य बोलियों में परस्पर बहुत अधिक अन्तर पाया जाता है। उनका साहित्य भी अलग-अलग है।

आइबेरियन प्रायद्वीप की पुर्तगाली और स्पेनिश भाषाएँ परस्पर विशेष भिन्न न होने पर भी राजनीतिक कारणों से भिन्न मानी जाती हैं। इन पर फ्रेंच और यूर भाषाओं का भी प्रभाव है। यहाँ के यहूदियों की भाषा सेफार्डी है, जो अनेक बातों में सेमेटिक परिवार से मिलती-जुलती है।

रेटोरोमन (रेटियन, रोमांश या लेद्रिक) इटली, आस्ट्रिया और स्विट्जरलैण्ड के कुछ भागों में बोली जाती है। रूमानियन डेन्यूब के किनारे रूमानियां, ट्रांसिलवेनिया और यूनान के कुछ भागों में बोली जाती है। इस पर स्लाव भाषाओं का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसमें कुछ विशेष पुराने लक्षण पाए जाते हैं।

लैरिंगोस्कोप—शीशे के इस यन्त्र के द्वारा स्वरतन्त्री को बाहर दिखाया जाता है। 1807 में बोजिनी ने सबसे पहले यह बताया कि इस प्रकार भीतर के बहुत-से अंग बाहर दिखाए जा सकते हैं। 1829 में बोबिंगटन ने सबसे प्रथम इसकी सहायता से स्वरयन्त्र मुख को देखने की चेष्टा की। 1854 में संगीतज्ञ गार्शी ने इसकी सहायता से अपने और अन्य संगीतज्ञों के स्वरयन्त्र को देखा। बाद में जरयक और ब्राउने आदि ने इसे और भी विकसित किया।

इससे स्वरयन्त्र आदि को बोलते समय देखकर ध्वनियों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन तो किया जा सकता है, परन्तु इसे मुख में भीतर डालना पड़ता है और ऐसा करने पर हम स्वाभाविक रूप से बोल नहीं सकते। इसी कारण यह यन्त्र भाषा वैज्ञानिकों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। इसी कारण हिगनर, पैंकोनसेली और फ्लेटाड आदि ने इसके सुधारने की चेष्टा की है। पैंकोनसेली ने औटोफोनोस्कोप बनाया। फ्लेटाड का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उसने एंडोस्कोप बनाया, जिसके सहारे मुँह बन्द रहने पर भी स्वरयन्त्र का अध्ययन हो सकता है।

लोधंती—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे राठोरा भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 47 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

लोधी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12,142 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

लोन्या खर्दका—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 13 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

लोप—उच्चारण की सुविधा आदि के लिए शब्दों के आदि मध्य या अन्त में स्वरों, व्यंजनों या अक्षरों का लुप्त हो जाना। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि परिवर्तन।

लोहारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 105 है। इनमें से 67 व्यक्ति भारत के पश्चिमोत्तर और शेष मध्य भाग में रहते हैं।

लौकिक व्युत्पत्ति—व्युत्पत्ति के सामान्य नियमों पर बिना ध्यान दिए की जाने वाली मनचाही व्युत्पत्ति को भ्रामक या लौकिक व्युत्पत्ति कहते हैं। विशेष दे० व्युत्पत्ति शास्त्र।

ल्ह्—यह ल् का महाप्राण रूप है। कादरी के अनुसार यह भी न्ह, म्ह की भाँति मूल महाप्राण स्वर है। डा० धीरेन्द्र वर्मा का कहना है कि हिन्दी की बोलियों में इसका प्रयोग बराबर मिलता है।

उदा० ब्रज-काल्हि (हिन्दी कल)।

ल्होटा—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 22,402 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

व

व्—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका उच्चारण स्थान दंत्योष्ठ, आभ्यंतर प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट तथा बाह्य प्रयत्न अल्पप्राण, संवार, नाद और घोष हैं। नए विद्वान् भी इसे दंत्योष्ठ्य संघर्षी घर्ष-ध्वनि बताते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण भी नीचे के होंठ को ऊपर के दाँतों से लगाकर किया जाता है, साथ ही होंठ और दाँतों के बीच से रगड़ खाकर कुछ हवा निकलती रहती है। यह ध्वनि-पवर्गीय ब् ध्वनि की अपेक्षा कठिन है, इसी कारण हिन्दी में व् से शुरू होने वाले बहुत से शब्द अब ब् से लिखे तक जाने लगे हैं और बोलने में तो व् ध्वनि सुन ही पड़ती है।

उदा० वसंत, चावल, प्रभाव।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह कंठ्योष्ठ, घोष, अर्द्ध स्वर है। जब व् हलंत अक्षर के बाद संयुक्त होकर आता है, तो इसका उच्चारण न तो साधारण व् की भाँति दंत्योष्ठ्य रहता है और न पवर्गीय ब् की भाँति ओष्ठ्य रहता है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग भी तालु की तरफ उठता है, किन्तु कोमल तालु को स्पर्श नहीं करता। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार हिन्दी की अवधी आदि बोलियों में यह ध्वनि विशेष रूप से पाई जाती है।

उदा० क्वांरा, अध्वर्यु।

वट्टेलुत्तु लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार[1] यह तामिल लिपि (दे० यथा०) का ही घसीट रूप है। इसके अक्षर बहुधा गोलाई लिये हुए या ग्रंथिदार होते हैं। यह मद्रास के पश्चिमी तट और दक्षिणी भाग में सातवीं शताब्दी के आस-पास में प्रचलित थी और इसके रूप चोलों, पांडवों आदि के शिलालेखों और दान-पत्रों में मिलते हैं। अब इसका प्रचलन उठ गया है।

वर्त्स—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में अलकोला कहते हैं। हिन्दी में साधारणतः इसे ऊपरी मसूड़ा भी कहते हैं और संस्कृत में कुछ लोग वर्स्व के पक्ष में हैं। विशेष दे० ध्वनि-अव्यव।

वर्त्स्य—तालु के अन्तिम भाग ऊपरी मसूड़ों और जीभ की नोक से उच्चरित होने वाले वर्ण; उदा० न्, न्ह्। चटर्जी के अनुसार वैदिक काल में पूरा तवर्ग वर्त्स्य माना

---

1. दे० भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ 44 और 96।

जाता था। दन्तमूल के ऊपर उभरे हुए भाग को वर्त्स कहते हैं (दन्तमूलादुपरिष्टा-दुच्छ्नः प्रदेशः)। अंग्रेजी में इसे पोस्ट डैंटल, अलकोलर, या टीकरिज व्यंजन कहते हैं।

वदरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,747 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

वहरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5,702 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

वन्नी—विश्व की उन अनिश्चित और प्राचीन भाषाओं में से एक, जिनका किसी भाषा-परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। इस भाषा में कुछ शिला-लेख मात्र मिले हैं, इसलिए इसके बारे में विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता है। ये शिला-लेख प्रायः 1,000 ई० पू० के हैं।

वर्नर नियम—ग्रिम नियम और ग्रासमान नियम (दे० यथा०) के बाद भी कुछ अपवाद रह गए। साधारण नियम के अनुसार hunthred, yarth, olth आदि रूप होने चाहिए। इनके समाधान के लिए कार्ल वर्नर ने तीसरा ध्वनि नियम निकाला। वर्नर के अनुसार यदि मूल भाषा के क् त् ब् और स् के शब्द-मध्य में आने पर उनके अव्यवहित पूर्व में स्वराघात या कोई उदात्त स्वर रहता है, तो उनके स्थान में ह्, प्, फ् और स् आते हैं, और उनके पश्चात् स्वराघात होने पर उनके स्थान में ग्, द्, ब् और र् हो जाते हैं। इस प्रकार संस्कृत सप्त, और शत के गाथिक सिबुन और हुन्द रूप सिद्ध हो जाते हैं।

कार्ल वर्नर के अनुसार यदि क्, त्, प् आदि के पूर्व में स् मिला हो (स्क्, स्त्, स्प् आदि हों) तो जर्मन आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता, जैसे लेटिन पिस्किस का गाथिक फिस्कस और लेटिन अस्टर का अंग्रेजी स्टार आदि।

विशेष दे० ग्रिम नियम, ध्वनि नियम।

वाक्य—गार्डिनर के शब्दों में उस शब्द या शब्द समूह को, जिसके अन्त में विराम होता है और जिसमें एक बात पूर्ण हो जाती है, वाक्य कहते हैं। संस्कृत वैयाकरणों ने वाक्य की यह परिभाषा की थी कि कम-से-कम एक क्रिया एक वाक्य में अवश्य होनी चाहिए,[1] और कुछ ग्रीक वैयाकरणों का भी ऐसा ही विचार था, परन्तु गार्डिनर का कहना है कि यह आवश्यक नहीं है कि एक क्रिया बिना वाक्य पूरा न हो। बात-चीत के वाक्य (विशेषतः अपढ़ या कम पढ़े व्यक्तियों की बोलचाल के वाक्य) अपेक्षतया छोटे होते हैं और क्रिया का होना आवश्यक नहीं रहता। उदाहरण के लिए जब बच्चा माँ से कहता है 'भूख', 'रोटी', तो यद्यपि वह किसी क्रिया का व्यवहार नहीं करता, तथापि इतना स्पष्ट है कि उसने उतनी स्पष्ट बात कर दी है जो दो विस्तृत और क्रिया सहित वाक्यों ('मुझे अब बहुत जोर से भूख लगी है' 'जल्दी से

1. एकतिङ् वाक्यम्।

खाने के लिए रोटी दो') द्वारा पूरी होती। वस्तुतः वाक्य की परिभाषा को लेकर विद्वानों में बड़ा भारी मतभेद है। री के शब्दों में वाक्य भाषण की व्याकरण की दृष्टि से गठित वह छोटी-से-छोटी इकाई है, जो अपना आशय अभिव्यक्त कर देती है और इस आशय का यथार्थ से जो संबंध है, उस पर सदैव ध्यान रखती है।[1] पाल के शब्दों में वाक्य इस तथ्य की भाषात्मक अभिव्यक्ति या प्रतीक है कि वक्ता के मन में कोई बात या कई बातें मिलकर संयुक्त हो गई हैं और वह उनको श्रोता के मन में उसी प्रकार संयुक्त रूप में पहुँचाना चाहता है।[2] कुंट के शब्दों में वाक्य एक संमिश्र बात का अंगभूत भागों में मनचाहा विभाजन करते हुए भाषात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें ये भाग तर्कसंगत श्रृंखला में रहते हैं।

वाक्यपदीयकार के अनुसार, भाषण में वाक्य से पृथक् शब्दों की स्वतन्त्र स्थिति नहीं होती।[3] व्यावहारिक तथा शास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि शब्द भाषा का चरम-अवयव होता है, तथापि तात्पर्य की दृष्टि से वाक्य ही भाषा का चरमावयव सिद्ध होता है।[4] व्यवहार और उच्चारण की दृष्टि से भी शब्दों का वाक्य से स्वतंत्र अस्तित्व न होने के कारण वाक्य को ध्वनि समूह कह सकते हैं। गार्डिनर आदि परवर्ती विद्वानों ने ह्विटने की यह धारणा निर्मूल सिद्ध कर दी है कि शब्दों के बिना वाक्य की स्थिति न होने से वाक्य से भाषण का आरम्भ मानना अनर्गल और निराधार है। नई खोजों के अनुसार यह सिद्ध हो गया है कि पहले वाक्यों या वाक्य शब्दों का प्रयोग होता है और धीरे-धीरे शब्दों का पृथक् विभाजन होता है। अतः वाक्य और शब्द दोनों की यद्यपि स्वतंत्र सत्ता स्पष्ट हो गई है, तथापि व्यावहारिक रूप में वाक्य के बिना शब्दों का स्वतंत्र अस्तित्व प्रतीत नहीं होता।[5]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाषा का आरम्भ ही वाक्यों से हुआ है और सर्वत्र वाक्य ही प्रधान हैं। कुछ भाषाओं में वाक्यों के शब्दों में विभाजन की कृत्रिम क्रिया न होने से आज भी अलग-अलग शब्द नहीं हैं, पर वाक्य हैं और एक शब्दवत् प्रयुक्त होते हैं। अतः पुराने वैयाकरणों की इन दो बातों में से एक भी बात आज मान्य नहीं है कि वाक्य में शब्द समूह या एकाध शब्द होने चाहिए और एक क्रिया आवश्यक है। दूसरी ओर आधुनिक भाषाविज्ञानियों का तो यहाँ तक विचार है कि वाक्य बातचीत या वक्तव्य का सम्पूर्ण खंड नहीं है, बल्कि उसका एक अंग मात्र है। पढ़े-लिखे व्यक्ति लिखने में एक अटूट विचारधारा के प्रकाशन के लिए जिस एक लम्बे वाक्य का प्रयोग करते हैं और एक बात को पूर्णतः अभिव्यक्ति करने के लिए एकाधिक छोटे-छोटे वाक्यों का सहारा लेते हैं। यह बात कम पढ़े-

1. गार्डिनर स्पीच एंड लैंग्वेज, पृष्ठ 239 पर उद्धृत।
2. वही, पृष्ठ 240-241।
3. वाक्यात्पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन—वाक्यपदीय 177।
4. भाषा रहस्य, पृष्ठ 79।
5. डा० बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 138-44।

लिखे या अपढ़ लोगों में और अधिक मात्रा में पाई जाती है। अतः इन सब बातों पर विचार करते हुए वाक्य पूरी बात का सम्पूर्ण अंग न होकर एक अवयव मात्र रहता है।

इन सब कठिनाइयों को देखते हुए कुछ वैयाकरणों ने वाक्य की वह परिभाषा भी की थी कि जितनी बात अविराम एक साँस में कही जाए, एक वाक्य होती है। परंतु डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में यह लक्षण केवल बोलचाल के छोटे-छोटे वाक्यों पर ही घटित हो सकता है, साहित्यिक भाषा के वाक्यों पर नहीं।[1] साधारण मनुष्य तीन सेकिंड तक बिना गहरी साँस लिए बोल सकता है। बोलचाल के छोटे-छोटे वाक्यों को छोड़कर सामान्यतः बड़े वाक्य में हम 4-5 शब्दों बाद साँस ले लेते हैं। अतः इस लक्षण में भी अव्याप्ति रहती है।

वाक्यों का विवेचन भारत, ग्रीस, इटली आदि देशों में व्याकरण का एक प्रमुख अंग रहा है, भाषा विज्ञान में, जिसे व्याकरणों का व्याकरण कहा जाता है, अब वाक्य विचार की चर्चा होने लगी है और वह भी भाषा-शास्त्र का एक अंग बन गया है (विशेष दे० वाक्य विचार)।

वाक्य-विचार—वाक्य-विचार बोधगम्य प्रतीकों या शब्दों का व्यवहार द्वारा निश्चित होने वाले उनके पारस्परिक सम्बन्ध के अनुसार क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थापन है।[2] यह सामान्यतः सभी भाषाओं के व्याकरणों का और विशेषतः प्राचीन ग्रीस, इटली और भारत के व्याकरणों का एक विशेष अंग रहा है। परंतु भाषा विज्ञान में (जिसे व्याकरणों का व्याकरण या तुलनात्मक व्याकरण कहते हैं) वाक्य-विचार पर विद्वानों की दृष्टि थोड़े काल से ही गई है। परस्पर संबंध वाली (एक परिवार या निकट सम्पर्क वाली) भाषाओं की वाक्य-रचना का तुलनात्मक अध्ययन भाषा विज्ञान के नए उन्नति-प्राप्त अंगों में से एक है।[3] अब विद्वान् यह मानने लगे हैं कि भाषा का प्रस्फुटन वाक्य रूप में ही होने के कारण भाषा की रचना और गठन पर विचार करते हुए सबसे पहले वाक्य की रचना पर ही विचार करना चाहिए। तुलनात्मक वाक्य-विचार द्वारा सम्बंधित भाषाओं में कर्त्ता, कर्म, क्रिया, आदि की क्रम व्यवस्था या तुलनात्मक अध्ययन करने से उनके वर्गीकरण में भी विशेष सहायता मिलती है। दो भाषाओं का सम्बन्ध, एक की वाक्य गत पदयोजना की तुलना दूसरी भाषा की पदयोजना से करते हुए, निर्धारित किया जा सकता है। इससे यह भी निश्चित किया जा सकता है कि दोनों की वाक्य-व्यवस्था का कितना अंश उनकी मूल भाषा से चला आ रहा है और कितना पीछे से जुड़ गया है या कितनी विशेषता थोड़े काल से ही आ गई है।

---

1. डा० बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 144।

2. डा० पी० डी० : गुणे इण्ट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 7, 9-80 और चैम्बर्स विश्वकोष।

3. डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 58।

प्रारम्भ में भाषा के उच्चारण सम्बन्धी और प्रकृति प्रत्यय सम्बन्धी विचार को ही अधिक प्रधानता दी गई थी और वाक्य की रचना के भेदों के विचार की उपेक्षा ही की गई थी।[1] बोप के समय ऐतिहासिक वाक्य-विचार पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था और लाँग के 1852 में प्रकाशित निबन्ध को छोड़कर उस समय तक इस विषय पर कोई भी साहित्य उपलब्ध न था। तत्पश्चात् विंडिश और डेलब्रुक ने अपने ग्रंथ[2] में तुलनात्मक वाक्य-विचार का अध्ययन शुरू किया। परन्तु भाषा विज्ञान की इस शाखा को पूर्ण मान्यता ब्रुगमेन और डेलब्रुक के 1893 में प्रकाशित ग्रंथ[3] की पाँचवीं जिल्द में प्राप्त हुई। अब भी समर, हिर्ट, बम्ब आदि वैयाकरणों के लेटिन, ग्रीक और संस्कृत के व्याकरण ग्रंथों में ध्वनि और विभक्ति साधारणतः इन दो बातों पर ही विचार किया जाता है।[4]

अयोगात्मक भाषा पूर्णतः वाक्य-प्रधान होती है। विभक्ति युक्त भाषाओं में वाक्य का बहुत कुछ काम विभक्तियों से चल जाता है। बहुत संश्लेषी भाषाओं में रूप (शब्द) नहीं होते और कुछ तत्वों के आधार पर वाक्य रचना होती है। अतः सब भाषाओं के सम्बन्ध में वाक्य की सामान्य परिभाषा (शब्दसमूह का व्यवस्थापन) लागू नहीं हो सकती, यद्यपि अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं की बात दूसरी है। अतः वाक्य के विषय में किसी नियम को सर्वांश में लागू नहीं किया जा सकता। आज यह भी एक तीव्र विवाद का विषय बना हुआ है कि वाक्य रचना रूप के अनुसार मानी जाए या कृत्य के अनुसार या दोनों के अनुसार और इसके भित्ति निर्माण में तर्कशास्त्र का सहारा लिया जाए या मनोविज्ञान का।[5]

भाषाओं का आकृतिमूलक वर्गीकरण चार प्रकार के वाक्यों के आधार पर किया जाता है। कुछ लोगों ने यह कल्पना की थी कि ये चार प्रकार के भेद भाषाओं में क्रमशः होते-मिटते रहते हैं। यह भाषा चक्र निरंतर घूमता रहता है। पर जेस्पर्सन आदि की ऐतिहासिक खोजों से इस कल्पना की पुष्टि नहीं हुई है। कोई एक भाषा इन चारों प्रकार के वाक्यों में नहीं आ सकती। वैसे यह कहा जा सकता है कि भाषा की सामान्य प्रवृति संहिति से व्यवहिति की ओर रहती है, वह प्रारम्भिक काल में जटिल, समस्त और स्थूल रहती है, पर धीरे-धीरे सरल व्यस्त और सूक्ष्म होती जाती है।[6] स्वीट के शब्दों में संस्कृत में विभक्ति-प्रधानता और समास-प्रधानता का प्रमत्त अतिरेक हो गया था। आगे चलकर योरोपीय भाषाएँ क्रमशः योगात्मक से अयोगात्मक होती गई हैं। आज केवल लिथुआनियन पूर्णतः योगात्मक या संहित बनी

1. डा० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 58।
2. Synta ktische Forrchungen. (1871-88)।
3. Vergleichende Grammatik (Syntax)।
4. डा० पी०डी० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलौलौजी, पृष्ठ 80।
5. चैंबर विश्व कोष।
6. भाषा रहस्य, पृष्ठ 86-88।

हुई है, जिसका कारण वहाँ की संचरणहीन भौगोलिक स्थिति है। हिब्रू और अरबी दोनों एक परिवार की भाषाएँ हैं और दो हजार वर्ष पूर्व दोनों समान रूप से योगात्मक थीं, पर विचरणशील यहूदियों के आश्रित रहने से आज हिब्रू अपेक्षतया अधिक अयोगात्मक है। इसी प्रकार फारसी और संस्कृत में भी अयोगात्मकता अनुदिन बढ़ती गई है। (विशेष दे० आकृतिमूलक वर्गीकरण)।

इस प्रकार वाक्यों में कुल चार प्रकार हैं—

1. अयोगात्मक[1]—हिन्दी और अंग्रेजी का कोई भी वाक्य इसके उदाहरण में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार के वाक्य सभी शब्द स्वतंत्र होते हैं और मिलकर वाक्य को बनाते हैं। उनमें उद्देश्य और विधेय तथा उसके काल-कारक-सम्बन्ध को निगत, स्वर अथवा स्थान विशेष पर स्थिति द्वारा ही प्रकट किया जाता है। चीनी, बर्मी, तिब्बती स्यामी, और अनामी भाषाएँ वर्तमान योरोपीय भाषाओं की अपेक्षा भी कहीं अधिक अयोगात्मक हैं। चीनी में 'न्गो ता नी' का अर्थ है मैं तुम्हें मारता हूँ और 'नी ता न्गो' का (मैं और तुम का न्गो और नी का विपर्यय कर देने से) अर्थ है, तुम मुझे मारते हो। हिन्दी—राम ने मोहन को मारा और मोहन ने राम को मारा में भी बहुत-कुछ ऐसा ही विपर्यय है। परन्तु हिन्दी में कर्ता के बाद कर्म और तब क्रिया के आने का नियम इतना स्थिर नहीं है।

2. प्रश्लिष्ट योगात्मक—इस प्रकार के वाक्यों में उद्देश्य-विधेय और उनके काल-कारक सम्बन्ध एक बड़ा शब्द बन जाते हैं। इस प्रक्रिया में प्रत्येक शब्द का कुछ अंश कट जाता है और एक पूर्ण संश्लिष्ट वाक्य शब्द की सृष्टि करता है। जैसे मैक्सिकन में नेवत्ल, नवत्ल और क शब्दों का अर्थ क्रमशः मैं, माँस और खाना होता है और नीनकक का अर्थ होता है (जिसमें प्रत्येक शब्द का कुछ अंश लिया गया है) मैं माँस खाता हूँ। इसी प्रकार अमेरिका की चेरोकी भाषा में नातन, अमोखल और निम शब्दों का अर्थ क्रमशः लाना, नाव और हम है और नाधोलिनिन का अर्थ है—हमें (हमारे लिए) नाव लाओ। इसी प्रकार ग्रीनलैण्ड की भाषा में भी अउलिसरि, पेर्तोर और पिन्नेसुअर्पोक् शब्दों का अर्थ है, क्रमशः मछली मारना, काम में लगना और वह शीघ्रता से करता है, और अउलिर्सरीअर्तोरसुअर्पोक् इस शब्द वाक्य का अर्थ है वह मछली मारने के लिए जल्दी जाता है। इन वाक्यों[2] का विश्लेषण कर सकना सरल नहीं है।

3. अश्लिष्ट योगात्मक—इन वाक्यों[3] में प्रकृति और सम्बन्ध प्रकट करने के लिए

---

1. इसे अंग्रेजी में आइसोलेटिंग और हिन्दी में व्यास प्रधान, स्थान प्रधान, एकाक्षर, एकाच् धातुप्रधान, निरिन्द्रय, निरवयव, निर्योग और वियोगात्मक भी कहते हैं।

2. इसे समास प्रधान, संघात प्रधान, संघाती, बहुसंश्लेषा (षणा) त्मक, बहुसंहित, बहुसंमिश्रात्मक वाक्य शब्दात्मक (इनकारपोरेटिंग) या अव्यक्त योगात्मक (होलोफ्रास्टिक) भी कहते हैं।

3. इसे प्रत्यय प्रधान, प्रकृति प्रत्यय प्रधान, संयोगी, संयोगप्रधान, व्यक्तयोग, उपचयात्मक या संचयोन्मुख (अंग्रेजी एग्लटिनेटिंग) भी कहते हैं।

जोड़े गए प्रत्यय बिलकुल स्पष्ट रहते हैं और इस कारण स्थान विशेष की स्थिति पर कोई ध्यान नहीं देना पड़ता। बांतू परिवार की जुलू भाषा में तु (हमारा), न्तु (आदमी), चिल (सुन्दर) और मवोनकल (देख पड़ना) शब्दों में प्रत्ययों को जोड़कर तथा एक बचन के लिए 'उमु' और बहुवचन के लिए अब चिह्न जोड़कर दो वाक्य बनते हैं। उमुन्तु बेतु ओमुचिल उयबोनकल (हमारा आदमी देखने में भला है), अबतु बेतु अबचिल बयबोनकल (हमारे आदमी देखने में भले हैं)। इनमें प्रत्यय प्रकृतियों को विकारयुक्त किए बिना ही कारक वचन आदि भेद स्पष्ट कर रहे हैं। यही बात तुर्की भाषा में भी देखी जाती है। आदर्श कृत्रिम भाषा एस्पेरेंतो का निर्माण भी इसी आदर्श पर किया गया था।

4. श्लिष्ट योगात्मक—इस प्रकार के वाक्यों[1] में शब्दों का पारस्परिक कारक-वचन सम्बन्ध विभक्तियों द्वारा (जो घिसे हुए परतन्त्र या विकृत प्रत्यय ही हैं) निर्दिष्ट किया जाता है। अश्लिष्ट योगात्मक वाक्यों से इनका भेद यही है कि इनमें विभक्तियाँ (प्रत्यय) अपना अस्तित्व खो बैठती हैं, जबकि अश्लिष्ट योगात्मक वाक्यों में प्रत्यय स्पष्ट बने रहते हैं। अरबी, संस्कृत के वाक्य इस कोटि में आते हैं। कामात्क्रोधोऽभिजायते 'वाक्य' में प्रत्ययों की प्रकृति से भिन्न सत्ता नहीं रही है। यही बात अरबी के 'कान जैदुन आलिमन' (ज़ैद विद्वान था, या है) में है।

वैयाकरणभूषणकार ने अखण्ड वाक्य स्फोट का निरूपण किया है। ग्रीस, इटली और भारत के पुराने अभिलेखों से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि वाक्य-विभाजन के लिए विराम चिह्नों का प्रचलन पहले न था। भाषारहस्य के लेखक वाक्य के एक साँस में बोले जाने वाले गौणवाक्यों को एक-एक श्वास वर्ग मानते हैं। बोलचाल में वाक्यों के इस विभाजन को कुछ लोग वाक्यों के अग्र या पश्च इन दो विभाजनों के रूप में भी देखते हैं। उद्देश्य और विधेय नामक भाग योरोपीय भाषाओं में तो सरलता से किए जा सकते हैं, पर अन्य सभी भाषाओं के विषय में यह बात इसी रूप में लागू नहीं की जा सकती। प्रत्येक भाषा के वाक्यों में शब्द-व्यवस्था या पद-क्रम पृथक्-पृथक् रीति से होता है। हिन्दी और अंग्रेजी की सामान्य कर्ता, कर्म, क्रिया व्यवस्था हर समय अपवादहीन बनी रहे, ऐसी बात नहीं है। अंग्रेजी में प्रश्नात्मक वाक्यों में सामान्य क्रम बदल जाता है। परन्तु उपर्युक्त विवेचन से कम-से-कम यह स्पष्ट हो गया है कि अयोगात्मक भाषाओं में पदक्रम का विशेष महत्त्व रहता है। हाँ, योगात्मक भाषाओं में विभिन्न पदों का समुचित अन्वय या संगति भी आवश्यक होती है। उदाहरण के लिए संस्कृत में विशेषणों के लिंग, वचन और विभक्ति सदैव विशेष्य के समान रहते हैं।[2]

1. इसे विभक्ति प्रधान, विकारी, विकृति प्रधान, विकार प्रधान, प्रकृति प्रधान, संस्कार प्रधान, संमिश्रात्मक या संश्लेष प्रधान (अंग्रेजा इन्फ्लैक्टिंग) भी कहते हैं।

2. डा॰ बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 144-145।

डा० गुणे के अनुसार वाक्य विचार मुख्यतः वाक्य के पदों का विवेचन है।[1] हमारे आचार्यों ने संकेत ग्रहण के चार स्थलों—जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया को माना था। वैयाकरणों ने संज्ञा, प्रातिपदिक, अव्यय, तिङन्त (क्रिया), कृदन्त, तद्धित, सर्वनाम आदि भागों में शब्द शास्त्र का विभाजन किया था। अरस्तू ने संज्ञा, विशेषण, क्रिया और अव्यय चार पद-भेद माने। आज अंग्रेजी में इनकी संख्या आठ हो गई है। क्रिया विशेषणों और अव्ययों के अध्ययन से क्रमशः विकसित होने वाले वाक्य-निर्माण पर काफी प्रकाश पड़ता है। ब्रील का विचार है कि क्रिया विशेषणों का विकास अपेक्षतया ताजा है। ह्विटने का भी ख्याल है कि अन्य अव्ययों का विकास भी मूल भारोपीय भाषा के विभिन्न भाषाओं में विभाजन के बाद हुआ है। सर्वनामों और धातु रूपों के विकास की कहानी भी वाक्य-विन्यास के इतिहास की आश्चर्यजनक घटनाओं पर प्रकाश डालती है। परन्तु कारकों के विकास की कहानी और विशेषतः द्विवचन के रूपों के लुप्त होते जाने की बात से तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य विचार का अध्ययन भाषाओं के विकास के इतिहास के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी अंग है। वाक्य-विचार का यह अध्ययन दो प्रकार का हो सकता है ऐतिहासिक और तुलनात्मक। ऐतिहासिक वाक्य विचार के अन्तर्गत किसी भाषा-विशेष की वाक्य रचना के सम्बन्ध में विवेचन किया जाता है। उदाहरणतः भारोपीय भाषाओं की वाक्य रचना का विचार करने में नाम और आख्यात, विशेष्य और विशेषण तथा क्रिया आदि के पारस्परिक तथा कालकारक सम्बन्ध पर ऐतिहासिक दृष्टि से दृक्पात किया जाता है। दूसरी ओर चीनी आदि भाषाओं में काल और क्रिया आदि के भेदों का विवेचन आवश्यक नहीं होता। परस्पर सम्बन्ध वाली दो भाषाओं के तुलनात्मक विचार से दोनों की विशेषताओं पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला जाता है। इस तुलना का क्षेत्र विभिन्न परिवारों की विभिन्न भाषाओं के वाक्यों तक विस्तृत करना भी आवश्यक हो जाता है। इसी अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि यह जरूरी नहीं है कि एक परिवार के लिए निश्चित किये गए वाक्य-व्यवस्था सम्बन्धी सिद्धान्त दूसरे परिवारों की भाषाओं में भी खरे उतरें। इस कारण वाक्य विचार के सामान्य सिद्धान्तों और साधारण निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न भाषा-परिवारों की वाक्य-रचना पर विचार किया जाए। पहले तो इस विषय पर जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, विद्वानों का ध्यान गये हुए बहुत अधिक समय नहीं हुआ है, दूसरे यह विषय इतना कठिन और सूक्ष्म है कि इस ओर साधारण प्रयत्न करना भी अत्यन्त दुष्कर कार्य है। हिन्दी की वाक्य-रचना पर तो अभी थोड़ा-सा भी विचार नहीं हुआ है।

अन्त में वाक्य-विकास के कारणों पर भी दृक्पात कर लेना चाहिए। ध्वनि परिवर्तन और रूप-परिवर्तन के लिए जो कारण उत्तरदायी होते हैं, प्रायः उन्हीं का

1. दे० डा० पा० डी० गुणे : इण्ट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलोजी, पृष्ठ 80-83।

प्रसार वाक्य-विकास में भी देखा जा सकता है। इन कारणों के साथ ही कुछ अन्य कारण भी हैं। वाक्यों के योगात्मक से क्रमशः अयोगात्मकता की ओर बढ़ने का एक मुख्य कारण ध्वनि परिवर्तन के साथ-साथ विभक्तियों का घिसता जाना है। बाद में अर्थ की गड़बड़ को बचाने के लिए सहायक शब्द जोड़ने पड़ते हैं। विदेशी वाक्य-विन्यास का प्रभाव भी सम्पर्क में आने वाली भाषाओं के वाक्य-विन्यास पर पड़े बिना नहीं रहता। आधुनिक भारतीय भाषाओं के वाक्यों पर अंग्रेजी वाक्यों की छाप सहज ही देखी जा सकती है। कभी-कभी युक्ति को सबल तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए भी स्वाभाविक पद-क्रम में व्युत्क्रम कर दिया जाता है, जैसे जलकर ही रहेगी यह सोने की लंका। भावना के उद्रेक या ऐसे ही अन्य कारणों से वक्ता की मानसिक स्थिति के प्रभावित होने पर भी वाक्य-विन्यास में कुछ परिवर्तन सम्भव हो जाता है।

वाक्य शब्दात्मक—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

वागड़ी (1)—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 5,16,991 है, जो सारी की सारी पश्चिमोत्तर भारत में रहती है।

वागड़ी (2)—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 53 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

वाणी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 30 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

वातकारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 6 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

वारू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

विओन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

विकार प्रधान—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य विचार—श्लिष्ट योगात्मक।

विकारी—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—श्लिष्ट योगात्मक।

विकासवाद—भाषा के उद्गम के विषय में नाना सिद्धान्तों का विवेचन करने के बाद विद्वान् डारविन के विकासवाद के प्रभाव में भाषा को भी विकसित होता हुआ मानते हैं, और इसमें बहुत कुछ सचाई भी है। ध्वनि सम्बन्धी विकास के साथ ही रूपसम्बन्धी और अर्थ सम्बन्धी विकास भी होता रहता है। मैक्समूलर ने इसे बोली सम्बन्धी पुनरुद्धार (डाइलेक्टिक रीजेनरेशन) कहा है। जिसे लोग भाषा का बिगड़ना कहते हैं, वह वस्तुतः भाषा का विकसित होना ही है। भाषोत्पत्ति के विषय में इस विकासवाद के

सहारे भाषा-वैज्ञानिक यह कल्पना करते हैं कि वह धातुओं, विस्मयादिबोधकों, अनुकरणात्मक ध्वनियों, श्रमपरिहरणमूलक ध्वनियों और अन्य आदिम मनोवेगाभिव्यंजक ध्वनियों का विकसित रूप है। विशेष दे० भाषोत्पत्ति।

विकृति प्रधान—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—श्लिष्ट योगात्मक।

विपर्यय—उच्चारण की सुविधा आदि की दृष्टि से स्वरों और व्यंजनों की उलट-फेर। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

विभक्ति प्रधान—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—श्लिष्ट योगात्मक।

वियोगात्मक—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अयोगात्मक।

विरिगा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 10 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

विवार—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के प्रथम, द्वितीय वर्णों और श, ष, स का बाह्य प्रयत्न संवार होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

विवृत—एक आभ्यन्तर प्रयत्न। स्वरों और श, ष, स, ह का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

विशिष्ट भाषा—व्यवसाय विशेष या वर्ग विशेष में आदर्श भाषा (दे० यथा०) के कुछ विशिष्ट रूप प्रयुक्त होने लगते हैं। इनमें विभिन्नता बहुत कुछ शब्दावली के चुनाव और प्रचलन के कारण होती है। कभी-कभी उच्चारणों की दृष्टि से भी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। भूगोल की दृष्टि से भाषा में जो विभिन्नता आती है, उसे तो बोली, (दे० यथा०) विभाषा या उपभाषा (डायलेक्ट) के नाम से पुकारा जाता है, परन्तु आदर्श भाषा के कुछ अभौगोलिक रूप या प्रकार भी होते हैं। ब्रिटिश विश्व कोष में चोरों, डाकुओं की भाषा को आर्गोट (दस्यु भाषा) नाम से पुकारा गया है, यह गुप्त और गढ़ी हुई भाषा होती है (दे० कृत्रिम भाषा)। प्रसिद्ध अंग्रेजी कोषकार वेब्सटर के अनुसार कैंट (अपभाषा, कल्पित वर्गीय भाषा), जार्गन (अनर्गल भाषा), आर्गोट (दस्यु भाषा) और लिंगो (परभाषा) मूलत: एक विशेष वर्ग की शब्दावली मात्र हैं। इनमें कैंट शब्द सामान्यत: उपहास और घृणा के लिए प्रयुक्त किया जाता है और बहुधा रूढ़िगत, धार्मिक आदि शब्दावली के लिए प्रयुक्त होता है। ब्रिटिश विश्व कोष के अनुसार जिप्सी या अन्य बिलकुल कृत्रिम भाषाओं के लिए इस शब्द का व्यवहार होता है। उसके अनुसार अनावश्यक प्राविधिक और कठिन शब्दों के प्रयोग के लिए जार्गन (अनर्गल भाषा) एक घृणात्मक शब्द है। वेब्सटर के अनुसार स्लैंग को बहुधा कैंट या जार्गन का पर्याय माना जाता है, पर स्लैंग (गँवारू भाषा) बहुत कुछ स्थल विशेष की भाषा होती है और प्राय: लोक-प्रचलित परन्तु अनधिकृत शब्दों के उपयोग का निर्देश करती

है। स्लैंग शब्द गाँवों की (गँवारू बोली) ही नहीं, अपितु नगरों की बोली के लिए और कालेजों की बोली के लिए भी चलता है। सामाजिक वर्गों के सुनिश्चित होने पर शिष्ट और अपढ़ों की भाषा में विशेष अन्तर आ जाता है। इस प्रसंग में हम संस्कृत नाटकों का उल्लेख कर सकते हैं, जहाँ शिक्षित पात्रों के लिए संस्कृत तथा अपढ़ और नारी पात्रों के लिए प्राकृत का प्रयोग होता था। भाषा की प्रवृति के अननुरूप विदेशी शब्दों पर नए गढ़े हुए शब्दों का प्रयोग बर्बर-प्रयोग (बार्बेरिज्म) के नाम से पुकारा जाता है। बोलचाल की भाषा (कोलोकलिज्म) उस भाषा के लिए कहा जाता है, जिसका निकट सम्बन्धियों, मित्रों आदि के बीच अनौपचारिक रूप में निःसंकोच प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु औपचारिक गोष्ठियों और शिष्ट समाज में इसका प्रयोग वर्जित रहता है। समाज की दृष्टि से असंगत शब्दों तथा गुप्तांगों आदि के नामों के प्रयोग को अश्लील भाषा कहते हैं। ये सब विशिष्ट प्रकार की भाषाएँ हैं।

विषयीकरण—दो समान या अनुरूप या सवर्ण व्यंजनों के पास-पास रहने पर एक का असमान हो जाना, इसे विषयीकरण या असावर्ण्य या अनुरूपता कहते हैं। पूर्व व्यंजन के बदलने पर पूर्व या पुरोगामी और पिछले व्यंजन के बदलने पर पर या पश्च ये दो भेद हो जाते हैं। यह ध्वनि परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि परिवर्तन।

विसर्ग—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका उच्चारण स्थान कंठ है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार विसर्ग का ह् अघोष है, जब कि साधारण ह् घोष है। उच्चारण की दृष्टि से अन्य किसी बात में इसका साधारण ह् से कोई अन्तर नहीं है। (विशेष दे० 'ह्')। इसके उच्चारण में हवा जोर से बाहर फेंकी जाती है, यही इसका 'ह्' के उच्चारण से अन्तर है। डा० धीरेन्द्र वर्मा इसे स्वरयन्त्र मुखी, अघोष, संघर्षी ध्वनि कहते हैं। हिन्दी में विसर्ग का प्रयोग संख्यावाचक छः और छिः आदि विस्मयादि बोधक अव्ययों को छोड़कर संस्कृत तत्सम शब्दों में ही होता है। दुख में इसका उच्चारण क् सा होता है और अब साधारण दुःख भी बहुत प्रचलित हो गया है। ख्, छ्, ठ्, थ्, और फ् इन अघोष महाप्राण व्यंजनों में (क्+ह् आदि) विसर्ग या अघोष ह् पाया जाता है।

उदा० प्रायः, बहुशः।

वृत्ताकार स्वर—अग्र स्वर, पश्च स्वर और मध्य स्वरों की विवेचना (दे० यथा०) में जीभ के भागों पर और संवृत, अर्द्ध संवृत, अर्द्ध विवृत तथा विवृत प्रयत्नों की विवेचना (दे० यथा०) में जीभ के ऊपर उठने वाले भाग के परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। इन दोनों बातों के अतिरिक्त स्वरों के उच्चारण से होठों की स्थिति का भी सम्बन्ध है। बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में स्वरों का उच्चारण करते समय वे स्वाभाविक अर्थात् उदासीन अवस्था में रहते हैं अथवा इस प्रकार सकुंचित हो जाते हैं कि उनके बीच में कभी गोल और कभी लम्बा विवर बन जाता है। मूल

स्वरों (दे० यथा०) में परिगृहीत अग्र स्वरों में ज्यों ही हम विवृत से संवृत की ओर बढ़ते हैं, होंठ अधिकाधिक फैलते जाते हैं। मूल स्वरों में ई और ए अवृत्ताकार स्वर हैं, और शेष स्वर वृत्ताकार स्वर हैं।

वैदिक ध्वनि समूह—मैकडानेल के वैदिक व्याकरण और अलेन वेग की संस्कृत ध्वनि पुस्तिका आदि के अनुसार वैदिक काल में 52 ध्वनियाँ थीं, जिनमें निम्न 13 स्वर और 39 व्यंजन थे :

स्वर

समान (मूल) स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ॡ

संधि स्वर—ए, ओ, ऐ, औ

व्यंजन

कण्ठ्य—क, ख, ग, घ, ङ

तालव्य—च, छ, ज, झ, ञ

मूर्धन्य—ट, ठ, ड, ळ, ढ, ळ्ह, ण

दंत्य—त, थ, द, ध, न

ओष्ठ्य—प, फ, ब, भ, म

अंतस्थ—य, र, ल, व

ऊष्म—श, ष, स

प्राणध्वनि—ह

अनुनासिक—ं (अनुस्वार)

अघोष ऊष्म—(विसर्ग) ᳵ ᳶ (जिह्वामूलीय और उपध्मानीय)

वैदिक काल में इनका उच्चारण आज जैसा ही हो, ऐसी बात नहीं है। ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार ऋ का उच्चारण वर्त्स्य था।[1] ॡ का उच्चारण चटर्जी के अनुसार अंग्रेजी लिटिल के दूसरे ल की भाँति था।[2] ए, ओ को लेकर भी विशेष विवाद है कि ये मूल स्वर थे या संधि स्वर। आइ, आउ, में भी प्रथम स्वर ह्रस्व हो गया था। व्यंजनों में दो विशेष मूर्धन्य ध्वनियाँ थीं, जो अब लुप्त हो गई हैं। चवर्गीय तालव्य स्पर्श ध्वनियों में सोष्मता कम थी और वे स्पर्श संघर्षी न होकर केवल मात्र स्पर्श थीं, पीछे सोष्म श्रुति बढ़ गई। मूर्धन्य टवर्गीय ध्वनियाँ आज की अपेक्षा मूर्धा के अधिक ऊँचे स्थान से उच्चरित होती थीं। तवर्ग का उच्चारण स्थान दन्त न होकर वर्त्स था। इ उँ शुद्ध अर्द्ध स्वर थे। अनुस्वार का भी वैदिक उच्चारण भिन्न था, वह स्वर के पीछे सुन पड़ने वाली एक अनुनासिक श्रुति थी। अनुस्वार केवल य र ल व श ष स ह के पहले आता था, स्पर्श व्यंजनों के पहले यह परसवर्ण होकर वर्गीय अनुनासिक व्यंजन बन जाती थी। इसी प्रकार विसर्ग भी कवर्ग के पहले जिह्वामूलीय और पवर्ग के पहले उपध्मानीय बन जाती थी।

---

1. दे० डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ 77।
2. चटर्जी : बंगाली लैंग्वेज, पृष्ठ 130।

बैंफेई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 4,436 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

वोल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के पूर्वी भाग में रहता है।

व्यंजन—आधुनिक भाषा शास्त्रियों के अनुसार उस घोष या अघोष ध्वनि को व्यंजन कहते हैं, जिसके उच्चारण करते समय मुख-विवर में पूर्ण या अधूरी बाधा उपस्थित होती है। साधारणतः विद्वान् स्वरों की सामान्य परिभाषा करने के बाद कह देते हैं कि ऐसा न होने पर व्यंजन होते हैं। व्यंजन अपेक्षतया कम देर तक सुनाई पड़ते हैं, और बिना स्वर के सहारे विशेष टिक नहीं सकते। व्यंजनों के वर्गीकरण के लिए आठ उच्चारणोपयोगी अवयवों—कंठ, काकल, मूर्धा, तालु, वर्त्स, दन्त, ओष्ठ (द्वयोष्ठ और दन्तोष्ठ) और जिह्वा मूल—के क्रम से बाँटा जाता है। फिर स्वरतन्त्रीय प्रयत्नों के अनुसार घोष और अघोष (दे० यथा०) तथा प्राणत्व के आधार पर अल्प-प्राण और महाप्राण (दे० यथा०) भेद किए जाते हैं। ये भेद बाह्य प्रयत्नों के आधार पर हैं। आभ्यंतर प्रयत्नों के आधार पर स्पर्श, स्पर्श संघर्षी, अनुनासिक, पार्श्विक, लुंठित और उत्क्षिप्त (दे० यथा०) भेद किए जाते हैं। विशेष दे० ध्वनि विज्ञान, संयुक्त ध्वनि।

व्यक्त योग—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अश्लिष्ट योगात्मक।

व्यास प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—अयोगात्मक।

व्युत्पत्ति शास्त्र—ब्रिटिश विश्वकोष के अनुसार व्युत्पत्ति शास्त्र का अर्थ शब्दों के मूल का खोजना और इस प्रकार मिलने वाला मूल दोनों ही हैं। व्युत्पत्ति शास्त्र के अन्तर्गत शब्दों के मूल रूपों और उनके अर्थों पर प्रकाश डाला जाता है। आधुनिक व्युत्पत्तिशास्त्री का अर्थ चैम्बर विश्वकोष के अनुसार शब्दों की मूल धातु तक पहुँचना होता है—इसके विपरीत शब्द रचना में धातुओं के सहारे शब्दों की रचना का अध्ययन किया जाता और उपसर्ग, अन्तःसर्ग, परसर्ग आदि के द्वारा शब्दों के गठन, संकुचन, विस्तार आदि पर प्रकाश डाला जाता है, पर वह अर्थ विचार (दे० यथा०) का अंग बन जाता है। जैसा आगे चलकर बताया जाएगा पहले व्युत्पत्तियाँ केवल कल्पना के सहारे की जाती थीं, परन्तु अब भाषा विज्ञान इस दिशा में अपेक्षतया कहीं अधिक वैज्ञानिक-प्रक्रिया का दावा करने लगा है और सभी शब्दों पर तथा उनके अर्थों के विकास पर समुचित ध्यान दिया जाता है। व्युत्पत्ति के स्पष्ट न होने पर सभी उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों का—उन शब्दों के प्रयोग आदि का सहारा लिया जाता है और कभी-कभी बड़ा द्राविड़ प्राणायाम भी करना पड़ता है।

ह्निटने के अनुसार शब्दों के विषय में बाल सुलभ जिज्ञासा और युवक व्युत्पत्ति-

शास्त्री की जिज्ञासा में विशेष अन्तर नहीं होता[1]। बच्चा पहले पहल जो भाषा सीखता है उसे ही स्वाभाविक मानता है और दूसरी भाषा की सत्ता का अनुमान भी नहीं लगाता, परन्तु शब्दों को याद करने की यह प्रक्रिया उस समय अपेक्षतया अधिक स्पष्ट होती है, जब वह दूसरी भाषा (विदेशी भाषा) सीखता है।

वाल्टेयर का उद्धरण देते हुए मैक्समूलर व्युत्पत्तिशास्त्र के विषय में कहते हैं कि व्युत्पत्तिशास्त्र में ध्वनि अथवा अर्थ की समानता का कोई महत्त्व नहीं है[2]। ध्वन्यात्मक व्युत्पत्तिशास्त्र का ध्वनि से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कभी-कभी वही शब्द विभिन्न भाषाओं में विभिन्न रूप धारण कर लेता है, जैसे संस्कृत दंत्, अंग्रेजी टूथ, लेटिन डैन्स, डैन्टिश, गोथिक टुन्पुस। कभी-कभी वही शब्द उसी भाषा में विभिन्न रूप धारण करता है, जैसे संस्कृत पत् धातु से बनने वाले दो शब्दों पत्र और पतत्र का एक ही अर्थ है। कभी-कभी विभिन्न शब्द विभिन्न भाषाओं में वही रूप धारण करते हैं, जैसे संस्कृत लोकयति अंग्रेजी लुक आदि। कभी-कभी उसी भाषा में विभिन्न शब्द वही रूप धारण करते हैं जैसे संस्कृत नव, नूतन, नवीन, नूत्न आदि। इन उदाहरणों के आधार पर मैक्समूलर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानवीय भाषा में दिखाई पड़ने वाले परिवर्तन अकस्मात् नहीं हो गए हैं, बल्कि कुछ ज्ञेय सामान्य नियमों के अनुसार हुए हैं।[3]

एरिक पार्टिज के शब्दों में व्युत्पत्ति शास्त्र का अर्थ शब्देतिहास नहीं है। यह नहीं समझ लेना चाहिए कि व्युत्पत्तिशास्त्र से शब्दों के इतिहास का तात्पर्य अनिवार्यतः निकलता ही है। व्युत्पत्तिशास्त्र शब्दों के केवल वर्तमान अर्थ (या नानार्थक शब्दों के अर्थों) पर ही प्रकाश डालता है और वैधानिक या पारिभाषिक शब्दों के मूल अर्थ की गुत्थी सुलझा देता है, पर शब्देतिहास शब्दों के मूल का ही नहीं बल्कि उनके अर्थ के विकास पर भी प्रकाश डालता है।[4]

भाषा विज्ञान का वर्तमान वैज्ञानिक विकास होने से पूर्व भाषाशास्त्रियों का मुख्य कार्य शब्दों की व्युत्पत्ति का निर्वचन करना मात्र था। वैसे आज भी यह विषय भाषा विज्ञान की अन्य शाखाओं में सबसे अधिक रोचक है और शब्दों के नाम के विषय में स्वाभाविक जिज्ञासा का समाधान करता है। डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में शब्दों की व्युत्पत्ति या निर्वचन से आशय यह है कि हम एक अस्पष्ट रचना वाले शब्द के इतिहास के जानने की इच्छा से उन मूलशब्दों या अंशों का पता लगाते हैं, जिनसे वह शब्द बना है या उपर्युक्त इच्छा से ही हम एक शब्द के प्राचीन स्वरूप का उसी भाषा में और यदि वह शब्द किसी दूसरी भाषा से साक्षात् या परम्परया लिया गया है तो उस दूसरी भाषा में पता लगाते हैं। शब्दों के स्वरूप और अर्थ का कारण

1. डब्ल्यू० डी० ह्विटने : लाइफ एंड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 19।
2. लैक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 267।
3. वही, पृष्ठ 328।
4. दि वर्ल्ड आफ वर्ड्स, पृष्ठ 150।

खोजते हुए उनके प्राचीन स्वरूपों और अर्थों के साथ उनके सम्बन्ध को जोड़कर उनके इतिहास और वंशावली का पता लगाना ही शब्द व्युत्पत्ति का मुख्य प्रयोजन है।

इस प्रकार व्युत्पत्तिशास्त्र और रूप विचार परस्पर अधिक निकट आ जाते हैं और कुछ लोग दोनों को एक मानते रहे हैं। परन्तु वस्तुतः दोनों शाखाओं में मूलतः अन्तर है। विशेष दे० रूप विन्यास।

साधारणतः व्युत्पत्तिशास्त्र में किसी शब्द को लेकर सबसे पहले यह देखा जाता है कि वह उसी भाषा का शब्द है या किसी विदेशी भाषा से आया है। उसी भाषा का शब्द होने पर उसके मूल, धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि की जिज्ञासा की जाती है और यह देखा जाता है कि क्या उसने मूल धात्वर्थ को सुरक्षित रखा है या अर्थ में परिवर्तन हो गया है और यदि हुआ है तो इस परिवर्तन का कारण क्या है। विदेशी भाषा का शब्द होने पर उस भाषा में उस शब्द के अर्थ, प्रस्तुत भाषा में उसके ग्रहण के काल और कारण, तथा प्राचीन रूप और अर्थ के सुरक्षित रहने या परिवर्तन हो जाने आदि बातों पर विचार किया जाता है। इस प्रकार इस प्रक्रिया में शब्दों के पूरे जीवन पर प्रकाश डाला जाता है और रूप, ध्वनि और अर्थ तीनों के ही परिवर्तनों का विस्तृत विवेचन किया जाता है। भोलानाथ तिवारी के शब्दों में किसी शब्द के जन्म और सम्पूर्ण जीवन पर ध्वनि विचार, रूप विचार और अर्थविचार तीनों के सम्मिलित रूप और प्रयोग का नाम व्युत्पत्तिशास्त्र है।

व्युत्पत्तिशास्त्र की वर्तमान प्रक्रिया अपेक्षतया कहीं अधिक वैज्ञानिक है, यह ऊपर बताया जा चुका है। आज प्राचीन स्वेच्छाचारिता नाममात्र को भी नहीं रह गई है। यद्यपि अब भी विद्वान् यह मानते हैं कि शब्दों और अर्थों के विकास को सर्वथा निश्चित नियमों में नहीं बाँधा जा सकता, तो भी आज किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए दिए जाने वाले प्रमाणों की मांग बढ़ गई हैं, तथा इस प्रक्रिया के कुछ सामान्य नियम भी निश्चित कर दिये गए हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री ने शब्द व्युत्पत्ति के निम्नांकित तीन साधारण नियम गिनाए हैं—

1. शब्दों की व्युत्पत्ति का निर्धारण ठीक-ठीक अनुसंधान पर निर्भर होता है, अतः शब्दों की व्युत्पत्ति मनमानी कल्पित नहीं की जा सकती। शब्दों के इतिहास का पता लगाने में भी साक्ष्य और प्रमाण की उतनी ही अपेक्षा है, जितनी दूसरे ऐतिहासिक अनुसंधान में।

2. प्रत्येक भाषा का परिवर्तन कुछ वर्ण विकार सम्बन्धी (दे० ध्वनिनियम) विशेष नियमों के अनुसार हुआ करता है। इन नियमों का उल्लंघन अकारण या बिना प्रमाण के न करना चाहिए।

3. शब्दों की व्युत्पत्ति करने से जिस प्रकार हमारा ध्यान शब्दों के शाब्दिक रूप पर रहता है इसी तरह हमें उनके अर्थ की भी उपेक्षा न करनी चाहिए।

व्युत्पत्ति सामान्यतः दो प्रकार की होती है, 1. ऐतिहासिक व्युत्पत्ति और 2. भ्रामक व्युत्पत्ति। इन्हें हम कुछ लोग अलौकिक और लौकिक व्युत्पत्ति भी कहते हैं। पहली

व्युत्पत्ति में उक्त नियमों का पालन करते हुए ऐतिहासिक और वैज्ञानिक प्रक्रिया को अपनाया जाता है। दूसरी प्रकार की व्युत्पत्ति जनसाधारण द्वारा अटकल के सहारे केवल बाह्य साम्य के आधार पर की जाने वाली मनचाही और स्थूल व्युत्पत्ति है। जैसे नाई शब्द की व्युत्पत्ति खोजते-खोजते कुछ लोग ऐतिहासिक प्रक्रिया को अपनाते हैं और संस्कृत—स्नापित, नापित; पाली—नहापितो आ०भा०आ० ण्हावी, ण्हाउ आदि से तुलना करते हुए और राजस्थान में नाई को पहले स्नान कराकर तब उससे बाल बनवाने की प्रथा में प्रमाण खोजते हुए इस शब्द की व्युत्पत्ति ढूँढ़ते हैं और कुछ लोग 'न्यायी' शब्द से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं[1]। अंग्रेजी नीयर का सम्बन्ध भोजपुरी नियरे से जोड़ना भी ऐसी ही भ्रामक व्युत्पत्ति है। हम्बोल्ट ने दक्षिण अमरीका की केंचुवा भाषा में संस्कृत इन्द्र, मन्यु और विपुल शब्दों को खोजकर भी कुछ ऐसा ही प्रयास किया था। चेम्सफोर्ड का मूल चिलमफोड में खोजना और उसके लिए वैसी कहानी गढ़ लेना भी लौकिक या भ्रामक व्युत्पत्ति का ही उदाहरण है। एस्पेरागस का मूल स्पेरोग्रास में खोजना भी कुछ ऐसी ही बात है। संस्कृत के धुरन्धर पक्षपातियों ने अनेकों यूरोपीय देशों के नामों का तथा अन्य अनेक विदेशी शब्दों का मूल संस्कृत शब्दों में खोजने का प्रयास किया है।

डेनमार्क	—	धेनुमार्ग
मिस्टर	—	मित्र
स्वीडन	—	सुयोधन
अरब	—	आर्यवाह
इंतकाल	—	अन्तकाल
वालिद	—	पालक
स्कैंडेनेविया	—	स्कन्ध निवासी

उक्त सूची देते हुए डा० मंगलदेव शास्त्री स्वयं संस्कृत शब्दों की ही कुछ मनमानी व्युत्पत्तियों का उल्लेख करते हैं।[2] निरुक्तकार ने शाकटायन की ऐसी व्युत्पत्तियों की हँसी उड़ाई थी। यही बात हिब्रू को लेटिन और ग्रीक का मूल मानने वाले पादरियों द्वारा तैयार किये गए अनेकों कोषों के विषय में भी, जो अब बिलकुल बेकार हो गए हैं, कही जा सकती है। जेस्पर्सन ने भी इस रूप-विचार सम्बन्धी पांडित्य प्रदर्शन की खूब हँसी उड़ाई है और उसका विचार है कि अकेली अंग्रेजी में ही ऐसे शब्दों की लम्बी सूची तैयार की जा सकती है, जो बाद में व्युत्पत्ति शास्त्रियों द्वारा स्वयं व्यर्थ समझ कर छोड़ दिये गए। एरिक पार्टिज ने भी जेस्पर्सन की इस बात की पुष्टि की है।[3]

वैसे शब्दों के इतिहास का पता लगाने की यह प्रक्रिया बड़ी मनोरंजक और रोचक

1. भाषा रहस्य, पृष्ठ 19।
2. दे० भाषा विज्ञान, पृष्ठ 136-137।
3. एरिक पार्टिज : वर्ल्ड आफ वर्ड्स, पृष्ठ 149।

है। गवेषणा (=अनुसन्धान) का मूल अर्थ गाय की इच्छा (खोज) था, जुगुप्सा में आने वाली गुप् धातु क्रमशः (1) गाय पालना; (2) पालना; (3) छिपाना अर्थों को अपनाते हुए; (4) घृणा करना अर्थ में बदल गई। अभ्यास शब्द मूलतः (अभि+असन्—अस्त्र फेंकना) बार-बार फेंकने के अर्थ में प्रयुक्त होता था।[1] मैक्समूलर के अनुसार एक मूल 'मर्' धातु से ही मलन (रगड़ना), मूर्च्छे, मरु, मरुत्, मृव्, (शत्रु) मार्ज, मार्जार, मृद्, और मृदु आदि अनेक भिन्नार्थक धातुओं और शब्दों का जन्म हुआ।[2] व्युत्पत्ति खोजने की यह प्रक्रिया निश्चय ही बड़ी रोचक है।

1. विशेष दे० मंगलदेव शास्त्री : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 130-133।
2. मैक्समूलर : लैक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 348।

श

श्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान तालु, आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद्विवृत (या विवृत) तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह अघोष, संघर्षी, तालव्य ध्वनि है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण करने में जीभ की नोक द्वारा कठोर तालु को रगड़ के साथ छुआ जाता है। बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार इसके उच्चारण में जीभ द्वारा तालु का पूरा स्पर्श नहीं होता, अतः तालु और जीभ के बीच में से रगड़ खाती हुई हवा बिना रुके आगे निकल जाती है। इसमें 'शी' 'शी' के समान ऊष्मा के निकलने से इसे ऊष्म ध्वनि भी कहते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ ही सभी विदेशी भाषाओं से आये हुए शब्दों में भी यह पाई जाती है। बोलियों में श् के स्थान पर स् का उच्चारण होता है।

उदा० विवश, शोक, शायद, शेयर, शेम्पेन।

शब्द—आधुनिक विद्वानों के अनुसार शब्द निश्चित मनोवैज्ञानिक इकाई है। हमारी जानी हुई अधिकांश भाषाओं में उसका एक निश्चित रूप होता है, पर सभी भाषाओं में अव्याप्त या अतिव्याप्त न होने वाला लक्षण खोज सकना कठिन है। संस्कृत के एक शब्द 'जायते' के लिए हिन्दी में 'होता है', 'हो जाता है' और 'पैदा हो जाता है', इस प्रकार 2-3-4 तक शब्द प्रयुक्त होते हैं। यही बात अन्य भाषाओं के विषय में भी कही जा सकती है। चैम्बर विश्वकोष के अनुसार बोलते समय हम शब्द नहीं बोलते, बल्कि एक श्वास में एक बार निकलने वाले और साधारणतः एक पूरे वाक्य से छोटे श्वास-वर्ग का प्रयोग करते हैं और इसमें वक्ता के अभिप्राय का एक अंश व्यक्त हो जाता है। यह एक शब्द में शुरू होकर एक शब्द में ही समाप्त भी हो सकता है। इसलिए शब्द की परिभाषा में हम कह सकते हैं कि आदि और अन्त रखने वाली तथा एक श्वास वर्ग में प्रयुक्त होने वाली रूप की इकाई शब्द है। केंचुवा भाषा में शब्दों रूपी मनोवैज्ञानिक इकाई अनिश्चित रूपों में मिलती हैं, जो निपातों के सहारे सम्बद्ध होती रहती है। चीनी भाषा में पूर्ण शब्द तथा रिक्त शब्द दो प्रकार के शब्द होते हैं।

वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों आदि में शब्द को ही ब्रह्म माना गया है। वाक्य पदीयकार ने शब्द ब्रह्म की वन्दना द्वारा ही अपने ग्रन्थ में मंगलाचरण किया है। उसके अनुसार शब्द ब्रह्म अनादि, अनन्त और अक्षर हैं और वह अर्थ रूप में अवतरित होता

है तथा उसी से दुनिया का काम चलता है।[1] यह सारी सृष्टि शब्द का ही परिणाम स्वरूप है। छन्दोमयी वाक् से ही सृष्टि के आदि में यह दुनिया विवर्त को प्राप्त हुई है। लघुमंजूषाकार नागेश भट्ट परब्रह्म और शब्दब्रह्म को एक नहीं मानते। वे तांत्रिक मत से प्रभावित हैं और उनके अनुसार परमात्मा की सर्जनेच्छा माया से बिन्दु रूपी अव्यक्त त्रिगुणात्मक शक्ति तत्व उत्पन्न होता है, इसके तीन विभाग होते हैं, बीज, नाद और बिन्दु। इस चित् बिन्दु से नाद, रव[2] या शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति होती है। विश्व के सभी प्राणधारियों में शब्द शक्तिरूपी चैतन्य विद्यमान रहता है और इसी से वे सचेतन कहे जाते हैं। उसके बिना सारी दुनिया काठ और पत्थर के समान अचेतन लगने लगेगी। इतना ही नहीं, कलाकार और कुछ सीमा तक वैज्ञानिक भी अचेतन पदार्थों की भी भाषा सुनते हैं और उनके भी शब्द संकेत ग्रहण करते हैं।[3]

प्राचीन विद्वानों ने उक्त रूप में शब्द को शब्द ब्रह्म की संज्ञा दी है, साथ ही उसकी महिमा गाते हुए वे थके नहीं हैं। भर्तृहरि के अनुसार परब्रह्म और शब्द ब्रह्म एक ही सत्ता है और दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं है, इसलिए शब्द ब्रह्म की सिद्धि ही परब्रह्म की प्राप्ति है। भर्तृहरि के ही शब्दों में शब्दों का संस्कार करना परमात्मा की प्राप्ति का उपाय है। शब्दों के वास्तविक प्रवृत्तितत्व को जानने वाला परब्रह्म को प्राप्त करता है।[4] शब्दों में ही वह शक्ति है, जो दुनिया को एक सूत्र में गुँथे हुए है। शब्द ही नेत्र है अर्थात् सभी पदार्थों का ज्ञान दिलाने वाला है। वह प्रतिभारूप है और वाच्य-वाचक रूप से भिन्न दिखाई देता है।[5] संसार का सभी कुछ लोकव्यवहार शब्द के अधीन है और बालक भी पूर्व जन्म के संस्कार के कारण शब्दों के द्वारा इतिकर्त्तव्यता को जानता है।[6] संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, जो शब्द ज्ञान के बिना सम्भव हो सके, समस्त ज्ञान शब्द के साथ संसृष्ट-सा प्रतीत होता है।[7] यदि

1. अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥
—भर्तृहरि, वाक्यपदीय 1/1
2. वही 1/180, और दे० वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे—श्रुति।
3. सैष संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते। तन्मात्रमनतिक्रान्तं चैतन्यं सर्वजन्तुषु॥
अर्थक्रियासु वाक्सर्वान् समीहयति देहिनः। तदुत्क्रान्तो विसंज्ञोऽपि दृश्यते काष्ठकुड्यवत्॥
वही, 126, 127।
4. तस्माद्यः शब्द संस्कारः सा सिद्धिः परमात्मनः।
तस्य प्रवृत्तितत्वज्ञस्तद् ब्रह्मामृतमश्नुते॥ —वही, 1/132
5. शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी।
यन्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीयते॥ —वही, 1/119
6. इतिकर्त्तव्यता लोके सर्वा शब्दव्यपाश्रया।
यां पूर्वाहितसंस्कारो बालोऽपि प्रतिपद्यते॥ —वही, 1/121
7. न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥ —वही, 1/123

ज्ञान में नित्य रूप से रहने वाली वाक् शक्ति निकल जाए, तो ज्ञान किसी भी वस्तु का बोध नहीं करा सकता । उस दशा में ज्ञान की स्थिति चैतन्यहीन आत्मा या तेजोहीन अग्नि-जैसी होगी, क्योंकि वाक् शक्ति ही प्रकाशों की भी प्रकाशिका है ।[1] संसार का सारा ज्ञान शब्द मूलक है । सारी विद्याएँ, शिल्प और कलाएँ शब्द शक्ति से सम्बद्ध हैं । उत्पन्न होने वाली सारी वस्तुओं का विभाजन शब्द की शक्ति से ही होता है ।[2] साहित्यशास्त्रियों ने भी शब्दों की महिमा का खूब स्तवन किया है । दंडी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि यदि शब्द रूपी ज्योति इस दुनिया में प्रदीप्त न रहे, तो सर्वत्र अंधकार ही अंधकार छा जाए ।[3]

शब्द की इस महिमा को सुनते ही स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि शब्द क्या है ? स्थूल दृष्टि से यह प्रश्न विशेष आवश्यक भले ही प्रतीत न हो, किन्तु इसका उत्तर भी विशेष सरल नहीं है । ह्विटने शब्दों के प्रति होने वाली स्वाभाविक जिज्ञासा की तुलना बालसुलभ जिज्ञासा प्रवृत्ति से करते हैं और उनके अनुसार युवा व्युत्पत्तिशास्त्री की स्थिति भी इससे विशेष भिन्न नहीं होती ।[4] गार्डिनर के शब्दों में प्रत्येक शब्द अतीत से मिलने वाला एक उत्तराधिकार है और उसे जो अर्थ दिया गया है, वह उसने एक दूसरे से थोड़े या बहुत भिन्न अनेकों विवरणों के लिए असंख्य बार प्रयुक्त होकर प्राप्त किया है ।[5] परन्तु शब्द विषयक यह जिज्ञासा आधुनिक युग की ही उपज नहीं है । पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य के आरम्भ में यही प्रश्न उठाया था—"अथ गौरित्यस्य कः शब्दः ?" अर्थात् 'गौ' इस प्रतीति में शब्दत्व क्या है ? क्या सास्ना, पूँछ, कूबड़, खुर, सींग की एकत्र प्रतीति कराने वाला अर्थरूप ही शब्द है ? नहीं वह तो द्रव्य है । फिर क्या उसकी चेष्टाएँ संकेत आदि शब्द हैं ? नहीं वह तो गुण है । तो क्या भिन्न वस्तुओं में अभिन्न और छिन्नों में अछिन्न रहने वाली जाति शब्द है ? नहीं वह तो आकृति है । तो फिर शब्द क्या है ? जिससे सास्ना, पूँछ, कूबड़, खुर, सींग वाली का ज्ञान होता है, वह शब्द है ।[6] कैयट और नागेश ने इसका विश्लेषण करते हुए अर्थबोध कराने वाली शब्दात्मक सत्ता को स्फोट बताया है । परन्तु पतञ्जलि स्फोट के अतिरिक्त लोक में प्रचलित ध्वनि को भी शब्द कहते हैं, जैसे शब्द करो,

---

1. वाग्रूपता चेन्निष्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती ।
   न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥ —वाक्य पदीय 1/124
2. सा सर्व विद्याशिल्पानां कलानां चोपबन्धनी ।
   तद्वशादभिनिष्पन्नं सर्वं वस्तु विभज्यते ।। —वही 1/125
3. इदमन्धतमः कृत्स्नं जायते सचराचरम् ।
   यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते ॥ —काव्यादर्श 1/4
4. ह्विटने : लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 19 ।
5. गार्डिनर : स्पीच एण्ड लैंग्वेज, पृष्ठ 25 ।
6. येनोच्चारितेन सास्नालांगूलककुदखुरविषाणिनां संप्रत्ययो भवति सः शब्दः—महाभाष्य आह्निक-1 ।

शब्द मत करो आदि। यद्यपि आगे चलकर उन्होंने स्फोट को व्यंग्य माना है और ध्वनि को व्यंजक। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि स्फोट शब्द है और ध्वनि शब्दगुण। भेरी आदि किसी के आघात में स्फोट तो उतना ही होता है, पर उसकी लघुता या वृद्धि, अल्पता या महत्ता की प्रतीति ध्वनि के कारण होती है।[1] अतः पतञ्जलि के मत से शब्द के दो स्वरूप हैं, स्फोट और ध्वनि। पशु-पक्षी आदि में केवल ध्वनि का ग्रहण होता है, परंतु मनुष्यों में शब्द वर्णात्मक होने के कारण ध्वनि के साथ ही स्फोट का भी बोध कराते हैं और मनुष्यों में दोनों का ग्रहण होता है। भाषापरिच्छेदकार ने भी शब्दों को ध्वन्यात्मक (जैसे मृदंग आदि की ध्वनि) और वर्णात्मक (जैसे क आदि वर्ण) दो प्रकार का माना है।[2] और आगे चलकर ऋट् लृक् सूत्र के प्रसंग में पतञ्जलि ने शब्द का एक लक्षण और दिया है कि शब्द कान से सुनकर, बुद्धि से समझकर प्रयोग में चलने वाली वस्तु है।[3] आगे चलकर पतञ्जलि कहते हैं कि ज्ञान ज्योति के तुल्य होता है।[4] कैयट इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ज्वाला रूप ज्योति निरन्तर प्रसृत होती रहती है और सादृश्य के कारण उसे तद्रूप समझते हैं, वह अविच्छिन्न है। इसी प्रकार ज्ञान भी भिन्न हैं, परन्तु शब्द-रूपता को प्राप्त होकर वह संतत (अविच्छिन्न) कहे जाते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि पतञ्जलि का मत है कि ज्ञान ही शब्द रूप को प्राप्त होता है।[5] शुक्ल यजुर्वेद के प्रातिशाख्य ने 'वायुः खात्, शब्दस्तत्' द्वारा शब्द को वायु का परिणाम बताया है। वक्ता प्रयोगेच्छा होने पर जैसा प्रयत्न करता है, स्थान विशेष के संयोग से वैसा ही शब्द उत्पन्न होता है। अन्य प्रातिशाख्यकार और शिक्षाकार भी वायु को शब्दरूप प्राप्त करता हुआ मानते हैं। सर्वव्यापक होने पर भी जब वायु साधन विशेष और उपकरण विशेष को प्राप्त होता है, तभी शब्द रूप में लक्ष्य होता है। जैन वैयाकरणों के मत से सर्वशक्तिमान् परमाणुओं (पुद्गल) में भेद और संसर्ग होता रहता है और वही शब्द रूप में परिणत होते हैं। परन्तु परमाणु शब्दरूपता तभी प्राप्त करते हैं, जब अर्थबोध की इच्छा से उत्पन्न प्रयत्न से होने पर शब्दतन्मात्र रूप परमाणु अपनी शक्ति के व्यक्त होने पर उसी प्रकार एकत्र होते हैं, जैसे मेघ के परमाणु।[6] भर्तृहरि का विचार है कि अर्थबोध की इच्छा होने पर ज्ञाता (अंतःकरण) प्राणवायु को प्रेरित करता है। प्राणवायु ऊपर उठकर मन के तेज से युक्त होकर बाहर निकलती है। इस तेज से

1. एवं तर्हि स्फोटः शब्दः ध्वनि शब्दगुणः। कथं भेर्याघातवत्।
   स्फोटस्तावानेव भवति। ध्वनिकृता वृद्धिः ॥ —महाभाष्य 1/1/70
2. शब्दो ध्वनिश्च वर्णश्च मृदंगादिभवो ध्वनि :।
   कंठसंयोगादिजन्या वर्णास्ते कादयो मतः ॥ —भाषापरिच्छेद 164—165।
3. श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः :—महाभाष्य आह्निक 2।
4. आख्यातोपसर्गे सूत्र पर महाभाष्य।
5. डा॰ कपिलदेव द्विवेदी : अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, पृष्ठ 74।
6. वही, पृष्ठ 74।

उद्भूत दाह के कारण प्राण अपनी ग्रंथियों (क आदि वर्णों) को पृथक् स्थापित करके श्रूयमाण ध्वनियों से वर्णों को अभिव्यत करके वर्णों में भी लीन हो जाता है।[1] इसमें आगे सिद्धान्त पक्ष का समर्थन करते हुए भर्तृहरि शब्द को दो प्रकार का बताते हैं, एक प्राण में अधिष्ठित दूसरा बुद्धि में अधिष्ठित। उसकी प्राण और बुद्धि में जो शक्ति विद्यमान है, वही कंठतालु आदि स्थानों में विवर्त को प्राप्त करके क आदि भेद प्राप्त करती है।[2] उसीका स्पष्टीकरण करते हुए पुष्पराज शब्द को प्राणाधिष्ठान और बुद्ध्यधिष्ठान दो प्रकार का बताते हैं और दोनों से ही शब्द अर्थ का बोध कराता है। सांख्य के अनुसार सत्व, रज, तम से युक्त होने के कारण शब्द त्रिगुणात्मक है। न्याय और वैशेषिक के अनुसार शब्द अनित्य और आकाश का गुण विशेष है और तृतीय क्षण में उसका ध्वंस हो जाता है। लोक में वर्ण से शब्द (ध्वनि) ही शब्द माना जाता है। शिक्षाकार उस को वायुरूप बताते हैं, जो अर्थ-ज्ञान कराता है। वैयाकरण पदस्फोट या वाक्य स्फोट को शब्द मानते हैं। आचार्य विंध्यवासी सारूप्य को शब्द मानते हैं। बौद्ध अन्य की निवृति (अपोह) को शब्द मानते हुए उसे क्षणिक बताते हैं और उनके अनुसार वह ज्ञानरूप है या असत्स्वरूप है।[3] मीमांसकों में प्रभाकर का मत है कि शब्द दो प्रकार का है ध्वनिरूप और वर्णरूप। पहला अनित्य है और दूसरा नित्य। अन्य मीमांसक (उपवर्ष आदि) पद में जितने वर्ण होते हैं, सभी को शब्द बताते हैं।[4] पाणिनीयशिक्षाकार ने शब्द की प्रक्रिया के विषय में लिखा है—

> आत्मा बुद्ध्या समत्यार्थान् मनो युँक्ते विवक्षया।
> मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥ 6॥
> मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्।
> सोदीर्णो मूर्ध्न्यनभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः
> वर्णान् जनयते...

अर्थात् आत्मा बुद्धि से संयुक्त होकर अर्थबोध की इच्छा से मन को युक्त करता है। मन शरीराग्नि को प्रेरित करता है। वह प्राणवायु को प्रेरित करता है। यह प्राणवायु उर में मन्द्रस्वर करती है। वही ऊपर उठकर स्वर में टकराती है और वहाँ से मुख विवर में आकर वर्णों को उत्पन्न करती है। लगभग यही बात भर्तृहरि ने भी कही है।[5]

---

1. अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, पृष्ठ 75, वाक्यपदीय 1/113-115।
2. तस्य प्राणे च या शक्तिर्या च बुद्धौ व्यवस्थितः।
   विवर्तमाना स्थानेषु सैषा भेदं प्रपद्यते। —वाक्यपदीय 1/117
3. त्रिगुणः पौद्गलो वाऽयमाकाशस्याथवा गुणः। वर्णादयोऽथ नादात्मा वायुरूपोऽर्थवाचकः
   पदवाक्यात्मकः स्फोटः सारूप्यान्यनिवर्तने। —कुमारिल भट्ट, श्लोकवार्तिक 319-20
   (डा० कपिलदेव द्विवेदी द्वारा उद्धृत)
4. अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, पृष्ठ 76।
5. अथायमान्तरो ज्ञाता सूक्ष्मवागात्मना स्थितः
   व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते। —वाक्यपदीय 1/112।

डा० मंगलदेव शास्त्री ने सात विभिन्न प्रसंगों में प्रयुक्त होने वाले शब्द का उल्लेख किया है[1] : (1) अंग्रेजी फादर और संस्कृत पिता एक ही शब्द हैं। (2) संस्कृत कर्म शब्द प्राकृत में कम्म हो गया था और अब काम बन गया है। (3) अंग्रेजी शब्द डॉटर में अनुच्चरित gh इस बात का साक्षी है कि पहले यहाँ कंठ्य वर्ण था, जर्मन शब्द टाख्टर में वह अब भी विद्यमान है और संस्कृत शब्द दुहिता में वह ह् हो गया है। (4) चीनी भाषा में ≡ शब्द का अर्थ सारे राष्ट्र में तीन है, यद्यपि उच्चारण प्रत्येक प्रान्त में भिन्न है। (5) यह बात विचारणीय है कि भाषा में शब्द वाक्य से पहले होता या वाक्य शब्द से। (6) किसी शब्द के अनेक भिन्न-भिन्न रूप किसी भाषा में प्रचलित हो सकते हैं। (7) उत्तर प्रदेश में ग्रामीण लोग ज़मीन शब्द का सदा जमीन शब्द उच्चारण करते हैं।

शब्दों के लिखित और उच्चरित दो रूप होते हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार लिखित संकेतों के पुनः विचारों को साक्षात् रूप में प्रकट करने वाले और असाक्षात् रूप में प्रकट करने वाले ये दो भेद हो जाते हैं। पहले में चित्रलिपियाँ आती हैं। ऊपर चीनी के ≡ का उल्लेख किया गया है। यह लिखित संकेत विभिन्न स्थलों पर विभिन्न रूपों में उच्चरित होने पर भी (एन, सम, तम, संग, सऊ आदि) सर्वत्र एक-सा रहता है। गणित के अंक भी इसी बात के उदाहरण हैं। असाक्षात् रूप से विचारों को वहन करने वाले लिखित संकेतों में पहले वर्णात्मक शब्द का भान होता है और पीछे अर्थ-बोध। प्रत्येक लिपि में वर्णात्मक शब्द को यथाशक्ति उच्चारण के अनुकूल रखने का प्रयत्न किया जाता है। फिर भी सफलता नहीं मिलती। इसी प्रकार हिन्दी में भी 'सकता हूँ', 'जानता है', किशोर आदि में क्, न् और र् के परवर्ती अ स्वर का उच्चारण नहीं होता। उच्चरित शब्दों के विषय में यों तो व्यक्ति-व्यक्ति का लहजा भिन्न होता है, परन्तु एक ही शब्द को जब दो या अधिक व्यक्ति भिन्न प्रकार से बोलते है तब कोई यह नहीं कह सकता कि वे दो भिन्न शब्द बोल रहे हैं। परन्तु एकाधिक अर्थ रखने वाले शब्द उच्चरित स्वरूप एक ही होने पर भी भिन्न-भिन्न होते हैं। हिन्दी के काम (इच्छा, कार्य), सुर (देवता, स्वर), अंश (भाग, कंधा) आदि शब्दों के विषय में यही बात कही जा सकती है। अतः शब्द का तत्व डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में उसके सामान्य उच्चरित रूप से ही समाप्त नहीं हो जाता, उसके इतिहास आदि पर भी विचार करना होता है।

भाषा का प्रारम्भ तो वाक्यों से होता है, परन्तु वाक्य के साथ शब्दों का सम्बन्ध ठीक वैसा ही है जैसा वर्णों का शब्द के साथ।[2] वाक्य का विश्लेषण शब्दों में होता है। अब भाषा का प्रारम्भ वाक्यों से भले ही होता हो, पर डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में शब्द भाषा की सबसे स्पष्ट चरम अभिव्यक्ति है। जाति, गुण, द्रव्य और

1. भाषा विज्ञान, पृष्ठ 34-35।
2. पदसंघातजं वाक्यं वर्णसंघातजं पदम्। —पुष्पराज।

क्रिया के विषय में हमारा सारा अनुभव नामों अर्थात् शब्दों के रूप में ही संचित रहता है। लॉक का उद्धरण देते हुए मैक्समूलर[1] का कहना है कि सामान्य सहज भावों के प्रकाशन के लिए हम शब्दों के ऊपर ही निर्भर रहते हैं और इसका निष्कर्ष यही है कि हम किसी भी भाषा के किसी भी शब्द का, जो किसी पदार्थ के लिए प्रचलित है, जन्म बोधगम्य भावों में खोज सकते हैं। होनटुक का भी यही विचार है कि प्रत्येक अमूर्त शब्द का जन्म मूलतः मूर्त अर्थ से हुआ था। परन्तु डा० मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में साहित्य-शून्य और वैयाकरणों के नियमों के बंधनों से रहित भाषाओं में तो शब्दों का विच्छेद करना और भी कठिन होता है। अनेक शब्द परस्पर इतने गुंथ जाते हैं कि उनमें कौन शब्द कहाँ से शुरू होता है और कहाँ समाप्त होता है यह कहना दुष्कर हो जाता है।[2] समासों के कारण दो या अधिक शब्दों के परस्पर सट जाने से यह कठिनाई बढ़ जाती है, हिन्दी के सौत (सपत्नी), सोना (सुवर्ण), साढ़े (सार्ध) इत्यादि शब्द इसी बात के उदाहरण हैं।

शब्दों की मूलतः उत्पत्ति और आदिम भाषाके शब्दों का अर्थों से संसर्ग—ये दो समस्याएँ भाषा विज्ञान की गम्भीर समस्याएँ हैं। पशु-पक्षियों की ध्वनि के अनुकरण से शब्दों की उत्पत्ति मानने वाले पहले सिद्धान्त के अनुसार काक, कोयल, घुग्घू, कांव-कांव, हिनहिनाना आदि शब्दों का जन्म प्राकृतिक ध्वनियों के अनुकरण पर हुआ और इन ध्वनियों से सम्बद्ध पशु-पक्षियों को या उनकी ध्वनियों को ये नाम दे दिये गए। विस्मयादि बोधक और श्रमपरिहारात्मक शब्दों का जन्म भी बहुत कुछ स्वाभाविक कारणों से हुआ और यही बात मैक्समूलर के डिंगडैंगवाद के विषय में भी कही जा सकती है।

मानव की आदिम भाषा के शब्दों का एक भाग अव्यक्तानुकरणमूलक और दूसरा मनोभावाभिव्यंजक या विस्मयादिबोधक शब्दों से बना होगा। तीसरे प्रकार के शब्द प्रतीकात्मक होते हैं। लेटिन बिबेरे, संस्कृत पिबति और हिन्दी पीना क्रियाएँ पीने में पानी के खींचने पर प्रकाश डालती हैं। दांत, अद्, इद्म, अदस् आदि शब्दों के निर्माण के पीछे भी यही कारण है। बच्चे अनायास ही मामा, पापा, बाबा, ताता आदि पुकारा करते हैं, धीरे-धीरे उनमें अर्थ-सम्बन्ध की भावना जुड़ जाती हैं। जो शब्द उक्त कोटियों में नहीं आते उनमें अधिकांश उपचारात्मक या औपचारिक होते है। व्यथमाना शब्द पहले कांपती-हिलती पृथ्वी के लिए चलता था, अब मानसिक अर्थ में चल निकला है। अंग्रेजी के पिक्यूलियर (विशिष्ट) शब्द के इतिहास पर भी इस सम्बन्ध में ध्यान दिया जा सकता है। संस्कृत पश्, धातु का अर्थ बाँधना, फाँसना था इसी से पशु शब्द बना है। लेटिन में पैक्स भी इसी के पर्याय में था उससे पैकुनिया शब्द बना, जो सम्पत्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ, उसी से पैकुनियरी शब्द

1. मैक्समूलर: लैक्चर्स, जिल्द 2, पृष्ठ 373।
2. भाषा विज्ञान, पृष्ठ 47।

बना उससे पेकुलियम (दास की निजी सम्पत्ति)। फिर उसके फ्रेंच विशेषण पेकुलियरिस से पिक्यूलियर शब्द बना। इसी प्रकार वैदिक काल में रत्न, मृग, वर्ण, पवित्र, तर्पण आदि शब्द अन्य अर्थों में प्रयुक्त होते थे, जो अब उपचार के कारण दूसरे अर्थों में प्रयुक्त होने लगे हैं।

वाक्यों के अन्तर्गत रूप के अनुसार शब्दों का भी चार प्रकार से विभाजन किया जाता है। कुछ शब्द प्रकृत्या एकाक्षर होते हैं और वाक्य में प्रयुक्त होने पर भी अव्यय ही रहते हैं, उन्हें धातु, प्रातिपदिक, एकाक्षर, निर्योग या रूढ़ कहते हैं। कुछ शब्दों की रचना में प्रकृति-प्रत्यय का योग स्पष्ट रहता है, उन्हें यौगिक, संयोगप्रधान, व्यक्तयोग या प्रत्यय-प्रधान कहते हैं। कुछ शब्दों की रचना में यह प्रकृति-प्रत्यय योग बड़ा सूक्ष्म होता है, इन्हें विकारी, विकार प्रधान, प्रकृति प्रधान या विभक्ति-प्रधान कहते हैं। कुछ ऐसे समस्त पद होते हैं, जिनमें अनेक पद मिले रहते हैं, इन्हें शब्द संघाती, समस्त या वाक्यशब्द कहते हैं। चीनी शब्द पहली सीढ़ी में आते हैं—"गो तनि" (मैं मारता हूँ तुझे), "नि तन्गो" (तू मारता है मुझे)। तुर्की भाषा दूसरी कोटि में आती है एव=घर, एवलेर=कई घर, ऐवलेरइम=मेरे घर। अरबी, संस्कृत तीसरी कोटि में आती हैं, जहाँ प्रत्यय का पृथक् पता नहीं रहता—जगाम, किताब आदि स्पष्ट उदाहरण हैं। वाक्य-शब्द का भी ग्रीनलैंड की भाषा से एक उदाहरण लीजिए—अउलिसर—मछली मारना, पेतोर—काम में लगना, पिन्येसु-अपोक्—वह शीघ्रता करता है, और इन सबसे वाक्य-शब्द बनता है—अउलिसरि-अर्तोरसुअपोक्—वह मछली मारने के लिए जल्दी जाता है।

ह्विटने के शब्दों में प्रत्येक बोली या भाषा एक दूसरे के सम्पर्क में आकर परस्पर शब्दों को ग्रहण करती हैं। हिन्दी में विदेशी भाषाओं से आये हुए शब्द खूब घिस-पिट गए हैं। आगे शब्द बनाने के लिए प्रत्यय लगाकर या समास बनाकर शब्द बनाने की प्रक्रिया प्रायः दुनिया की सभी भाषाओं में थोड़ी-बहुत मात्रा में अपनाई जाती है। प्राविधिक और पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में उस स्थल की मिट्टी से ही जो शब्द गढ़े जाते हैं, वे उस भाषा के प्रकृति के अनुकूल रहते हैं, परन्तु विदेशों से आयात की अपेक्षा यह प्रक्रिया अधिक धीमी होती है और एकाध पीढ़ी तक का समय लग जाता है।

शब्द शक्ति—नागेश ने अर्थज्ञान के साधनों के विवेचन में वृत्तिज्ञान को अर्थज्ञान का मुख्य साधन माना है। ये वृत्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। साहित्यशास्त्री इन वृत्तियों को शब्द शक्ति नाम से पुकारते हैं, क्योंकि साहित्य शास्त्र में वृत्ति शब्द एक अन्य पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस शक्ति ग्रहण के आठ साधन वैयाकरणों ने बताए हैं—1. व्याकरण, 2. उपमान, 3. कोष, 4. आप्तवाक्य, 5. व्यवहार, 6. वाक्यशेष (प्रकरण) 7. विवरण और 8. ज्ञातपद का साहचर्य।

पतञ्जलि ने अर्थ की उपलब्धि न हो सकने के छः कारण गिनाए हैं—1. अति-संनिकर्ष, 2. अतिविप्रकर्ष, 3. मूर्त्यन्तर व्यवधान, 4. अंधकार आदि का आवरण, 5. इंद्रियदौर्बल्य और 6. अतिप्रमोद। उनके अनुसार उच्चरित शब्द से अर्थ की उपलब्धि होती है। अभिनय और हाथों आदि के संकेत से भी अर्थबोध में सहायता मिलती है। नागेश भट्ट के अनुसार लिपि या लिखित शब्द भी अर्थज्ञान में सहायक होते हैं। परन्तु भर्तृहरि के अनुसार अर्थज्ञान में सबसे अधिक सहायता प्रतिभा से मिलती है।

संकेतित या साधारण बोलचाल में प्रसिद्ध अर्थ का बोध कराने वाली पहली शक्ति अभिधा है। अभिधा द्वारा बोधित अर्थ को वाक्यार्थ, मुख्यार्थ या अभिधेयार्थ कहते हैं। गाय लाओ, यह बात सुन चार पैर, पूँछ, सास्ना वाले पशु को लाया जाता देख छोटा बच्चा समझने लगता है कि गाय का और लाओ का क्या अर्थ है। एकार्थक शब्दों का ज्ञान तो शक्तिग्रहण के उक्त आठ साधनों द्वारा हो जाता है, पर अनेकार्थक शब्दों के ज्ञान के लिए कुछ अन्य साधन अपनाने पड़ते हैं, वे 12 है—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, प्रकरण, चिह्न, अन्य शब्द का संनिधान, सामर्थ्य, औचित्य, देश और काल।

दूसरी शक्ति लक्षणा मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढ़ि (प्रसिद्धि) या प्रयोजन के सहारे दूसरे अर्थ की कल्पित प्रतीति कराने वाली शक्ति है। साहित्य-शास्त्रियों ने इसके 80 तक भेद-उपभेद कर डाले हैं। अभिधा से अर्थ न निकलने पर इस शक्ति द्वारा अर्थ निकाला जाता है। पंजाब वीर है या गंगा पर आश्रम है, में अभिधा से अर्थ नहीं निकला, क्योंकि न तो निर्जीव प्रदेश वीर ही हो सकता है और न धारा के ऊपर आश्रम ही बस सकता है। ऐसी स्थिति में लक्षणा ने क्रमशः पंजाब देशवासी और गंगा के तट पर ये लक्ष्यार्थ बताए। ये अर्थ कल्पना के आधार पर ही आरोपित किये गए हैं।

मुख्य और लक्ष्य अर्थ से अर्थ न निकल सकने पर उससे भिन्न अर्थ की प्रतीति कराने वाले व्यापार को व्यंजना कहते हैं। पत्ता तक नहीं हिलता, में अभिप्रेत सन्नाटा अर्थ अभिधा से नहीं निकलता, और अभिधेय अर्थ में बाधा न पड़ने के कारण लक्षणा भी प्रवृत्त नहीं हो सकती, इसलिए यहाँ अर्थबोध के लिए एक तीसरी शक्ति की कल्पना करनी पड़ती है। वह लजा गया, इस अभिधा द्वारा प्रकट अर्थ में उतना चमत्कार नहीं जितना उसने सिर नीचा कर लिया इस कथन में है। यह चमत्कार विशेष ही काव्य में व्यंजना शक्ति को विशेष आदर दिला देता है। साहित्यशास्त्रियों ने इसके भी अनेक भेदों और उपभेदों की कल्पना की है।

शब्द समूह—डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में अर्थ की दृष्टि से किसी भाव के सब शब्दों को एकत्र कर उन्हें शब्द समूह कहते हैं।[1] ह्विटने के शब्दों में मनुष्य जिन शब्दों का अर्जन करता है, वे सब बाहर से उसके ऊपर थोपे जाते हैं और उनका ज्ञान

1. डा० बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान, पृष्ठ 109।

उसे गणित के अंकों और सम्बन्ध-सूत्रों आदि जितना ही होता है, रंचमात्र भी अधिक नहीं।[1] उनके शब्दों में शिक्षित व्यक्ति के लिए 30,000 शब्दों का ज्ञान बहुत बड़ी संख्या है। बेपढ़ा व्यक्ति तो कुल 300 ही शब्द प्रयुक्त करता है। डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में शेक्सपियर 15,000, मिल्टन सात-आठ हजार, होमर 9,000 शब्दों का प्रयोग करते हैं। इंजील के पुराने विधान में 5,642 और नए में 4,800 शब्द प्रयुक्त हुए हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार तुलसी का शब्द समूह अनुमानतः 15,000 से कुछ अधिक है। संस्कृत, हिन्दी के अन्य कवियों के शब्द समूह का अध्ययन एक रोचक प्रक्रिया होगी। इस प्रकार की शब्द गणना में कुछ नियमों का पालन करना होता है और एक ही शब्द के बार-बार आने पर उसे तो एक ही बार गिना जाता है, लेखक के बहुभाषाविद् होने पर एक ही पर्याय के विभिन्न भाषाओं के शब्दों को भी पृथक् नहीं गिना जाता। विदेशी शब्द में कुछ नया भाव होने पर उसे पृथक् माना जाता है। कुछ लेखक शब्दों की थोड़ी पूँजी होने पर भी प्रदर्शन की भावना को लेकर दुरूह वागाडम्बर में पड़ते हैं और दूसरे अपार समृद्धि के स्वामी होने पर भी सादगी पसन्द करते हैं। ऊपर मिल्टन और शेक्सपियर की तुलना इस सम्बन्ध में रोचक सिद्ध होगी। मिल्टन का शब्द समूह शेक्सपियर से लगभग आधा है, पर उसकी जटिलता और वागाडम्बर शेक्सपियर से कई गुना है। एक ही मनुष्य के जीवन में शब्द समूह की सम्पत्ति और उसके वागाडम्बर पूर्ण या सादगीपूर्ण प्रयोग की दृष्टि से उतार-चढ़ाव आया करते हैं। बचपन और युवावस्था में शब्द समूह कम होता है और तड़क-भड़क प्रदर्शन की ओर विशेष प्रवृत्ति रहती है, आगे चलकर शब्द समूह तो बढ़ जाता है, पर उसके प्रयोग में सादगी प्रौढ़ता और शालीनता आ जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह प्रदर्शन और सादगी युग विशेष की लहर के अनुसार भी परिचालित होती है। रीतिकाल में प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक थी, अब नहीं है। यही बात अंग्रेजी के शास्त्रीयतावाद युग और स्वच्छन्दतावाद युग के विषय में कही जाती है।

डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार किसी भाषा के शब्द समूह के उसकी प्राचीन भाषाओं तथा सम्पर्क में आने वाली विदेशी भाषाओं के सम्बन्ध से चार भाग होते हैं—तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी। हिन्दी में संस्कृत के अनेक तत्सम शब्द यथावत् चलते हैं। जैसे इसी वाक्य में संस्कृत, अनेक, तत्सम, शब्द और यथावत्। संस्कृत शब्दों से विकसित होने वाले कुछ तद्भव शब्द हैं, जैसे पानी, है, राजपूत आदि। कुछ शब्द अन्य देशी भाषाओं से हिन्दी में आ गए हैं, जैसे पिल्ला, गल्प, टिकाऊ, चालू आदि। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार हिन्दी में बीस-बीस करके गिनने की प्रणाली और कोड़ी शब्द कोल भाषाओं से आया है। हिन्दी में घिस-पिट जाने वाले विदेशी शब्दों की संख्या भी कम नहीं है। ये शब्द फारसी, अरबी, तुर्की, पश्तो और यूरोपीय भाषाओं—अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच

1. ह्विटनेः लाइफ एण्ड ग्रोथ् आफ लैंग्वेज, पृष्ठ 30।

आदि भाषाओं से आए हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने भाषा के इतिहास में इन शब्दों की एक विस्तृत सूची दी है परन्तु उनकी वास्तविक संख्या इनसे कहीं अधिक है। विशेषतः अरबी-फारसी और अंग्रेजी ने तो अनेकों शब्द हिन्दी को दिए हैं। परन्तु समग्र आर्यभाषाओं की प्रधान पूँजी संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों की है। और आज पारिभाषिक शब्दों की बढ़ती हुई माँग के युग में भी लोगों का ध्यान अनायास संस्कृत की ओर जा रहा है। फिर आर्य भाषाओं में ही नहीं, कुछ द्रविड़ भाषाओं (तेलुगू, मलयालम आदि) में भी आधे से अधिक शब्द समूह में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का ही अधिराज्य है। विदेशी भाषाओं से शब्द लेने वाली जीवित भाषाओं के सम्बन्ध में एक बात और समझ लेनी चाहिए कि वे शब्द समूह ही विदेशी भाषाओं से लेती हैं, उनका व्याकरण नहीं लेतीं। उस उधार लिए हुए एक मूल शब्द से बनने वाले अन्य शब्द वह अपने ही व्याकरण-नियमों के अनुसार बनाती है, विदेशी भाषा के व्याकरण-नियमों के अनुसार नहीं। दुनियाभर की भाषाओं में केवल उर्दू ही इस नियम का अपवाद है। सभी भाषाविज्ञानी मानते हैं कि विदेशी ध्वनियों की अपेक्षा अपनी ध्वनियों का (और अपनी परम्परागत प्राचीन भाषा की ध्वनियों का) उच्चारण सुगम पड़ता है और उनका व्याकरण भी विदेशी व्याकरण की अपेक्षा उस देश की प्रकृति के अधिक अनुकूल होता है। जीवित भाषाएँ तो अपनी प्राचीन भाषाओं के तत्सम शब्दों को भी यथासम्भव अपनी विकसित ध्वनियों के साँचे में ढालकर तद्भव बना लेती हैं और उन शब्दों से आगे और शब्द बनाने में भी प्राचीन भाषा के व्याकरण का ही एकमात्र सहारा न लेकर अपने व्याकरण के विकसित नियमों का भी उपयोग करती हैं। आज हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के समय इन सभी बातों पर ध्यान दिया जा रहा है।

किसी भाषा के शब्द समूह में परिवर्तन भोलानाथ तिवारी के अनुसार दो प्रकार से होता है, प्राचीन शब्दों के लोप और नवीन शब्दों के आगमन से। प्राचीन शब्दों के लोप में व्यक्तिगत तथा समाजगत दोनों प्रकार के कारण काम करते हैं। प्राचीन रीति-रिवाजों, संस्थाओं आदि के लुप्त हो जाने से प्राचीन शब्द प्राचीन साहित्य की ही वस्तु रह जाते हैं। आज संस्कृत साहित्य के अनेक शब्दों का नए साहित्य में कोई विशेष उपयोग नहीं रहा है। प्राचीन कर्मकांड यज्ञ आदि के स्रुवा, समिधा, हव्य आदि शब्द तथा प्राचीन अस्त्रों आदि के शब्द प्रत्यंचा, चाप, गदा, परिघ, दुंदुभी आदि न जाने कितने शब्द अब दैनिक प्रयोग से उठ गए हैं और कालांतर में और भी उठ जाएँगे। इसी प्रकार रहन-सहन के परिवर्तन से प्राचीन वस्त्रों के नाम उष्णीष, अंगरखा आदि भी लुप्त होने लगे हैं। कुछ शब्द अश्लील मान लिए जाते हैं और कालान्तर में अप्रयुक्त हो जाते हैं—यौन विज्ञान, मल-मूत्र त्याग आदि से सम्बन्धित शब्दों की विशेषतः ऐसी दशा होती है और एक युग में इनके लिए शिष्ट माने जाने वाले शब्द आगे चलकर अश्लील ठहरा दिए जाते हैं। स्त्रियों द्वारा पतियों के नाम न लेने से भी उस परिवार के शब्द-समूह में कुछ परिवर्तन हो

जाता है और कभी-कभी इसका प्रभाव भी व्यापक होता है। हमारे अग्रज का नाम जगदीश होने से भाभी 'जय जगदीश हरे' की आरती में सदा 'जय रघुवीर हरे' कहा करती हैं, उनके साथ ही परिवार के अन्य लोग भी 'जय रघुवीर हरे' ही कहने लगे हैं, शायद आगे चलकर यही हमारे यहाँ का मान्य पाठ हो जाएगा। ध्वनि-परिवर्तन के फेर में कुछ शब्द घिसते-घिसते एक अक्षर के रह जाते हैं, जैसे उपाध्याय से झा और ऐसे शब्द कालान्तर में प्रयोग से उठ भी जाते हैं। इसी प्रकार अर्थ-परिवर्तन के नियमों की चक्की में पिसकर भी कुछ शब्द प्रयोग उठ जाते हैं। पर्यायवाची शब्दों में भी कुछ शब्द अन्य शब्दों के ऊपर हावी हो जाते हैं और भौतिक जगत् का समर्थतम के जीवित रहने (सरवाइवल ऑफ दि फिटैस्ट) का नियम शब्दों के सम्बन्ध में भी लागू होता है।

नए शब्दों के आगमन का प्रधान कारण नए युग की माँग होती है। सभ्यता के विकास, अन्य भाषा भाषियों से सम्पर्क, आदि कारणों से शब्दसमूह में परिवर्त्तन होने लगता है। प्रशासन आदि समग्र क्षेत्रों में अंग्रेजी का स्थान लेने के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी को आज अनेकों नए शब्दों की आवश्यकता पड़ गई है। इस आवश्यकता के कारण शब्दों की प्राप्ति के प्रायः सभी स्रोतों को खोजना पड़ता है। ये स्रोत कई प्रकार के होते हैं, और प्रायः सभी थोड़ी-बहुत सहायता देते हैं। अंग्रेजी के बहुत से शब्द तो हिन्दी पहले ही अपना चुकी है, इस समय भी कुछ और शब्द भी अनायास खप जाएँगे। कुछ ध्वन्यात्मक शब्द भी विविध यन्त्रों आदि की ध्वनियों के अनुसार चल पड़े हैं, पों पों (मोटर), घड़घड़ (बस), खड़खड़ (रेल), घरघर (मिल) आदि। कुछ विशिष्ट नए अर्थों के प्रकाशन के लिए केवल उपसर्ग लगाकर भी काम चला लिया जाता है। अधि उपसर्ग की करामात देखिए अधिनियम (एक्ट), अधिनियमन (एनेक्ट), अधिपत्र (वारंट), अधिभार (सरचार्ज), अधिमान (प्रिफरेंस), अधिवक्ता (एडवोकेट), महाधिवक्ता (एडवोकेट-जनरल), अधिवास (डोमीसाइल) अधिवासी (डोमीसाइल्ड), अधिवेशन (मीटिंग), अधिसूचना (नोटीफिकेशन), अधीक्षण (सुपरिण्टेण्डेंस), अधीक्षक (सुपरिंटेण्डेण्ट) आदि।[1] एक परि उपसर्ग ही और ले लीजिए—परिगणित (एसेस्ड), परित्याग (ऐम्बेंडनमेंट), परित्राण (सेफगार्ड), परिपालन (इम्प्लीमेंट) परिभाषित करना (डिफाइन), परिमाप (सर्वे), परिरक्षण (प्रिजर्व), परिवर्तन (एल्टरेशन, वेरिएशन), परिवर्द्धन (ऐड), परिवहन (ट्रांसपोर्ट, कैरिज), परिषद् (कौंसिल), परिसीमन (डीलिमिटेशन) परिसीमा (लिमिटेशन), परिसीमित (लिमिटेड), परिहार (रेमिशन), परीक्षण (ट्रायल), पर्यालोचन (डेलीगेट) आदि। बहुत से शब्द सादृश्य और ध्वनि-साम्य के सहारे भी गढ़ लिए जाते हैं, जैसे पाश्चात्य की समता में पौर्वात्य। थोड़े से शब्द व्यक्तिगत नामों के आधार पर भी चल निकलते हैं, जैसे जयचंद, विभीषण, गोडसे, क्विसलिंग आदि और गाँधी टोपी, जवाहर कट, सैंडो बनियान आदि। उधार

1. हिन्दी संविधान में प्रयुक्त शब्दावली के आधार पर।

लिए जाने वाले शब्द प्राचीन सांस्कृतिक भण्डार और साहित्य से तो लिए ही जाते हैं, परन्तु सामयिक ग्रामीण बोलियों से और प्रचलित बोलचाल से भी शब्दों का ग्रहण होता है। इजाजत, कारखाना, कारबार, काँजी हौस, किराया, किसान, कुर्की, कैदी, खर्च, खली (आयल केक), गुट (कम्बाइन्स), चन्दा, चारा, चुने हुए, छुट्टी, जाँच, जुआ, जुर्माना, जोड़, ढोर, तैयारी, थोक, दखल, दर, दस्तावेज, दिवाला, दुधारू, निचला, निजी थैली (प्रिवी पर्स), नस्ल, निबटारा, नौकर, नौकरी, पट्टा, पेशा, पेशगी, फरियाद, फायदा, फीस, फुटकर, फेरफार, बकाया, बचत, बैंक, बँटवारा, बाजार, बिनौले, बेंट-बेगार, बेतार, बैठक, भत्ता, भर्ती, महाजनी, मजूरी, मंजूरी, मामूली, मुखिया, रद्द, राय, रियायत, रुकावट, रोजगार, लागू, लायक, लिखित, लीक (लाइन), लोग, वसूली, वापस, वायदा-बाजार, ब्योरा, शर्त, साहूकार, सिफारिश, सुनवाई, हक्क, हवालात, हाजिर, हिदायत, हुंडी, हैसियत आदि शब्द इसी दृष्टि से लिये गए हैं।[1]

शब्दार्थ-सम्बन्ध—पतञ्जलि के अनुसार शब्द और अर्थ का पारस्परिक सम्बन्ध परम्परा से ही सिद्ध (पूर्व निष्पन्न) मानकर पाणिनि का व्याकरण शब्दों की व्याख्या करने के लिए प्रवृत्त होता है। अर्थ वाली वस्तुओं का अर्थ से सम्बन्ध नित्य होता है। शब्द और अर्थ में स्वाभाविक सम्बन्ध न हो तो लोक-व्यवहार नहीं चल सकता और यह व्यवहार वृद्ध-परम्परा से चलता रहता है। अर्थात् शब्द विशेष से वस्तु विशेष का बोध-शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का ज्ञान-आप्तोपदेश से होता रहता है। शब्द-विशेष से वस्तु-विशेष की प्रतीति उनमें कुछ नियमित सम्बन्ध मानने से ही हो सकती है। वह सम्बन्ध कैसा है, इस पर बहुत मतभेद है। भर्तृहरि के अनुसार इस सम्बन्ध का विशेष स्वरूप नहीं है क्योंकि वह शब्द और अर्थ से पृथक् सत्ता नहीं रखता। यह सम्बन्ध न तो उपकार्य-उपकारक सम्बन्ध है और न संयोग और समवाय सम्बन्ध। यह संबोध दो प्रकार का है। एक तो इनमें कार्य-कारण सम्बन्ध है—शब्द कारण है अर्थ कार्य। दूसरे इसमें योग्यता सम्बन्ध है—जैसे इंद्रियों की स्वविषयों में अनादि योग्यता होती है, वैसे ही शब्दों की अपने अनादि अर्थों में। यह संकेत-ग्रहण जाति, गुण, द्रव्य और क्रियाओं में होता है। सारांशत: शब्द और अर्थ में शक्तिरूप नित्य सम्बन्ध है, यद्यपि भारत के समस्त दर्शनों में इसकी व्याख्या को लेकर बहुत मतभेद है। वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, बौद्ध, जैन, तान्त्रिक सभी अपनी-अपनी व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। डा० कपिलदेव द्विवेदी ने अपने अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन में इन सभी मतों की विस्तृत समीक्षा की है और इस सम्बन्ध के ज्ञान के लिए उसका अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। (दे० शब्द)

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के मत भी बहुत कुछ इसी प्रकार के हैं। बर्टेंड रसल के अनुसार सभी शब्दों का अर्थ होता है। वे अपने को छोड़कर किसी अन्य वस्तु के

1. हिन्दी संविधान शब्दावली के आधार पर।

प्रतीक होते हैं। मीनिंग आफमीनिंग के लेखकद्वय आग्डेन और रिचर्ड्स भी शब्द को अर्थ का प्रतीक मानते हैं। शब्दों का स्वतः अर्थ नहीं, बल्कि प्रयोग होने पर ही अर्थ बोध होता है। वे अर्थ ज्ञान के साधन अवश्य हैं। विचारों और वस्तु में कभी साक्षात् और कभी असाक्षात् सम्बन्ध रहता है। शब्द और वस्तु में साक्षात् नहीं बल्कि असाक्षात् सम्बन्ध है। हुस्सेर्ल और गेसेर के अनुसार शब्द और वाक्य (या बोध्य) में वास्तविक सम्बन्ध है, क्योंकि बोध्य की स्वभावानुकूल अभिव्यक्ति ही अर्थ है। बोध्य ही विचारों (या वाणी) में वस्तुरूप से रहता है। गोम्बेर्त्स प्रत्येक पूर्ण वक्तव्य में तीन तत्व मानते हैं, ध्वनितत्व (शब्द), अर्थ और वस्तु। कथन और बोध्य में जो सम्बन्ध विद्यमान रहता है, वही अर्थ है। जेस्पर्सन के अनुसार बाह्य-ध्वनितत्व शब्द है और आभ्यन्तर तत्त्व अर्थ।

शाडो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। इसका एक नाम हंगसीन भी है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

शारदा लिपि—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार शारदा लिपि पंजाब के अधिकतर हिस्से और काश्मीर में प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों तथा हस्त-लिखित पुस्तकों में मिलती है। जिस प्रकार नागरी लिपि का जन्म कुटिल लिपि से हुआ है, उसी प्रकार इसका भी। डा० ओझा ने शारदा लिपि का सबसे पहला लेख सराहाँ की प्रशस्ति बताते हुए उनका समय दशवीं शताब्दी के आस-पास निश्चित किया है, यद्यपि विद्वानों का उक्त प्रशस्ति के विषय में बड़ा मतभेद है और वे उसे नवीं शताब्दी के आरम्भ से तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ तक खींचना चाहते हैं। आठवीं शताब्दी के मेरूवर्मा आदि के लेखों में तो कुटिल लिपि ही प्रचलित थी। डा० फोजल ने चम्बर राज्य की पुरातत्व-सामग्री पर अपना बृहत ग्रंथ लिखकर इस लिपि पर विशेष प्रकाश डाला है।[1]

शारपा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 14,033 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

शास्त्री—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

शिपी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

शिताई—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

शिथिलस्वर—स्वरों के विवेचन में मांसपेशियों की दृढ़ता और शिथिलता भी एक कसौटी है। बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार कंठपिटक और चिबुक के बीच में अंगुली रखने से यह सहज ही अनुभव होने लगता है कि ह्रस्व इ के उच्चारण में वह

1. विशेष दे० डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : भारतीय प्राचीन लिपि माला, पृष्ठ 43, 74।

भाग कुछ शिथिल हो जाता है, पर दीर्घ ई के उच्चारण में वह सर्वथा दृढ़ रहता है।

शेरकू—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

शोम्रा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 3 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

श्रमपरिहरण मूलकतावाद—भाषोत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि परिश्रम करते समय श्वास वेग बढ़ने से मुख से जो ध्वनियाँ अनायास निकल जाती हैं उन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)।

श्रुति—एक ध्वनि के उच्चारण में मुखावयव के विशेष उच्चारण स्थान से सहायता ली जाती है। एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि का उच्चारण करने के लिए एक उच्चारण स्थान से दूसरे उच्चारण स्थान तक जाना होता है। इस स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया में कुछ परिवर्तन-ध्वनियाँ भी निकला करती हैं। प्रायः दो वर्णों के बीच सदैव यह परिवर्तन-ध्वनि, जिसे श्रुति (अंग्रेजी में ग्लाइड) कहते हैं, होती है। कुछ वर्णों में अवश्य ही इसके अपवादस्वरूप श्रुति रहित संयोग होता है। चञ्चल में च् के ही अनुनासिक रूप ञ् के कारण ञ् और च् के बीच कुछ स्थान-परिवर्तन नहीं होता, अतः कोई परिवर्तन ध्वनि या श्रुति भी नहीं होती।

उच्चारण में श्रुति का विशेष महत्त्व है इसी कारण ध्वनि-विकार के अध्ययन में भी श्रुति का विशेष महत्त्व है। पाणिनि ने शाकटायन का उल्लेख करते हुए व् य् के उच्चारण के प्रयत्न को लघुप्रयत्नतर बताया है (दे० पाणिनिसूत्र—"व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ८/३/१८, श्रुति को पहली सीढ़ी में लघुप्रयत्नतर भी नहीं कहा जा सकता, पर धीरे-धीरे वह बढ़ती जाती है और चौथाई या आधे वर्ण जितनी श्रुति होने लगती है। स्वर या व्यंजन के पूर्व आने पर पूर्वश्रुति और पीछे आने पर पश्चात्-श्रुति या पश्चश्रुति ये दो भेद हो जाते हैं। आगे चलकर यह श्रुति एक पूरा वर्ण बन बैठती है। विशेषतः संयुक्त वर्ण में मनुष्य को जो कठिनाई होती है वह इन श्रुतियों और बाद में नए वर्णों के जन्म का कारण बनती है। संस्कृत के बहुत से संयुक्तवर्ण वाले शब्द हिन्दी आदि भाषाओं में आकर घिस जाते हैं। प्रचार का परचार, इन्द्र का इन्दर आदि बन जाना इन संयुक्त वर्णों के बीच होने वाली श्रुति के प्रबलतर होते जाने का एक उदाहरण मात्र है। वर्णों से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के विषय में यह और भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। स्थान का अस्थान, स्नान का इस्नान या अस्नान आदि-आदि न जाने कितने उदाहरण खोजे जा सकते हैं। ये स्वरागम के उदाहरण थे। इसी प्रकार व्यंजन श्रुति भी होती है, जो पीछे से व्यंजनागम का हेतु बनती है। उदाहरण के लिए संस्कृत के वानर शब्द को लें। न् और र् दोनों ही अल्पप्राण घोष और वर्त्स्य है, और जीभ को एक उच्चारण स्थान से दूसरे तक की यात्रा करने के लिए विशेष दूरी भी नहीं नापनी पड़ती। परन्तु ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि पहला स्पर्श है और दूसरा लुंठित। पहले को तो जीभ स्पर्श मात्र

करती है और दूसरे के लिए उसे कई बार लपेटे ले लेकर ऊपरी मसूड़े को छूना पड़ता है। न् के अनुनासिक होने से ध्वनि वायु के नासिका विवर में जाने का भी कुछ प्रभाव पड़ता है। परिणाम यह हुआ कि एक दंत्य व्यंजन द् का आगम और हो गया। यह बानर मराठी में बाँदर बन गया और हिन्दी में बंदर। संस्कृत के स्वर्ण और सुवर्ण शब्द भी इसी बात के उदाहरण हैं। यह बात अन्य विदेशी भाषाओं में भी देखी जाती है।

श्लिष्ट योगात्मक भाषा—जिन भाषाओं में डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में सम्बन्धतत्व को जोड़ने के कारण अर्थतत्त्व वाले भाग में भी कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है, उनको श्लिष्ट योगात्मक भाषा कहते हैं। परन्तु इनमें फिर भी सम्बन्ध तत्त्व की झलक पृथक् मालूम पड़ती रहती है। संस्कृत में विधि और मर्म शब्द से वैध और मार्मिक शब्द बनते हैं। इनमें अर्थतत्त्व वाले भाग (प्रकृति) में भी सम्बन्ध तत्वों (प्रत्ययों) के जुड़ने से विकार हो जाता है। अरबी में क् त् ब् से किताब, कातिब, कुतुब, मकतब आदि भी इसी भाँति बनते हैं।

इनके भी दो भेद किए जाते हैं, बहिर्मुखी श्लिष्ट और अन्तर्मुखी श्लिष्ट। पहली प्रकार की भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व प्रधानतया अर्थतत्त्व के बाद आता है जैसे संस्कृत के उक्त उदाहरणों में। इसके भी दो भेद किए जाते हैं—संयोगात्मक और वियोगात्मक। ग्रीक, लैटिन, संस्कृत, अवस्ता आदि भाषाएँ संयोगात्मक थीं और उनमें परसर्ग की आवश्यकता न थी। भोलानाथ तिवारी के अनुसार इनमें शब्द में ही सम्बन्ध तत्त्व लगा रहता था, जैसे सः पठति = वह पढ़ता है। इस वर्ग की लिथुयानियन आज तक संयोगात्मक ही है। भारोपीय भाषाएँ—अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला आदि अब वियोगात्मक हो गई हैं और उनमें विभक्तियों के लिए पृथक् परसर्गों की आवश्यकता पड़ती है।

अरबी आदि सामी भाषाएँ अन्तर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषा के उदाहरण हैं। पहले ये भाषाएँ भी मुख्यतः योगात्मक थीं। अरबी भी पूर्णतः संयोगात्मक थी। परन्तु अब वाक्य निर्माण की दृष्टि से ये भाषाएँ भी वियोगात्मक होती जा रही हैं। हिब्रू तो बिलकुल वियोगात्मक हो गई है। अन्तर्मुखी श्लिष्ट भाषा अरबी के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं।

श्वास—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्णों और श, ष, स का बाह्य प्रयत्न श्वास होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

श्वास-नालिका—ध्वनियों के उच्चारण में सहायक शरीर का एक अंग। वायु इस प्रणाली से होकर ही ध्वनियंत्र में आती जाती है। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

श्वास-वर्ग—बोलने में ध्वनि की दृष्टि से वाक्य प्रायः एक सांस में ही अखण्ड बोला जाता है। परन्तु बीच में साँस लेने के लिए भी लोग ठहरते हैं, और बोलचाल में जल्दी के कारण अथवा शब्दार्थ की स्पष्टता के लिए भी लोग सांस लेने के लिए रुकते रहते हैं। वाक्य में जितने शब्दों का उच्चारण बिना विराम एक साँस में किया

जाता है, उनको एक श्वास-वर्ग (ब्रेथ ग्रुप) कहते हैं। प्रायः एक लम्बे वाक्य में जितने गौण वाक्य या उपवाक्य होते हैं उतने ही श्वास वर्ग होते हैं, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है। कम-से-कम संस्कृत या ग्रीक आदि पुरानी भाषाओं में विराम चिन्ह् लगाकर या अन्तर देकर लिखने की यह रीति नहीं देखी जाती।

उदाहरण के लिए 'अच्छा, नमस्ते, अब हम चलेंगे' वाक्य देखें इस में स्पष्ट ही तीन श्वास-वर्ग हैं।

ष

ष्—संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इसका उच्चारण स्थान मूर्धा, आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा बाह्य प्रयत्न विवार, श्वास और अघोष हैं। हिन्दी के विद्वानों ने हिन्दी ध्वनियों में इसकी गणना नहीं की है। इसका कारण सम्भवत: यही है कि यह ध्वनि अब हिन्दी में शेष नहीं रह गई है। वस्तुत: कुछ संस्कृत शब्दों में ही इसका प्रयोग होता है, परन्तु इसका उच्चारण अब प्राय :तालव्य श के समान ही होता है

स

स्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान दन्त, आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद्विवृत (या विवृत) तथा बाह्य प्रयत्न महाप्राण, विवार, श्वास और अघोष हैं। आधुनिक वैयाकरणों के अनुसार यह वर्त्स्य संघर्षी अघोष ध्वनि है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इसका उच्चारण जीभ की नोक से वर्त्स स्थान को रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। सामान्यतः इसे दन्त्य स कहते हैं।

उदा० सफलता, असमंजस।

संकेतवाद—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि सृष्टि के आदि में कुछ मनुष्यों के समाज ने एकत्र होकर भाव विशेष की अभिव्यक्ति के लिए संकेत स्वरूप कुछ प्रतीक स्वीकार कर लिए और उक्त निर्णय के अनुसार भाषा का आरम्भ हुआ। इस सिद्धान्त को संकेतवाद या संकेत सिद्धान्त कहते हैं। परन्तु भाषा के बिना विचार विनिमय कैसे हुआ, इस सामान्य प्रश्न ने ही इस कल्पना को धराशायी कर दिया है। इस सिद्धान्त में यदि कुछ सचाई है तो वह इतनी ही कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)

संगतम्—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 11,140 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

संगीतात्मक स्वराघात—शब्दों के उच्चारण में उठाई जाने वाली लहरों के कारण वे सरगम पद्धति की संगीतमय स्वरलहरी ही बन जाते हैं। कुछ भाषाओं में संगीतात्मक स्वराघात की विशेषता रहती है। यह स्वरतंत्रियों पर निर्भर रहता है। (विशेष दे० स्वराघात)।

संघात प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

संघाती—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

संघर्षी—हिन्दी की विसर्ग, ह्, श्, स्, व् और अरबी फारसी की तत्सम ख़्, ग़्, ज़् फ़् ध्वनियाँ इस कोटि में आती हैं। इसमें मुख-द्वार को इतना संकरा कर देते हैं कि श्वास रगड़ खाकर निकलता है। इनमें से श्, ष्, स् और ह् ध्वनियाँ ऊष्म ध्वनियाँ भी कही जाती हैं ("शषसहा ऊष्माणः"- सिद्धान्त कौमुदी) इन ध्वनियों पर पृथक् टिप्पणी यथास्थान देखिए।

संचयात्मक—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य विचार—अश्लिष्ट योगात्मक।

संचयोन्मुख—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य विचार—अश्लिष्ट योगात्मक।

संथाली—आदिम जाति की इस भाषा या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 28,11,578 है। यह निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बंटी हुई है—उत्तरी भारत 40, पूर्व भारत 28,11,529, दक्षिण भारत 1 और अंडमान तथा निकोबार 8।

सम्बन्ध-तत्व—शब्द और पद का अन्तर योगात्मक भाषाओं के वाक्यों में स्पष्ट होता है। इन भाषाओं में वाक्य में प्रयुक्त शब्द को पद कहते हैं। संस्कृत का उदाहरण लें—'सत्यमेव जयते' में सत्य शब्द है, उसे वाक्य में प्रयुक्त करके पद बनाने के लिए सत्यम् रूप दिया गया है। शब्द को पद बनाने के लिए जो कुछ जोड़ा जाता है, उसी को सम्बन्ध-तत्त्व कहते हैं।

वाक्य में साधारणतः अनेक पद रहते हैं और उनका अर्थ ग्रहण करते समय प्रत्येक पद का विश्लेषण न कर हम उसे समष्टि रूप में ग्रहण करते हैं। पर विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि वाक्य में दो तत्त्व होते हैं—अर्थ तत्त्व (सीमेंटीम) और सम्बन्ध-तत्त्व (मोरफीम)। पहला तत्त्व अपेक्षतया प्रधान होता है। सम्बन्ध तत्त्व अर्थतत्वों का पारस्परिक सम्बन्ध निरूपित करते हैं। यह मनोहर महाकाव्य जयशंकर प्रसाद का है, वाक्य में महाकाव्य, मनोहर और जयशंकर प्रसाद अर्थ विशेष को बताने वाले अर्थ तत्व हैं, जो हमारे मन में सुपरिचित कुछ निश्चित विचारों का बोध कराते हैं। शेष पद यह, का और है किसी अर्थ विशेष का निर्देश नहीं करते बल्कि महाकाव्य और जयशंकरप्रसाद का पारस्परिक सम्बन्ध बताते हैं। यह शब्द द्वारा निकटस्थ महाकाव्य की सूचना दी जा रही है, का महाकाव्य और जयशंकर प्रसाद का सम्बन्ध निर्धारित करता है और है क्रिया उस महाकाव्य के वर्तमान अस्तित्व की सूचना देती है। डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में अर्थतत्त्व से अभिप्राय भाषा के उन अंशों से है, जो अर्थ अथवा विचार का उद्‌बोध कराते हैं और सम्बन्ध तत्व से तात्पर्य उन अंशों से है, जो अर्थ तत्व द्वारा व्यक्त किये गए विचारों के परस्पर सम्बन्ध की सूचना देते हैं।

सम्बन्ध तत्व और अर्थ तत्व का यह मेल विभिन्न भाषाओं में विभिन्न रूप में होता है। कुछ भाषाओं में अर्थ तत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व दोनों एक दूसरे से बिलकुल घुले-मिले रहते हैं और एक ही शब्द दोनों तत्वों को प्रकट करता है[1]। भारोपीय और सेमेटिक परिवारों में दोनों तत्व एक में ही मिले रहते हैं। अरबी के क् त् ब् से बनने वाले कातिब, किताब, कुतुब, अंग्रेजी के सिंग, सैंग, संग और हिन्दी के मारना, मारा, मार आदि (दे० अपश्रुति) देखने से प्रतीत होता है कि सम्बन्ध तत्त्व के निर्देश के

1. डा० बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान पृष्ठ 74।

लिए आदि, मध्य और अन्त में प्रत्यय लगाकर या ध्वनियों में कुछ लोप, आगम या आदेश करके काम चलाया जाता है। इस प्रकार दोनों नीर क्षीर वत् मिलकर पूर्ण संयोग की सृष्टि करते हैं। आधुनिक भाषाओं के वियोगात्मक हो जाने से अब यह बात सर्वत्र लागू नहीं होती। कभी-कभी दोनों मिले तो रहते हैं, पर यह मेल तिल-तन्दुलवत् अपूर्ण होता है। अंग्रेजी में भूतकाल के निर्देश के लिए निर्बल क्रियाओं से लगाया जाने वाला ed इसी का उदाहरण है। तामिल में भी पालन् (पुरस्कार) एक-वचन और पालन्गल बहुवचन। तुर्की में भी एव (=घर) में ले जोड़ देने से अनेक घरों का अर्थ होता है। कृत्रिम आदर्श भाषा एस्पैरैंतो में भी यही बात अपनाई गई थी। इन सब में सम्बन्ध तत्त्व अर्थ तत्त्व के साथ उपसर्ग-प्रत्यय के रूप में इस प्रकार जुड़ा रहता है कि अर्थ तत्व को बिना छेड़े उसे अलग किया जा सकता है। सम्बन्ध के तीसरे प्रकार में दोनों तत्त्वों की सत्ता स्वतन्त्र होती है। चीनी भाषा में कुछ पूर्ण शब्द होते हैं और कुछ रिक्त शब्द। इसके स्थान प्रधान भाषा होने के नाते पिछले प्रकार के शब्दों के प्रयोग की विशेष आवश्यकता नहीं रहती, पर प्रयुक्त होने पर दोनों का अस्तित्व अलग-अलग रहता है। जैसे 'ही' सम्बन्ध-कारक का वाचक रिक्त शब्द है। वो (—मैं) और उलत्सु (—लड़का) में ती जोड़ देने से (वो ती उलत्सू का अर्थ) मेरा लड़का हो जाता है। संस्कृत इति और अंग्रेजी टु भी ऐसे ही रिक्त शब्द हैं। अमरीकी चिनूक भाषा में पहले सम्बन्ध तत्व-द्योतक शब्द रख दिए जाते हैं और फिर अर्थ तत्व द्योतक तत्व, इस प्रकार अनोखी वाक्य रचना होती है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार "वह-उसने-वह-से। मारना-आदमी-औरत-लाठी" का अर्थ है उस आदमी ने औरत को लाठी से मारा। सम्बन्ध का चौथा प्रकार बांटू आदि अफ्रीकी भाषाओं में देखा जाता है, जहाँ एक ही सम्बन्ध तत्त्व को व्यक्त करने के लिए एकाधिक शब्द रहते हैं। फुल भाषा में बहुवचन द्योतक बी शब्द का प्रचुर-प्रयोग "रिव-बी रैन ए बीबी" (ये सफेद औरतें) में देखा जा सकता है। विशेष्य के साथ विशेषणों को भी तदनुकूल लिंग-वचन युक्त करने की प्रथा संस्कृत में भी थी। परन्तु कोई भी भाषा उक्त चार प्रकारों में से किसी एक का ही प्रयोग करती हो ऐसी बात नहीं है। स्वयं हिन्दी में चारों प्रकार किसी-न-किसी रूप में देखे जाते हैं। दोनों की अभिन्नता भी भारोपीय भाषा होने के नाते हिन्दी में दिखाई देती है, यद्यपि इसकी मात्रा संस्कृत से कम रहती है। चीनी की भाँति स्वतन्त्र विभक्तार्थक शब्द भी होते हैं। जब—तब आदि में एकाधिक शब्दों का भी प्रयोग होता है।

सम्बन्ध तत्त्व और अर्थ तत्त्व के पारस्परिक सम्बन्ध के उक्त चार प्रकारों के अतिरिक्त स्वयं सम्बन्ध शब्द के भी छः प्रकार भाषा विज्ञानियों द्वारा निरूपित किये गए हैं।

(1) शब्द स्थान—वाक्य या वाक्यांश में स्थिति ही कभी-कभी सम्बन्ध की बोधक होती है। किसी प्रकार का योग न होने से यह सब से सूक्ष्म प्रकार कहा जा सकता है। चीनी आदि भाषाओं में विशेषतः इसी का प्रयोग होता है। अधिकांश आधुनिक

भारोपीय भाषाओं के वाक्यों में और विशेषत: समासों में इसका प्रयोग होता है। राजगृह, गृहपति, वह गृहपति के पास गया तथा गृहपति वह है—आदि प्रयोगों में गृह शब्द की स्थिति ही सम्बन्ध तत्व की द्योतक है। चीनी और अंग्रेजी आदि में भी अधिकारी के बाद अधिकृत वस्तु आती है वैंग (राजा) + तीन (=घर) वैंगतीन = राजघर। पर वेल्श में यह क्रम उलटा होता है : ब्रेनाहिन (=राजा) ती (=घर), पर राजघर को तीब्रेनाहिन कहते हैं।

(2) स्वतन्त्र शब्द—हिन्दी के, से, के लिए, का, की, के, में, पर, जब, तब, जहाँ, वहाँ, यदि—तो, यद्यपि-तथापि आदि परसर्ग इस कोटि में आते हैं। संस्कृत में 'इति' ऐसा ही शब्द था। अंग्रेजी में भी कुछ शब्द ऐसे हैं।

(3) अपश्रुति—अर्थ तत्त्व की ध्वनियों में कुछ परिवर्तन करके सम्बन्ध तत्व का बोध कराना, जैसे चलना, चला, चाल आदि (दे० अपश्रुति)।

(4) यथापूर्व—अर्थ तत्व में कोई परिवर्तन न करके कभी-कभी वैसे ही सम्बन्ध तत्व का काम निकाल लिया जाता है। संस्कृत के प्रथमैकवचन के अनेक संज्ञा रूप (सरित्, वणिक् आदि) अधिकृत रहते थे। हिन्दी धातुओं के अधिकृत रूप (हट, जा, खा आदि) आज्ञार्थक होते हैं।

(5) स्वराघात—बोलने के लहजे से ही अनेक भाषाओं में सम्बन्ध तत्व प्रकट किया जाता है। अंग्रेजी शब्द कनडक्ट क पर स्वराघात होने से संज्ञा और ड पर होने से क्रिया हो जाता है। ग्रीक में पेट्रोक्टोनोस में पहले ओ पर स्वराघात होने से पिता द्वारा मारा गया और दूसरे ओ पर स्वराघात होने से पिता को मारने वाला अर्थ होता है। संस्कृत में इन्द्र शत्रु शब्द में न्द्र के अ पर स्वराघात होने से इन्द्र का शत्रु और श के अ पर स्वराघात होने से इन्द्र है शत्रु जिसका, अर्थ होता है।[1]

(६) अर्थतत्त्व की ध्वनियों में कुछ परिवर्तन—जैसे लड़ना-लड़ाना, पुत्र-पौत्र, पोथा-पोथी आदि।

स्वराघात का न होना भी एक सम्बन्धतत्त्व बन जाता है। कुछ अन्य प्रकार के सम्बन्धतत्त्व भी होते हैं। पर अधिक प्रचलित इतने ही हैं।

इस विवेचन से पता चलता है कि हिन्दी में प्राय: सभी प्रकार के सम्बन्धतत्त्व चलते हैं। भाषाओं में प्राय: सभी प्रकार के सम्बन्धतत्त्व पाए जाते हैं, पर प्रधानता एक-दो प्रकारों की ही होती है सम्बन्धतत्त्व का सबसे महत्त्वपूर्ण कालानुसार क्रियारूप बनाना है—चला, चलता है, चलेगा आदि। संज्ञाओं में भी लिंग-वचन का बोध कराना दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है। संस्कृत में विशेषण भी विशेष्य के अनुसार लिंग-वचन अपनाते थे। अब हिन्दी में यह बात वैकल्पिक रूप से होती है—(1) मोटा मोटे आदमी और मोटी औरत, (2) सुन्दर कमल (बहुवचन में भी)। अन्य शब्दों को संज्ञा का रूप देने तथा संज्ञा से संज्ञा आदि बनाने के लिए भी सम्बन्धतत्त्व की

1. स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्—पाणिनीयशिक्षा।

आवश्यकता पड़ती है। (विशेष दे० रूप-विचार)।

संमिश्रात्मक—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार-श्लिष्ट योगात्मक।

संयुक्त ध्वनि—दो ध्वनियों के एकत्र मिलने को संयुक्त ध्वनि कहते हैं। व्यंजन-व्यंजन के संयोग में दो भिन्न व्यंजनों का संयोग होगा या एक ही व्यंजन संयुक्त होगा। शक्र में दो भिन्न व्यंजनों क् और र् का संयोग है। इसके उच्चारण में आद्यावस्था में प्रत्यय व्यंजन की ध्वनि पूरे व्यंजन जैसी ही होती है, द्वितीयावस्था में भी लगभग स्वतन्त्र रहती है, पर तृतीयावस्था में दूसरे व्यंजन में मिल जाती है। दो भिन्न व्यंजनों में संयोग में ध्यान देने योग्य बातें यह हैं कि (1) दो महाप्राणों का संयोग बहुत कम होता है। (2) सघोष और अघोष भी कम संयुक्त होते हैं, (3) ऐसी स्थिति में होने वाली उच्चारण की सुविधा के कारण या तो एक का उच्चारण नहीं होता या बीच में या पहले कुछ और ध्वनि का आगम हो जाता है।

एक ही व्यंजन के संयोग अन्न को लें। इसमें 'न्' का उच्चारण पृथक् नहीं होता। इसमें उच्चारण में आद्य तथा तृतीय अवस्थाएँ सामान्य न् के उच्चारण-सी रहेंगी, पर दूसरी अवस्था कुछ लम्बी हो जाएगी और स्पर्श देर तक होगा।

व्यंजन और स्वर का संयोग सामान्य बात है। इसके उच्चारण में आद्य तथा द्वितीय अवस्थाओं में तो व्यंजन की अवस्थाएँ स्वतन्त्र रहती हैं, पर तृतीयावस्था का स्वर में पर्यवसान हो जाता है। संस्कृत में दो स्वर साथ-साथ न आ पाते थे। ऐसी स्थिति में सन्धि के नियमों के अनुसार या तो दो स्वरों का मिलकर एक स्वर बन जाता था (वरुण + आलय = वरुणालय, उप + इन्द्र = उपेन्द्र आदि) या बीच में एक व्यंजन और आ जाता था (नै + अक = नायक आदि)। परन्तु मध्यकालीन आर्य भाषाओं (प्राकृत आदि) में प्रवृत्ति बिलकुल उलटी हो गई। डा० बाबूराम सक्सेना ने इस सम्बन्ध में (दंष्ट्रा-दाढ़ा) और ठोउरं अंतेउरं और बप्पइरावा के उदाहरण दिए हैं।[1] संस्कृत में तो पाण्र्ड्य और कात्स्न्र्य आदि में चार-पाँच व्यंजनों तक के संयोग देखने को मिलते हैं। व्यंजन संयोगों के विषय में भी कुछ नियम होते हैं, जिन्हें व्यंजन सन्धि के नियमों में गिना जाता है, जैसे सघोष और अघोष स्पर्श ध्वनियों के साथ-साथ आने पर दोनों का समीकरण हो जाता है (वाक् + जाल = वाग्जाल आदि)।

स्वरों के संयोग में दो स्वरों के बीच कुछ समय के लिए रुकना पड़ता है, यदि रुका न जाए तो या तो संस्कृत की भाँति एक स्वर बन जाता है अथवा य् या व् श्रुति उपयुक्त रूप में आ जाती है (कौआ-कौवा) आदि। उच्चारण की दृष्टि से डा० बाबूराम सक्सेना ने इन मिश्र स्वरों के दो भेद किए हैं (1) अनावश्यक मिश्र स्वर-जैसे देउता, नेइया आदि में प्रथम स्वर का व्यक्तित्व प्रबल और दूसरे का निर्बल होता है तथा (2) उन्नायक मिश्र स्वर, जैसे पैसा, पौत्र आदि में पहला क्षीण

1. डा० बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान, पृष्ठ 60।

व्यक्तित्व वाला और दूसरा प्रबल व्यक्तित्व वाला होता है । विशेष दे० संयुक्त स्वर, मूलस्वर ।

संयुक्त स्वर—बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में संयुक्त स्वर या संध्यक्षर उन असवर्ण स्वरों के समूह को कहते हैं, जिनका उच्चारण श्वास के एक ही वेग में अर्थात् एक अक्षरवत् होता है । डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में सिद्धान्त की दृष्टि से संयुक्त स्वर के उच्चारण में मुखावयव एक स्वर के उच्चारण स्थान से दूसरे स्वर के उच्चारणस्थान की ओर सीधे मार्ग से तेजी से बदलते हैं, जिससे साँस के एक ही झोंके में, अवयवों में परिवर्तन होती हुई अवस्था में, ध्वनि का उच्चारण होता है । अतः संयुक्त स्वर को दो भिन्न स्वरों का संयुक्त रूप मानना ठीक नहीं है। संयुक्तस्वर एक अक्षर हो जाता है, पर ये दो अक्षर होते हैं । व्यवहारतः शीघ्र उच्चारण में वे एक संध्यक्षर से लगते हैं। सैद्धान्तिक अन्तर रहने पर भी व्यवहारतः उनमें भेद करना कठिन है । वस्तुतः हिन्दी में केवल दो ही संयुक्तस्वरों के लिए पृथक् लिपि चिन्ह हैं, और दो ही सच्चे संयुक्त स्वर हैं—ऐ (अ ए) और औ (अ ओ) ।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने दो संयुक्त स्वरों और तीन संयुक्त स्वरों के संयोग की एक बड़ी सूची दी है (दे० 'हिन्दी भाषा का इतिहास' पृष्ठ 95-98) । कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :

साहित्यिक हिन्दी में दो स्वरों का संयोग—

कई, ऐसा, गए, आओ, नाऊ, आई, आए, कोई, बोए, खोआ, जुआ, गुई, कुए, दिआ, विओग, लिए, खेआ, खेई ।

साहित्यिक हिन्दी में तीन स्वरों का संयोग—

भइया, कउआ, आइए ।

बोलियों में दो स्वरों का संयोग—

ब्रज—गओ, तऊ, आइसी, आइ, धोओ, सिअत, देओ ।

अवधी—तउ, सोइ, ढोआ, होउ, हुई, दुइ, रुई, घिउ, देउ, देइ, खेए, चलउ ।

बोलियों में तीन स्वरों का संयोग—

ब्रज—गउए, अइयो, घुइआ, सिआई, पिआऊ ।

अवधी—आइउ (तुम आई०) खाएउ, धोएउ, जिअउ, खेएउ, नेइआ, पिएउ ।

संयुक्ताक्षर—व्यंजनों का निरन्तर संयोग । दो या तीन व्यंजनों के बीच में स्वरों का व्यवधान होने पर उस वर्ण समूह को संयुक्ताक्षर कहते हैं । विशेष दे० संयोग ।

संयोग—स्वरों द्वारा व्यवधान न पड़ने पर निरन्तर आने वाले व्यंजनों को संयोग कहा जाता है । दे० पाणिनिसूत्र, हलोऽनन्तराः संयोगः 1/1/7 । अक्षरों के इस संयोग को संयुक्ताक्षर के नाम से पुकारा जाता है । संयुक्ताक्षर से रूढ़ि के बल पर अधिकांशतः संयुक्त-व्यंजनों की ही प्रतीति होती है । देखा जाए तो ए, ऐ, ओ, औ भी संयुक्ताक्षर ही हैं, पर प्रायः उनको संयुक्ताक्षर न कह कर संयुक्त-स्वर कहते हैं ।

संयोग-प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक । इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं । विशेष दे० वाक्य-विचार, अश्लिष्ट योगात्मक ।

संयोगी—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य विचार—अश्लिष्ट योगात्मक।

संवार—एक बाह्य प्रयत्न। वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्णों, य, र, ल, व, और ह का बाह्य प्रयत्न संवार होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

संवृत—एक आभ्यान्तर प्रयत्न। ह्रस्व 'अ' के प्रयोग में संवृत आभ्यन्तर प्रयत्न होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

संश्लेष प्रधान—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—श्लिष्ट योगात्मक।

संस्कार प्रधान—वाक्यों के चार भेदों में से एक। इन्हें श्लिष्ट योगात्मक भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—श्लिष्ट योगात्मक।

संस्कृत ध्वनिसमूह—पाणिनि के 14 माहेश्वर सूत्रों द्वारा निरूपित संस्कृत ध्वनि समूह लगभग वैदिक ध्वनियों के समान ही हैं (दे० वैदिक ध्वनि समूह)। वैदिक ध्वनि समूह में से ल, ल्ह, जिह्वामूलीय और उपाध्मानीय ध्वनियों को छोड़कर शेष समस्त ध्वनियों का प्रयोग संस्कृत में होता रहा। कुछ ध्वनियों में उच्चारण में वाक् परिवर्तन हो गए। ऋ, ॠ, लृ का मूलस्वरों जैसा उच्चारण नहीं रहा। ए ओ निश्चित रूप में संधिस्वर हो गए। आई, आउ के स्थान पर ऐ (अइ) औ (अउ) हो गए। शुद्ध अर्द्धस्वर व दंत्तोष्ठ्य बन गया। (विशेष दे० वैदिक ध्वनि समूह)।

संस्कृतिक परिवार—भारोपीय परिवार का एक अन्य नाम जो प्रचलिए न हो सका। विशेष दे० भारोपीय परिवार।

संहिता—वर्णों का अत्यन्त सांनिध्य संहिता कहलाता है। दे० पाणिनिसूत्र "परः संनिकर्षः संहिता" 1/4/109। वर्णों की इस अतिशय संनिधि में ही सन्धि होती है और वर्ण-विकार तथा वर्णागम होते हैं।

संहिता भाषा—यदि सेना तथा अन्य ऐसा ही महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाली संस्थाएँ अपने व्यवहार में साधारण भाषा का प्रयोग करें, तो बहुत खतरा पैदा हो सकता है, अतः वे सब गुप्त शब्द-संकेतों का प्रयोग करती हैं। इन शब्द संकेतों का निर्वचन गुप्त संहिताओं के अनुसार होता है, अतः इनको संहिता भाषा (कोड लैंग्वेज) कहते हैं। (विशेष दे० कृत्रिम भाषा)।

सतवरिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 15 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

सतम् वर्ग—भारोपीय परिवार (दे० यथा०) की भाषाओं का एक वर्ग। अस्कोली ने 1870 में कुछ भारोपीय भाषाओं की कंठ्य ध्वनियों के स्थान पर अन्य भारोपीय भाषाओं में उष्म ध्वनि (श आदि) का उल्लेख किया था, जिसके आधार पर फान ब्राडके ने भारोपीय परिवार की भाषाओं को दो वर्गों केंटुम् और सतम् में बाँटा। यह वर्गीकरण उन भाषाओं में सौ शब्द के रूप के आधार पर किया गया

है। सतम् शब्द अवेस्ता में सौ का पर्याय है। इस वर्ग में इलीरियन (अल्बेनियन), बाल्टिक, स्लैवोनिक, आर्मेनियन और आर्य ये शाखाएँ या उपपरिवार आते हैं।

सदरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसे सदारी भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 87,075 है। इनमें से 86,396 भारत के मध्य भाग में और 281 पूर्वी भाग में और 398 अंडमान नीकोबार में रहते हैं।

सनार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

सप्राण-स्पर्श—वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ अक्षरों में सप्राण (ह् सहित) ध्वनि देखने को मिलती है (क्+ह्=ख् इत्यादि), इसी कारण संस्कृत वैयाकरण इसको महाप्राण मानते हैं। सप्राण उच्चारण की प्रवृत्ति के ही कारण संस्कृत कपाल हिन्दी में आकर खप्पर और खोपड़ा रूप धारण कर लेता है। (और दे० महाप्राण)।

समन्वयवाद—भाषोत्पत्ति के विषय में एक सिद्धान्त। भाषोत्पत्ति विषयक अनुकरणमूलकतावाद, मनोभावाभिव्यंजकतावाद, डिंग-डैंगवाद, श्रमपरिहरणमूलकतावाद आदि अनेक वादों के विवेचन के बाद भाषा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भाषा इन सब वादों का एक समन्वित रूप है और ये सभी वाद किसी न किसी रूप में भाषोत्पत्ति के कारण बने हैं। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)।

समास-प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—प्रश्लिष्ट योगात्मक।

समीकरण—दो असमान या अननुरूप या असवर्ण व्यंजनों के पास-पास रहने पर एक का दूसरे के समान हो जाना। पिछले व्यंजन के बदलने पर पूर्व या पुरोगामी और पहले व्यंजन के बदलने पर पश्च या पर ये दो भेद हो जाते हैं। परस्पर-प्रभाव से दोनों के बदलने या तीसरे व्यंजन के आ जाने से एक तीसरा भेद और हो जाता है। यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है। विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन।

सरमाली—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 18 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

सरवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 52 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

सवर्ण—जिन वर्णों में तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न की परस्पर समता होती है, उन वर्णों को एक दूसरे का सवर्ण कहा जाता है।[1] अ, कवर्ग, ह और विसर्ग का उच्चारण स्थान कंठ है। इ, चवर्ग, य और श[2] का उच्चारण स्थान तालु

1. देखिए 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' पाणिनीय अष्टाध्यायी 1/1/9; और उस पर भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी की वृत्ति—"ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तर प्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्' इत्यादि।

2. तालु से उच्चरित होने के कारण इसे तालव्य श कहते हैं।

है। ऋ, टवर्ग, र और ष[1] का उच्चारण स्थान मूर्धा है। मुख की छत के पिछले भाग को तालु और अगले भाग को मूर्धा के नाम से पुकारते हैं। लृ, तवर्ग, ल और स[2] का उच्चारण स्थान दन्त है। उ, पवर्ग और उपध्मानीय[3] का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। वर्गों के पंचम अक्षर क्रमशः ङ, ञ, ण, न और म का उच्चारण स्थान उपर्युक्त स्थानों के साथ ही नासिका भी है। 'ए' 'ऐ' का उच्चारण स्थान कंठतालु है। ओ, औ का उच्चारण स्थान कंठोष्ठ है। व का उच्चारण स्थान दन्तोष्ठ है। जिह्वामूलीय[4] का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है। अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है।

प्रयत्नों (या यत्नों) के दो भेद हैं, आभ्यन्तर और बाह्य। इनमें से बाह्य प्रयत्नों का सवर्ण के प्रसंग में कोई सीधा उपयोग नहीं है, पर आभ्यन्तर प्रयत्न के निरूपण में वे भी काम आते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न चार[5] प्रकार के होते हैं—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट विवृत और संवृत। क से लेकर म तक के 25 अक्षर स्पर्श नाम से पुकारे जाते हैं, और इनका आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट होता है। य, र, ल और व को अन्तःस्थ कहते हैं, और इनका आभ्यन्तर प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट होता है। श, ष, स और ह को उष्म कहते हैं, इनका और स्वरों का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत होता है। ह्रस्व अ के प्रयोग में संवृत नामक आभ्यन्तर प्रयत्न होता है। प्रक्रिया दशा में वह विवृत ही होता है।

बाह्य प्रयत्न के ग्यारह भेद हैं—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर (क, च, ट, त, प, ख, छ, ठ, थ और फ) श, ष, स जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और विसर्गों के बाह्य प्रयत्न विवार, श्वास और अघोष हैं। शेष अक्षरों का संवार, नाद और घोष है। वर्गों के प्रथम तृतीय और पंचम अक्षर (क, च, ट, त, प, ग, ज, ड, द, ब, ङ, ञ, ण, न, म) और अंतःस्थ (य, र, ल, व) अल्पप्राण हैं, और शेष महाप्राण। प्रयत्नों के अध्ययन के लिए पं० रामनारायण दत्त पाण्डेय द्वारा गीताप्रेस

1. मूर्धा से उच्चरित होने के कारण इसे मूर्धन्य ष कहते हैं।

2. दन्त से उच्चरित होने के कारण इसे दन्त्य स कहते हैं।

3. कुप्वोः ≍क≍ पौ च (पाणिनिसूत्र 8/3/37) के अनुसार कवर्ग और पवर्ग से पहले आने वाली विसर्ग विकल्प से एक बार ≍ हो जाती है। कवर्ग से पहले इसे जिह्वामूलीय कहते हैं और पवर्ग से पहले उपाध्मानीय।

4. देखिए उपर्युक्त पादटिप्पणी '3'।

5. कुछ वैयाकरण श, ष, स और ह के लिए ईषद्विवृत नामक पाँचवे भेद की भी कल्पना करते हैं। दे० लघुसिद्धान्त कौमुदी, संज्ञाप्रकरण।

की लघुसिद्धान्त कौमुदी में दी गई निम्न सारणी अत्यन्त उपयोगी है—

आभ्यन्तर प्रयत्न	स्पृष्ट					ईषत् स्पृष्ट	ईषद्विवृत		विवृत	संवृत
संज्ञा	स्पर्श					अन्तः-स्थ	ऊष्म		स्वर	
वर्ण	क च ट त प	ख छ ठ थ फ	ग ज ड द ब	ङ ञ ण न म	घ झ ढ ध भ	य र ल व	श ष स	ह	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ	ह्रस्व अ का प्रयोग
बाह्यप्रयत्न	अल्प-प्राण विवार श्वास अघोष	महा-प्राण	अल्पप्राण संवार नाद घोष		महाप्राण संवार नाद घोष	अल्प-प्राण संवार नाद घोष	महा-प्राण विवार श्वास अघोष	महा-प्राण संवार नाद घोष	उदात्त, अनुदात्त स्वरित	

सववस्त्री—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12 है ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते है।

सवारा—सवारा या सओरा नामक आदिम जाति भाषा (या उपभाषा) को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 2,56,259 है। इसमें से 2,00,025 पूर्वभारत में और शेष 56,234 दक्षिण भारत में रहती हैं।

सांकेतिक उत्पत्ति—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि सृष्टि के आदि में कुछ मनुष्यों के समाज ने एकत्र होकर भावविशेष की अभिव्यक्ति के लिए कुछ प्रतीक स्वीकार कर लिए और उक्त निर्णय के अनुसार भाषा का प्रारम्भ हुआ। इसे सांकेतिक सिद्धान्त भी कहते हैं। परन्तु भाषा के बिना विचार-विनिमय कैसे हुआ, इस सामान्य प्रश्न ने ही इस कल्पना को धराशायी कर दिया है। इस सिद्धान्त में यदि कुछ सचाई है तो वह इतनी ही कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)।

सावर्ण्य—दो असमान या अननुरूप या असवर्ण व्यंजनों के पास-पास रहने पर एक का दूसरे के समान हो जाना। पिछले व्यंजन के बदलने पर पूर्व या पुरोगामी और

पहले व्यंजन के बदलने पर पश्च या पर ये दो भेद हो जाते हैं। परस्पर प्रभाव से दोनों के बदलने या तीसरे व्यंजन के ग्रा जाने से एक तीसरा भेद ग्रौर हो जाता है । यह ध्वनि-परिवर्तन की एक दिशा है । विशेष दे० ध्वनि-परिवर्तन ।

सादना—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,622 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

सादृश्य—व्याकरण, ध्वनिशास्त्र, शब्दनिर्माण प्रत्येक स्थान पर सादृश्य से विशेष काम लिया जाता है। सैंतिस के ग्रनुसार पैंतिस ग्रौर ग्रौर सैंतालीस के ग्रनुसार पैंतालीस बना लिए जाते हैं । भोलानाथ तिवारी के ग्रनुसार ग्रभिव्यंजना की कठिनाई को दूर करने के लिए सादृश्य का सहारा लिया जाता है, पाश्चात्य की तुक में पौर्वात्य शब्द बना यद्यपि पौरस्त्य शब्द विद्यमान था । समानता या विपर्यय पर बल देने के लिए भी सादृश्य का सहारा लिया जाता है, संस्कृत ग्राभ्यन्तर से हिन्दी भीतर विकसित हुग्रा उसी के सादृश्य पर बाह्य से बाहर भी बना लिया गया । सादृश्य के ही कारण तुभ्यं से बने तुझ के सदृश यहाँ मह्यं के मझ का भी मुझ हो गया ।

मनुष्य की ग्रनुकरणशील प्रवृत्ति ने ही सादृश्य के ग्रनुसार नए पदार्थ गढ़ने की बात उसे सिखाई है। भाषा के प्रत्येक ग्रंग में सादृश्य का उपयोग लिया जाता है। ध्वनि-विचार, शब्द विचार, रूप विचार ग्रौर ग्रर्थ विचार ग्रादि प्रत्येक शास्त्र में उसका व्यवहार देखा जा सकता है । सादृश्य के फलस्वरूप ग्रपवाद कम हो जाते हैं। इन दृष्टियों से उसका भाषा विज्ञान में विशेष महत्त्व है। ब्रिटिश विश्वकोष के ग्रनुसार व्याकरण में भी उसका विशेष महत्त्व है ।

सामलपुरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है । यह व्यक्ति ग्रंडमान-नीकोबार में रहता है ।

सिंगपो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,632 है । ये लोग पूर्वी भारत में रहते हैं । दोन ग्रौर सिंगपो इसके दो नाम हैं ।

सिंगफो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 141 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

सिंगस्वेन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 93 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

सिंधी—पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त से भारत ग्राने वाले विस्थापित इसे ग्रपने साथ भारत लाए हैं। यह उनके पारस्परिक उपयोग की एक भाषा है । सिन्ध में मुसलमानों की बहुलता ग्रौर उनके सम्पर्क के कारण इसमें फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है ग्रौर यह फारसी लिपि के ही एक विकृत रूप में लिखी जाती है। निज के हिसाब-किताब में देवनागरी लिपि का ही एक बिगड़ा हुग्रा रूप भी व्यवहृत होता है। सिन्धी की एक ग्रपनी लिपि भी है, जिसका नाम लंडा है। कभी-कभी यह गुरुमुखी लिपि में भी लिखी जाती है। भाषा सर्वे के ग्रनुसार इसमें पाँच मुख्य बोलियाँ

थीं, जिनमें मध्य की 'बिचौली' साहित्यिक भाषा बन बैठी थी। इस भाषा में साहित्य बहुत कम है।

इस भाषा को बोलने वालों की जनसंख्या 7,45,434 है, जो निम्न क्षेत्रों में निम्न रूप में बँटी हुई है—उत्तर भारत 53,833, पूर्वभारत—3,560, दक्षिण भारत—10,968, पश्चिम भारत 3,29,978, मध्य-भारत 1,62,328, पश्चिमोत्तर भारत 1,84,866, और अंडमान तथा नीकोबार-1।

सिबा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

सिकालगढ़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 584 है। ये लोग भारत के पश्चिमी भाग में रहते हैं।

सिधान—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्य 10 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

सिनतेंग—भारत की इस बोली या उपभाषा के जिसे प्नार भी कहते हैं, बोलने वालों की संख्या 38,945 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

सिपारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 315 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

सिमतेनाग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,027 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

सिरमूरी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 34 है। ये लोग भारत के उत्तरी भाग में रहते हैं।

सिरोजी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 93 है। इनमें से 86 भारत के उत्तरी और 7 पश्चिमी भाग में रहते हैं।

सीकरवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 503 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

सीखी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 61 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

सुनवार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5,427 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

सुफलिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 135 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

सुमेरियन—विश्व की उन अनिश्चित और प्राचीन भाषाओं में से एक, जो अब तक किसी भी परिवार में वर्गीकृत नहीं की जा सकी है। सुमेरियन शासन हजारों वर्षों पूर्व बेबीलोन से लेकर ईरान खाड़ी तक था। 700 ई० पूर्व के लगभग वह जाति और उसकी बढ़ी-चढ़ी सभ्यता सभी की समाप्ति हो गई। सिन्धु सभ्यता से

भी इस सभ्यता का सम्बन्ध जोड़ने के लिए कुछ लोगों ने असफल प्रयास किया है। कुछ लोगों ने सुमेरियन भाषा का सम्बन्ध यूराल-अल्टाइक परिवार से भी जोड़ा है । इस भाषा में लिखे हुए 4,000 ई० पू० तक के लेख मिलते हैं, जो इसे विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में पहुँचा देते हैं ।

सुबेरा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है । यह व्यक्ति अंडमान-नीकोबार में रहता है ।

सूडान परिवार—विश्व की भाषाओं के अफ्रीका खंड का एक परिवार। ये भाषाएँ भूमध्यरेखा के उत्तर हैमेटिक परिवार के दक्षिण में फैली हुई हैं। कुछ बातों में यह परिवार बंटू परिवार से मिलता-जुलता है । कुछ भाषाओं में लिपियाँ भी हैं ।

इस परिवार की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं । इसमें व्याकरण की आवश्यकता नहीं समझी गई । बहुवचन बनाने के नियम बंटू परिवार की भाँति ही अस्पष्ट हैं; कभी 'लोग' जोड़कर कभी ह्रस्वस्वर दीर्घ करके बहुवचन बनाया जाता है । पूर्वसर्ग (प्रिपोजीशन) न होने से संयुक्त या मिश्रित वाक्य न होकर उन्हें एक क्रिया वाले छोटे-छोटे साधारण वाक्यों में बांट दिया जाता है । धातुएँ ध्वन्यात्मक होती हैं, जिनसे न केवल ध्वनि, बल्कि रूप, गति, अवस्था, रंग आदि का भी चित्र खड़ा हो जाता है और शब्दों की ध्वनि अपना अर्थ व्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ होती है । चीनी की भाँति स्वर के परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन भी हो जाता है । चीनी की ही भाँति ये भाषाएँ भी अयोगात्मक और एकाक्षर धातुओं वाली होती हैं । विभक्तियाँ बिलकुल नहीं पाई जाती ।

सूडान परिवार की सौ से भी ज्यादा भाषाओं को निम्न चार प्रमुख वर्गों में बाँटा जाता है, यद्यपि कुछ और वर्ग भी हैं ।

(1) सेनेगल वर्ग (वो लोप आदि)
(2) ईव वर्ग (अशानी, ईव, यरुबा आदि)
(3) मध्य वर्ग (सोंघराई, हौसा आदि)
(4) नीलोत्तरी वर्ग (बारी डेंका आदि)

सूधन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 160 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

सेमा—भारत की इस नागा बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 39,640 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

सैथोड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की 10 है । ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं ।

सैमा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 40 है । ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं ।

सैमेटिक परिवार—विश्व की भाषाओं के यूरेशिया खण्ड का एक परिवार । इस परिवार की एक शाखा अफ्रीका खण्ड में भी मोरक्को से स्वेज नहर तक बोली जाती

है। सैमेटिक नामकरण का कारण इंजील में नौह के पहले पुत्र सेम का दक्षिण-पश्चिम एशिया के निवासियों का आदि पुरुष बताया जाना है। वैसे इसकी एक भाषा अरबी का आधिपत्य उत्तरी अफ्रीका पर भी है।

सैमेटिक और हैमेटिक दोनों परिवारों के लक्षणों में साम्य की दृष्टि में कुछ लोग दोनों को एक ही परिवार मानते हैं। दोनों में ही आगे, बीच में और पीछे विभक्तियाँ लगती हैं और दोनों अन्तर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक हैं। अधिकांश सम्बन्धतत्व बीच वाले स्वर में परिवर्तन से ही सूचित किए जाते हैं, जैसे अरबी में एक ही कतब् से कातिब, किताब, कुतुब, मकतब आदि। दोनों परिवारों की क्रियाओं में काल का स्थान गौण है। बहुवचन बनाने के लिए दोनों परिवारों में प्रायः एक से ही प्रत्यय लगते हैं। दोनों में त् ध्वनि स्त्रीवाचक है और लिंगभेद पुरुष स्त्री के स्थान पर अन्य बातों पर आधारित है। दोनों में सर्वनामों का मूल भी एक ही है।

हैमेटिक की अपेक्षा सैमेटिक में कुछ स्पष्ट विशेषताएँ भी हैं। धातु या अर्थ तत्व बोधक शब्द (माद्दा) तीन व्यंजनों का होता है—क्‌त्‌ब्—इनमें स्वरों की सहायता से सम्बन्ध तत्व जोड़े जाते हैं—कातिल, क़तल, कुतिल, यकतुलु आदि। कुछ उपसर्ग-प्रत्यय भी लगते हैं जैसे प्रेरणार्थक में हि उपसर्ग जोड़कर हिक्तिल आदि। समास केवल दो शब्दों का और व्यक्ति वाचक संज्ञाओं में ही होता है, जिसका क्रम संस्कृत से उलटा होता है जैसे अखिलेश्वरी के स्थान पर मलिकए-आज़म। प्राचीन सैमेटिक भाषाओं में प्रत्यय लगाकर कर्ता, कर्म, सम्बन्ध आदि कारक बनते थे और वचन के लिए भी प्रत्यय ही लगते थे, पर अब अलग शब्द जोड़े जाने लगे हैं, अर्थात् भाषाएँ 'वियोगात्मक' हो गई हैं। सैमेटिक और हैमेटिक परिवारों की उभयसामान्य स्त्रीवाचक ध्वनि त् सैमेटिक परिवार की कुछ भाषाओं में थ् या ह् का रूप ग्रहण कर लेती है। सैमेटिक परिवार की विभिन्न शाखाओं में भेद विशेष अधिक नहीं है। अरबी इस परिवार की प्रमुख भाषा है, जिसने फारसी, तुर्की पर ही नहीं उर्दू, पंजाबी, हिन्दी, बंगला, आदि उत्तर भारत की सभी भाषाओं और अंग्रेजी तक पर अपनी छाप छोड़ी है।

सैमेटिक परिवार को पहले उत्तरी और दक्षिणी दो स्थूल वर्गों में बाँटा जाता है। उत्तरी में कैनाअनिटिक और असीरिओ आर्मेइक दो शाखाएँ हैं। कैनाअनिटिक में प्राचीन और वर्त्तमान हिब्रू, मोआबाइट, समारितन, फोनीशियन और प्यूनिक भाषाएँ आती हैं। असीरियो-आर्मेइक शाखा में असीरियन आती है और थाल्डी, सीरिअक और मेंडियन आर्मेइक भाषाएँ। दक्षिणी वर्ग में एक जोक्तानिद् शाखा में हिम्यारिटिक की बहकिली और एबीसीनियन की हरारी अम्हारिक, ताइगर और एथिओपिक भाषाएँ आती हैं और दूसरी अरबी शाखा में साहित्यिक अरबी और अरब, बाबेरी, मोरक्को और मिस्र की वर्त्तमान बोलियाँ आती हैं।

रचना की विशेषताओं के कारण सैमेटिक भाषा-परिवार संसार के सभी भाषा परिवारों से भिन्न है और इसी से भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है।

सोंदवारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 74,343 है। ये लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग में रहते हैं।

सोंधी—भारत की इस बोली वा उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 7,545 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

सोनारी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहता है।

सोमार—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने बालों की संख्या 40 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

सोरकी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

सौराष्ट्र—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों श्री कुल जनसंख्या 1,24,486 है, श्रौर वह सब की सब दक्षिण भारत में है।

सौराष्ट्री—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 38 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

स्थान—वर्णों के उच्चारण के लिए जीभ के साथ-साथ प्रयुक्त होने वाले मुख के श्रंग—हृदय, कंठ, तालु, मूर्धा, दन्त, जिह्वामूल, नासिका श्रौर श्रोष्ठ—इन श्राठ[1] स्थानों की सहायता से वर्णों का उच्चारण होता है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

स्थान-प्रधान—वाक्यों के चार प्रमुख भेदों में से एक। इन्हें श्रयोगात्मक वाक्य भी कहते हैं। विशेष दे० वाक्य-विचार—श्रयोगात्मक।

स्थान प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण के लिए प्रयुक्त होने वाले मुख के श्रंग श्रौर उनके उच्चारण के लिए की जाने वाली चेष्टा का स्वरूप। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

स्पर्श—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग श्रौर पवर्ग के पचीस श्रक्षर स्पर्श व्यंजनों के नाम से पुकारे जाते हैं, श्रर्थात् क से लेकर म तक के व्यंजन स्पर्श होते हैं—"कादयो मावसानाः स्पर्शाः" —सिद्धान्त कौमुदी। इन स्पर्श-ध्वनियों के उच्चारण में मुख के श्रन्दर या बाहर के दो उच्चारण श्रवयव एक दूसरे को इतनी जोर से सहसा स्पर्श करके खुलते हैं कि निःश्वास थोड़ी देर के लिए बिलकुल रुककर फिर वेग के साथ सहसा बाहर निकलता है। ऐसा डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है। स्पर्श ध्वनियों को 'स्फोटक' नाम से भी पुकारा जाता है।

स्पर्श-संघर्षी—चटर्जी, कादरी श्रौर सक्सेना पृथक्-पृथक् प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि श्राधुनिक भारतीय श्रार्यभाषाश्रों की चवर्गीय ध्वनियाँ शुद्ध स्पर्श नहीं

1. श्रष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा जिह्वामूलञ्च दन्तश्च नासिकोष्ठौ च तालु च।
—पाणिनीय शिक्षा (13)

हैं, बल्कि स्पर्श-संघर्षी या घर्ष स्पर्शी हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है कि इसका प्रयोग और व्यापक रूप में होना चाहिए, तभी शुद्ध निर्णय सम्भव हो सकेगा। डा० श्यामसुन्दरदास के भी मत से खड़ी बोली के आदर्श उच्चारण केन्द्र दिल्ली और मेरठ के आस-पास इसकी विशेष रूप से परीक्षा होनी चाहिए। इन ध्वनियों पर टिप्पणी यथास्थान देखिए।

स्पृष्ट—एक आभ्यन्तर प्रयत्न। क से लेकर म तक के 25 वर्णों का (जिन्हें स्पर्श कहते हैं) आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट है। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

स्फोट—भट्टोजिदीक्षित के अनुसार जिसमें अर्थ प्रस्फुटित होता है, उस शब्दतत्त्व को स्फोट कहते हैं।[1] भूषणकार कौंडभट्ट के अनुसार जिससे अर्थज्ञान होता है (स्फुटत्यर्थो यस्मात्) वह स्फोट है, अर्थात् वह यौगिक है। श्रीकृष्ण ने स्फोट चन्द्रिका में स्फोट की व्युत्पत्ति तो उक्त प्रकार से मानी है, परन्तु उसे केवल यौगिक न मानकर पंकज आदि शब्दों की भाँति योगरूढ़ माना है।

पतञ्जलि के अनुसार स्फोट शब्द है और ध्वनि शब्द का गुण। नगाड़े पर चोट पड़ने पर स्फोट तो उतना ही होता है, पर ध्वनि बढ़-घट सकती है। दोनों का परस्पर व्यंग्य व्यंजक सम्बन्ध है। ध्वनि स्फोट का उपकारक और व्यंजक होती है। ध्वनि कार्य है, स्फोट कारण। इसी से शब्द अर्थ का क्रमशः वाचक वाच्य सम्बन्ध रहता है। पतञ्जलि के अनुसार ध्वनि कान से सुनी जाती है, स्फोट बुद्धि द्वारा ग्रहण किया जाता है। भर्तृहरि के अनुसार वक्ता और श्रोता दोनों बोलना और सुनना दोनों ही काम करते हैं। बोलते समय वक्ता की बुद्धि में स्थित शब्द (स्फोट) ध्वनि का कारण होता है, जिसका प्रयोग अर्थ बताने के लिए होता है। चैम्बर विश्वकोष ने भाषण की इस प्रक्रिया का बोध कराने के लिए एक रेखा चित्र का सहारा लिया है। भर्तृहरि के अनुसार स्फोट ग्रहण में प्राकृतध्वनि कारण बनती है, पश्चात् की अनुरणन वाली ध्वनि वैकृत होती है और वृत्तिभेद (विलम्ब आदि) का हेतु बनती है।[2] भर्तृहरि के ही अनुसार ध्वनि से शब्द की अभिव्यक्ति मानने वाले व्यक्तिवादी शब्द के द्वारा इंद्रिय का संस्कार, ध्वनि से शब्द का संस्कार और इंद्रिय और शब्द दोनों का संस्कार इस प्रकार तीन प्रकार के संस्कार मानते हैं।[3] इसी प्रकार वह ध्वनि ग्रहण को भी चार प्रकार का मानते हैं।[4] कुछ उसे स्फोट रूप से अविभक्त, कुछ

1. स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोटः; शब्द कौस्तुभ, पृष्ठ 12।
2. स्फोटस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतो ध्वनिरिष्यते। वृत्तिभेदे निमित्तत्वं वैकृतः प्रतिपद्यते।

वाक्य पदीय 1/77

3. इन्द्रियस्यैव संस्कारः शब्द स्यैवोभयस्य वा। क्रियते ध्वनिभिर्नादारश्रयेऽभिव्यक्तिवादिनाम्।

—वही 1/79

4. स्फोटरूपा विभागेन ध्वनेर्ग्रहण मिष्यते ? कैश्चिद् ध्वनिरसंवेद्यः स्वतन्त्रोऽन्यं प्रकाशकः।

—वही, 1/82

असम्बन्ध, कुछ अदृश्य और कुछ प्रकाशक मानते हैं। इस स्फोट के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं और आक्षेप-समाधान और खण्डन-मण्डन की एक बहुत बड़ी परम्परा उसके पीछे है। भट्टोजिदीक्षित ने आठ प्रकार के स्फोट गिनाए हैं—१. वर्ण स्फोट, २. पदस्फोट, ३. वाक्यस्फोट, ४. अखण्ड पदस्फोट, ५. अखण्ड वाक्य स्फोट, ६. वर्ण जाति स्फोट, ७. पदजाति स्फोट, और ८. वाक्य जाति स्फोट।

नैयायिकों और मीमांसकों ने स्फोट सिद्धान्त के ऊपर अनेक प्रकार के आक्षेप किए हैं। भर्तृहरि, मण्डन, भट्टाजिदीक्षित द्वारा उनके उत्तर दिये गए हैं और जयन्त ने अपनी न्याय मंजरी में इन सब पर प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि वर्ण अर्थ का बोध नहीं कराते, अनुमान से ही स्फोट की सिद्धि होती है, वर्ण उस स्फोट के व्यंजक होते हैं, ध्वनियाँ भी स्फोटक की व्यंजक है, स्फोट प्रत्यक्ष दिखाई देता है और इस प्रकार पूरे वाक्य के स्फोट की सिद्धि होती है और उसके अवयव असत्य ठहरते हैं। इन सब बातों की विवेचना करते हुए और आक्षेपों का समाधान करते हुए स्फोटवादी भर्तृहरि के शब्दों में स्फोट को ब्रह्म ही मानते हैं—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:॥ —वाक्यपदीय 1/1

स्फोटक—स्पर्श ध्वनियों (क से लेकर म तक की ध्वनियों) का ही एक अन्य नाम स्फोटक भी है। विशेष दे० स्पर्श।

स्फोटवाद—स्फोटवाद के प्रवर्तक आचार्य स्फोटायन माने जाते हैं। पाणिनि ने उनका सादर उल्लेख किया है। नागेश और हरदत्त ने भी स्फोटवाद पर अपने ग्रंथों में इस बात को माना है। यास्क ने निरुक्त के आरम्भ में शब्द की अनित्यता की स्थापना की है, उस पर व्याख्या करते हुए दुर्गाचार्य ने स्फोटवाद पर प्रकाश डाला है। पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि तीनों ही स्फोटवाद के समर्थक हैं। पतञ्जलि से भी पहले आचार्य व्याडि ने अपने अलभ्य संग्रह (जिसका उल्लेख पतञ्जलि और पुण्यराज ने किया है) में शब्द को नित्य और खण्ड बताया था। पतञ्जलि के बाद भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीय में इसकी विस्तृत व्याख्या की है। उनके पीछे हेलाराज और पुण्यराज ने अपनी टीकाओं में इस पर और प्रकाश डाला है। आगे चलकर भट्टोजिदीक्षित ने शब्द कौस्तुभ में कौंडभट्ट ने वैयाकरण भूषण में, हरदत्त ने पदमंजरी में, नागेश ने व्याकरण सिद्धान्त लघु-मंजूषा में, मण्डन मिश्र और भरत मिश्र ने अपनी-अपनी स्फोट सिद्धियों में, केशव कवि ने स्फोट प्रतिष्ठा में, शेष कृष्ण कवि ने स्फोट तत्त्व में, श्रीकृष्ण भट्ट ने स्फोट चन्द्रिका में, आपदेव ने स्फोट निरूपण में, कुन्द भट्ट ने स्फोटवाद में और गणपति शास्त्री द्वारा स्वसंपादित स्फोट सिद्धि न्याय विचार में स्फोटवाद की इस परम्परा को अक्षुण्ण रखा है।

स्याम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,495 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

स्लैवोनिक—भारोपीय परिवार के सतम् वर्ग की पूर्वी यूरोप में विस्तृत शाखा। ये भाषाएँ पाँचवीं सदी से रूस, बोहेमिया, मोराविया, सर्विया, बल्गेरिया, यूगोस्लाविया आदि में बोली जाती हैं और नवीं सदी तक के लेख इसमें मिलते हैं। यह शाखा पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी शाखाओं में विभाजित की जाती है। पूर्वी शाखा में महारूसी, लघु रूसी और श्वेत रूसी आती हैं। पश्चिमी शाखा में जेक (बुहेमियन और स्लोवेकियन), सर्वियन और लेकिश (पोलिश और पोलाविश) आती हैं। दक्षिणी शाखा में बल्गरियन तथा इलीरियन (सर्वोक्रोटिअन और स्लोवेनियन) हैं।

महा रूसी में 11वीं सदी से साहित्य मिलता है, यद्यपि उसने टकसाली रूप 18वीं सदी में प्राप्त किया था। श्वेत रूसी में पश्चिमी रूस की सभी बोलियाँ आ जाती हैं और लघु रूसी में दक्षिणी बोलियाँ। लघु रूसी को रूथेनियन भी कहते है और वह आस्ट्रिया के गलीसिया प्रदेश में भी बोली जाती है।

पश्चिमी भाषाओं में बोहेमिया की भाषा बोहेमियन या जेक प्रमुख है। स्लोवेकियन भी इसकी ही एक बोली है। इसमें नियमित साहित्य 12वीं सदी से मिलता है। सर्वियन या सोरेवियन या वेंडिक प्रशा और सेक्सोनी की भाषा थी, जो लुप्त हो रही है। पोलिश पोलैंड की भाषा है जो कभी जर्मनी में भी बोली जाती थी। इसके प्राचीनतम रूप 13वीं सदी की कुछ प्रार्थनाएँ हैं। पोलाविश भी इसी की बहन थी, जो अब लुप्त हो चुकी है।

चर्च स्लैवोनिक बल्गेरियन का प्राचीन रूप है, जो ग्रीक-संस्कृत से मिलती-जुलती थी और जिसका प्राचीनतम रूप 9वीं शताब्दी के धार्मिक साहित्य में मिलता है। बल्गैरियन सर्वथा वियोग-प्रधान हो गई है और तुर्की, ग्रीक, रूमानियन अल्बेनियन आदि के शब्द भी आ गए हैं। यह आजकल बलगेरिया के साथ-साथ यूनान और तुर्की के कुछ भाग में भी बोली जाती है।

सर्वोक्रोटिअन में बहुत-सी बोलियाँ हैं। यह यूगोस्लाविया, हंगरी आदि में बोली जाती है। इसका दसवीं-ग्यारहवीं सदी तक का साहित्य पाया जाता है। स्लोवेनियन के प्राचीन लेख 10वीं सदी तक के मिलते हैं और वह दक्षिणी कोरेंथिया, कार्निओला और स्टोरिया में बोली जाती है।

स्वर—डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में आधुनिक शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार स्वर वे ध्वनियाँ कहलाती हैं, जिनके उच्चारण में मुखद्वार कम ज्यादा तो किया जाता है, किन्तु न तो कभी बिलकुल बन्द किया जाता है और न इतना अधिक बन्द कि निःश्वास रगड़ खाकर निकले। सारांशतः जिन ध्वनियों के निकलने में मुख विवर में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती, ऐसी अबाध रूप से निकलने वाली अघोष ध्वनियों को स्वर कहते हैं। बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में स्वर और व्यंजन का भेद वास्तव में श्रोता के विचार से किया जाता है। स्वरों में श्रवण-गुण या श्रवणीयता अधिक होती है और वह व्यंजनों की अपेक्षा अधिक देर तक सुनाई देता है। जब ध्वनि-अवयवों विशेषतः जीभ की अवस्था में परिवर्तन होने मात्र से—बिना

किसी रगड़ या स्पर्श के—कोई ध्वनि निकलती है, तो उसे स्वर कहते है और जीभ की स्थिति को स्वरावस्थिति या अक्षरावस्थिति (दे० यथा०) कहते हैं। जीभ की इन स्थितियों के ही आधार पर स्वरों का वर्गीकरण किया जाता है। चढ़ाव और उतार के भेद से स्वरों के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन भेद होते हैं। ध्वनि परिवर्तनों के चक्र में स्वरों में लोप, आगम, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण, संधि, अनुनासिकता, मात्रा भेद, अभिश्रुति और अपिश्रुति (दे० यथा०) देखी जाती है। विशेष दे० संयुक्त ध्वनि, स्वराघात, ध्वनि विज्ञान, स्वरावस्थिति, मूल-स्वर, सवर्ण।

स्वर-तन्त्री—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में वोकल कौर्ड्स कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

स्वर यन्त्र—ध्वनियों के उच्चारण में सहायता देने वाला शरीर का एक अंग। इसे ध्वनि-यन्त्र या कंठ पिटक भी कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

स्वर यन्त्र मुख—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे स्वर यन्त्र मुख या काकल (अंग्रेजी में ग्लौटिस) कहते हैं। विशेष दे० ध्वनि-अवयव।

स्वर यन्त्र मुखावरण—ध्वनियों के उच्चारण में काम आने वाला शरीर का एक अंग। इसे अंग्रेजी में एपीग्लौटिस और हिन्दी में स्वर यन्त्र मुखावरण या अभिकाकल कहते हैं। विशेष दे०ध्वनि-अवयव।

स्वराघात—बोलने में एक शब्द में सभी अक्षरों (सिलेबिल्स) का एक ही महत्त्व नहीं होता। शब्दों के उच्चारण में अक्षरों पर लगने वाले ज़ोर को ही बल या स्वराघात कहते हैं।[1] एक वाक्य में शब्द विशेष पर जोर देने से सुर (टोन) या लहजे के अनुसार अर्थ बदल जाता है। तुम दफ्तर नहीं जाओगे, इस सीधे-सादे वाक्य में विभिन्न स्वराघातों द्वारा दो-तीन अर्थ निकाले जा सकते हैं। आज्ञार्थक, प्रश्नात्मक, रूप तो निकलते ही हैं, तुम पर जोर देने से केवल तुम और दफ्तर पर जोर देने से केवल दफ्तर अर्थ भी निकाले जा सकते हैं।

स्वराघात के दो भेद होते हैं—संगीतात्मक स्वराघात और बलात्मक स्वराघात। डा० गुणे के अनुसार संस्कृत तथा अन्य अधिकांश भारत-जर्मनीय भाषाओं में मूलतः संगीतात्मक स्वराघात था।[2] यह आवश्यक नहीं है कि एक ही अक्षर में दोनों प्रकार के स्वराघात हों। संगीतात्मक स्वराघात में सुर सरगम की भाँति ऊँचा-नीचा होता है। संगीतात्मक स्वराघात का सम्बन्ध स्वरतन्त्रियों से है, और वह प्रधानत तनाव रहित अघोष ध्वनियों में सम्भव नहीं है। कुछ भाषाओं की प्रकृति प्रधानतः संगीतनिष्ठ होती है, चीनी और फ्रांसीसी भाषाभाषियों की बातचीत सुनते समय

1. बाबू श्यामसुन्दर दास : भाषा रहस्य, पृष्ठ 247।
2. डा० पी० डी० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 6।

अन्य भाषा वालों को कुछ ऐसा लगता है कि मानों ये लोग गा रहे हों। काइमोग्राफ (दे० यथा०) पर इस संगीतात्मक स्वराघात के कारण उठने वाली लहरों को गिना जा सकता है, जो सरगम की लहरी के अनुसार उठती हैं। वैदिक स्वराघात के प्रसंग में इस संगीतात्मक स्वराघात के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित (दे० यथा०) तीन भेद हैं। इसे प्रकट करने के लिए वैदिक वाङ्मय में चार प्रणालियाँ प्रचलित हैं।[1] सामवेद को छोड़ अन्य वेदों की संहिताओं में उदात्त के लिए कोई चिह्न नहीं होता, अनुदात्त के नीचे पड़ी लकीर और स्वरित के ऊपर खड़ी लकीर होती है जैसे देवस्य में दे अनुदात्त व उदात्त और स्य स्वरित है। फिर पादारम्भ के सभी उदात्त चिह्न हीन छोड़ दिए जाते हैं, तथा प्रत्येक अनुदात्त चिह्नित रहता है, पर स्वरित के परवर्ती अनुदात्त में केवल आदिम अनुदात्त ही चिह्नित किया जाता है। ऋग्वेद की काठक और मैत्रायणी शाखाओं में स्वरित के ऊपर खड़ी लकीर न करके उदात्त के ऊपर की जाती है और अनुदात्त का चिह्न पूर्ववत् रहता है। कुछ संहिताओं में स्वरित चिह्न कुछ भिन्न ढंग से लगाया जाता है। सामवेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के लिए ऊपर क्रमशः 1, 2, 3 अंक लिखे जाते हैं। शतपथ में केवल उदात्त के नीचे पड़ी लकीर से चिह्नित किया जाता है। इन्द्रशत्रु शब्द से स्वर के भेद से इन्द्र का शत्रु या इन्द्र है शत्रु जिसका, ये दो अर्थ हो जाते हैं, और स्वरहीन प्रयोग दुष्ट प्रयोग माना जाता है।[2]

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार प्राकृतों तक आते-आते संगीतात्मक स्वराघात लुप्तप्राय हो चला था।[3] पर महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन मागधी, काव्य की अपभ्रंश और जैन शौरसेनी संगीतात्मक स्वराघात को कुछ-न-कुछ अपनाए रहीं, पर शौरसेनी, मागधी, और टक्की (पंजाब) में बलात्मक स्वराघात विकसित होने लगा। स्वराघात के लिखने की प्रणाली के उठ जाने से बाद की भाषाओं में उसकी विद्यमानता को लेकर टर्नर, ग्रियर्सन और ब्लाक में मतभेद है।

अन्य भाषाओं में चीनी आज तक संगीतात्मक है और एक ही शब्द के विभिन्न स्वरों में विभिन्न अर्थ हो जाते हैं। हैमिटिक परिवार के फ़ुलफ़ुल्डे वर्ग में संगीतात्मकता की बहुलता है। एक ही मिवरत शब्द का एक स्वर में मैं मारूँगा और दूसरे में (त पर जोर देकर) मैं नहीं मारूँगा अर्थ हो जाता है।[4] आधुनिक भारतीय भाषाओं में बंगला और भोजपुरी आदि में यह कुछ-कुछ मिलता है।

बलात्मक स्वराघात का सम्बन्ध स्वतन्त्री से न होकर फफड़ों से है, और तेजी से वायु फेंकने पर बलात्मक उच्चारण होता है। इन लहरों की ऊँचाई बढ़ जाती है,

1. दे० डा० धीरेन्द्र बर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ 20।
2. महाभाष्य, पस्पशाह्निक।
3. दे० डा० सुनीतिकुमार चटर्जी : बंगाली लैंग्वेज, पृष्ठ 142।
4. भोलानाथ तिवारीः भाषा विज्ञान :पृष्ठ 184।

जो काइमोग्राफ पर देखी जा सकती है। तारापोरवाला के अनुसार अवेस्ता, लेटिन, आधु० ग्रीक, फारसी और अंग्रेजी आदि में बलात्मक स्वराघात की प्रचुरता से श्रोता के कानों में हथौड़े-सी चोट लगती है। अंग्रेजी में बलात्मक स्वराघात का निश्चित स्वरूप सामान्य शब्द कोषों में भी खड़ी-पड़ी लकीरों से दिखाया जाता है। हिन्दी में इस सम्बन्ध में इतनी स्पष्टता नहीं है। गुरु ने हिन्दी स्वाराघात के कुछ नियम दिए हैं :—(1) शब्द या शब्दांश के अन्त के ह्रस्व अ के लुप्त हो जाने पर इससे पूर्व के स्वर पर जोर पड़ता है, जैसे संबल में ब पर जोर पड़ता है, (2) इसी प्रकार संयुक्त व्यंजन के ऊपर भी जोर पड़ता है, जो छंद-शास्त्र में दो मात्राओं (दीर्घ) का हेतु बनता है, (3) सविसर्ग स्वर का उच्चारण भी उसी प्रकार जोर देकर होता है, (4) प्रेरणार्थक (कराना)[1] शब्दों में आ पर जोर रहता है, (5) नानार्थक शब्दों के साथ प्रयोग होने पर अन्तर स्वराघात से जाना जाता है, जैसे की (सम्बन्ध चिह्न) और की (क्रिया) में दूसरी पर जोर दिया जाता है, (6) कालिमा शब्द में का समबल लि निर्बल और मा सबल है। छंदशास्त्र के नियमों के अपवादभूत व्रज अवधी के कवित्त सवैये भी स्वराघात के आधार पर ह्रस्व दीर्घ किए जाते हैं। अवधेश के द्वारे, में क ह्रस्व हो गया है। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार अवधी में एकाक्षर शब्दों पर वाक्य में प्रयुक्त होने पर, दो, तीन या चार अक्षरों वाले शब्दों में दीर्घ पर या स्थान के कारण दीर्घ हो जाने पर अक्षर पर और दोनों के ह्रस्व या दीर्घ होने पर उपांत्य अक्षर पर स्वराघात (यह बलात्मक स्वराघात ही है) होता है।

व्यक्ति विशेष के लहजे के आधार पर एक रूपात्मक स्वराघात की कल्पना और की गई है। जिस प्रकार दो व्यक्तियों के मुख का रूप नहीं मिलता, उसी प्रकार उनके उच्चारण के प्रकार का रूप भी नहीं मिलता और इसी से हम पूर्वपरिचित आवाज तुरन्त पहचान लेते हैं। काइमोग्राफ पर स्वर लहरियों के इन अन्तरों को भी देखा जा सकता है, परन्तु इस आधार पर स्वराघात के उतने ही भेद हो जाएँगे, जितने दुनिया में आदमी हैं।

ध्वनियों के बहुत से परिवर्तन स्वराघात पर निर्भर हैं।[2] जैसे संस्कृत पितर के लिए गाथिक में फादर हो जाता है, पर भ्रातर के लिए ब्रोपर होता है। वर्नर तथा ग्रिम के नियम पूर्णतः स्वराघात पर ही आधारित हैं। पूर्ववर्ती स्वर पर स्वराघात न होने पर ही मूल प्, त् क् ब् द् ग् बनते हैं।

(विशेष दे० ग्रिमनियम, वर्नर नियम, ध्वनि नियम)।

स्वरावस्थिति—स्वरों के उच्चारण में जीभ की विशेष स्थितियों के उपयोग को स्वरावस्थिति या अक्षरावस्थिति कहते हैं। स्वरों के उच्चारण में कोई बाधा नहीं

1. दे० कामता प्रसाद गुरु : हिन्दी व्याकरण, पृष्ठ 41।
1. डा० पी० डी० गुणे : इंट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलोलौजी, पृष्ठ 47।

पड़ती न रगड़ ही होती है। अतः उनका वर्गीकरण जीभ की इन स्थितियों के आधार पर ही किया जाता है। पहले जीभ को तीन भागों में बाँटते हैं—अग्र, पश्च और मध्य। जीभ के इन तीन भागों के प्रयोग के आधार पर स्वरों के तीन भेद हो जाते हैं। दूसरी बात यह देखी जाती है कि जीभ के ये भाग कितना उठते हैं। जब जीभ अधिक-से-अधिक ऊपर उठती है, पर इतना नहीं कि श्वास को निकलने में रगड़ हो, तो मुख विवर बहुत संकरा या संवृत हो जाता है। जीभ के इससे कुछ कम उठने पर मुख विवर अर्द्धसंवृत रहता है। जीभ के कुछ कम उठने पर अर्द्धविवृत और कम-से-कम उठने पर वह विवृत रहता है। तीसरी बात यह देखी जाती है कि ओष्ठों की स्थिति कैसी है, उनके गोल रहने पर वृत्ताकार और अन्यथा अवृत्ताकार (दे० यथा०) स्वर पैदा होते हैं। चौथी बात यह है कि माँसपेशियों की दृढ़ता-शिथिलता के आधार पर दृढ़स्वर और शिथिल स्वर सुन पड़ते हैं।

विशेष दे० मूलस्वर, स्वर।

स्वरित—स्वरों का एक बाह्य प्रयत्न। उदात्त (दे० यथा स्थान) और अनुदात्त (दे० यथा०) स्वरों का एकत्र समाहार होने पर स्वरित स्वर होता है। दे० पाणिनि-सूत "समाहारे स्वरितः" 1/2/31। विशेष विवरण के लिए दे० सवर्ण।

स्वीकारवाद—भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि सृष्टि के आदि में कुछ मनुष्यों के समाज ने एकत्र होकर भावविशेष की अभिव्यक्ति के लिए कुछ प्रतीक या संकेत स्वीकार कर लिए। इसी सिद्धान्त को स्वीकारवाद कहते हैं। परन्तु भाषा के बिना विचार विनिमय कैसे हुआ, इस सामान्य प्रश्न ने ही इस कल्पना को धराशायी कर दिया है। इस सिद्धान्त में यदि कुछ सचाई है तो इतनी ही कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। (विशेष दे० भाषोत्पत्ति)।

ह

ह्—संस्कृत वैयाकरणों के मत से इसका उच्चारण स्थान कंठ, आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद्विवृत (या विवृत) और बाह्य प्रयत्न महाप्राण, संवार, नाद और घोष है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह स्वरयन्त्रमुखी, घोष, संघर्षी ध्वनि है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार इसके उच्चारण में जीभ, तालु अथवा होठों से सहायता नहीं ली जाती। हवा के वेग से संघर्ष (रगड़) के साथ निकलने पर इसका उच्चारण होता है, इसी से इसे संघर्षी ध्वनि कहते हैं। अन्यथा इस रगड़ के सिवा इसमें अ के ही समान मुखावयव रहते हैं। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार शब्द के अन्त में आने वाला ह् घोष रहता है, जैसे यह, वह। शब्द के आदि में आने वाले 'ह्' के घोष होने के विषय में सक्सेना और कादरी का मतभेद है। बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार शब्द के आदि और अन्त में ह् अघोष उच्चरित होता है, पर दो स्वरों के मध्य में (उदा० रहन, सहन) वह घोष होता है। घ, झ, ढ, ध और भ इन घोष महाप्राण व्यंजनों में घोष 'ह्' पाया जाता है, ऐसा डा० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है। अघोष ह् को ही विसर्ग या ह् कहते हैं।

.ह्—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिन्दी में विसर्ग का उच्चारण अघोष .ह् की भाँति होता है। विशेष दे० विसर्ग।

हंगल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 31 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

हंगसीन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 8 है। इसका एक नाम शाडो भी है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

हंजोग—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 5,626 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

हंरती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 557 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

हरियानी—बांगरू भाषा का एक नाम। विशेष दे० बांगरू।

भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 2 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

हलबी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 2,64,912 है, जिनमें 2,017 पूर्व भारत में और 2,62,895 मध्य भारत में रहते हैं।

हलियन—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

हाम्रोकुप—भारत की इस बोली या उपभाषा के, जिसका एक नाम थाडो भी है, बोलने वालों की संख्या 2,626 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

हाइपर बोरी—विश्व की उन वर्तमान अनिश्चित भाषाओं में से एक, जिनका किसी भाषा-परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। यह साइबेरिया के उत्तरी-पूर्वी भाग में और उसके आप-पास लेना नदी से सखालिन द्वीप तक के क्षेत्र में बोली जाती है। इस भाषा में साहित्य विशेष प्रौढ़ नहीं है।

हाड़ौती—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की कुल जनसंख्या 8,15,859 है और वह सभी पश्चिमोत्तर भारत में रहती है।

हाबूड़ी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 156 है। ये लोग भारत के उत्तर पूर्वी भाग में रहते हैं।

हिन्दी—डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में संसार के भाषा-समूहों में भारत-यूरोपीय कुल के भारत-ईरानी उपकुल में भारतीय-आर्यशाखा की आधुनिक भाषाओं में से एक मुख्य भाषा हिन्दी है। हिन्दी या हिन्दवी शब्द फारसी का है। इसका शब्दार्थ तो हिन्द से सम्बन्ध रखने वाला है, परन्तु प्रयोग में इसका अर्थ हिन्द की भाषा है, और व्यवहारतः यह अर्थ हिन्दी की किसी दूसरी भाषा का वाचक न होकर उत्तर भारत के मध्य भाग की वर्तमान साहित्यिक भाषा, उसकी बोलियों और उसके प्राचीन साहित्यिक रूपों के द्योतक के रूप में प्रयुक्त होता है।

हिन्दी के प्रदेश की सीमाएँ पश्चिम में जैसलमेर (राजस्थानी भाषा), उत्तर-पश्चिम में अंबाला (पंजाबी भाषा) उत्तर में शिमला से नेपाल के दक्षिणी पूर्वी भाग (पहाड़ी भाषाएं), पूर्व में भागलपुर (बिहारी भाषा) दक्षिण-पूर्व में रायपुर (उड़िया भाषा) और दक्षिण-पश्चिम में खंडवा (मराठी भाषा) से घिरी हुई हैं। इस प्रदेश की साहित्यिक भाषा हिन्दी कही जाती है। इसके दो रूप पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी (दे० यथा०) हैं। भाषा-शास्त्र में हिन्दी का प्रयोग उपर्युक्त भूखंड की अपेक्षा भी कुछ संकुचित अर्थ में होता है और राजस्थानी, पहाड़ी और बिहारी भाषाओं की बोलियों के क्षेत्र को अलग माना जाता है।

1954 में प्रकाशित जनगणना-पत्र में हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और पंजाबी के बोलने वालों की कुल संख्या 14,99,44,311 बताई गई है। इनमें पंजाबी के बोलने वाले लगभग सवा आठ लाख हैं।

हिन्दी ध्वनि समूह—आधुनिक हिन्दी ध्वनि समूह में अधिकांश ध्वनियाँ तो परम्परागत भारतीय आर्यभाषा ध्वनि समूह से आई हैं, परन्तु कुछ आधुनिक काल में भी विकसित हुई हैं। कुछ विदेशी ध्वनियाँ अरबी, फारसी और अंग्रेजी के सम्पर्क से भी बढ़ी हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार साहित्यिक हिन्दी में निम्न मूल ध्वनियाँ प्रचलित हैं:

प्राचीन ध्वनियाँ—

अ आ इ ई उ ऊ ए ओ
क् ख् ग् घ् ङ्
च् छ् ज् झ्
ट् ठ् ड् ढ् ण
त् थ् द् ध् न्
प् फ् ब् भ् म्
य् र् ल् व्
श् स् ह्

नई विकसित ध्वनियाँ—

ऐ (अ ए) औ (अ ओ) ड़्, ढ़्, व़्, न्ह्, म्ह्

अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियाँ—

क़् ख़् ग़् ज़् फ़्

अंग्रेजी के तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियाँ—

ऑ

ऋ, ष्, ञ् यद्यपि संस्कृत तत्सम शब्दों में लिखे ही जाते हैं, परन्तु वे अपने शुद्ध रूप में उच्चरित नहीं होते, ऋण (रिण), कृपा (क्रिपा), पोषक (पोशक), चञ्चल (चन्चल)। अतः हिन्दी ध्वनि समूह में इनका अभाव मानना चाहिए। इसी प्रकार हलंत ण् का उच्चारण भी न् जैसा होता है जैसे घण्टा (घन्टा), पण्डित (पन्डित) आदि, किन्तु संस्कृत तत्सम शब्दों में वह यथापूर्व चलता है। संस्कृत क्ष (क्ष) और ज्ञ (ज्ञ) अब हिन्दी में छ और ग्यं की भाँति उच्चारित होते हैं।

उक्त हिन्दी की ध्वनियों के अतिरिक्त हिन्दी की बोलियों में कुछ विशेष ध्वनियाँ पाई जाती हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार साहित्यिक हिन्दी तथा बोलियों में व्यवहृत ध्वनियाँ कोष्ठक में दी गई हैं। इन सबका विवेचन यथास्थान देखा जा सकता है :

(1) मूलस्वर : अ, आ, ऑ, (ओ̆), (ओ̆), (ओ), ओ, उ, (उ़), अ, इ, ई, (इ़), ए, (ए̤) (ए̤), (एँ), (एँ), (अ̍)।

इन मूलस्वरों के अनुनासिक और संयुक्त रूप भी पाए जाते हैं।

(2) स्पर्श : क़्, क्, ख्, ग्, घ्
ट्, ठ्, ड्, ढ्
त्, थ्, द्, ध्
प्, फ्, ब्, भ्

(3) स्पर्श संघर्षी : च्, छ्, ज्, झ्

(4) अनुनासिक : ङ् (ञ्), ण, न्, न्ह्, म्, म्ह्

(5) पार्श्विक : ल्, ल्ह्
(6) लुंठित : र् (र् ह्)
(7) उत्क्षिप्त : ड़्, ढ़्
(8) संघर्षी : ह्, ख़्, ग़, श्, स्, ज़्, फ़्, व
(9) अर्द्धस्वर : य्, व्

इन सबका विवेचन यथास्थान देखिए।

हिंदको—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

हिन्दुस्तानी—साहित्यिक हिन्दी और उर्दू के बीच के बोलचाल के रूप को यह नाम यूरोपीय लोगों ने दिया है। यद्यपि इसमें दोनों ओर के कठिन (अरबी फारसी या संस्कृत) शब्दों का अत्यधिक प्रयोग नहीं होता, तथापि इसका झुकाव उर्दू की ही ओर रहता है। इस भाषा में साहित्यिक प्रयोग भी इंशाअल्लाखां (रानी केतकी की कहानी, और हरि औध (ठेठ हिन्दी का ठाठ, बोलचाल) आदि द्वारा किये गए, परन्तु ये प्रयास सफल न हो सके।

हिट्टाइट—विश्व की उन अनिश्चित और प्राचीन भाषाओं में से एक, जिनका किसी भाषा-परिवार में वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। यह काला सागर के दक्षिण कप्पदोसिया नामक प्रदेश में बोली जाती थी। इसमें कई बोलियाँ थीं। इन पर भारोपीय और सैमेटिक दोनों परिवारों की कुछ छाप है। इस भाषा के कुछ कीलाक्षर लेख और ग्रंथ 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में मिले हैं, जिन्हें बोगोजकोई के लेख कहा जाता है। कुछ विद्वान् जैसे ह्राजनी इसे भारोपीय परिवार के केंटुम् वर्ग की एक भाषा मानते हैं। यद्यपि सइस आदि इसे सैमेटिक परिवार की भाषा बताते हैं। इसकी खोज ने भारोपीय मूल भाषा पर भी प्रकाश डाला है।

हीबो—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

हुंगखोल—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 1,973 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

हेलवा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 38 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

हेलेनिक—भारोपीय परिवार के केंटुम् वर्ग की एक शाखा। इसे ग्रीक शाखा भी कहा जाता है। इसमें ईसा से लगभग 1,000 वर्ष पूर्व की होमर की प्रसिद्ध रचनाएँ इलियड और ओडिसी मिलती हैं, जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसके बाद भी शिलालेख आदि मिलते हैं। 500 ई० पूर्व के लगभग की एस्काइलस की भी रचनाएँ हैं। मंगलदेव शास्त्री के शब्दों में यूरोप की समस्त भाषाओं में ग्रीक का भारत-ईरानी भाषा वर्ग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वैदिक संस्कृत और ग्रीक के प्राचीन रूपों में संगीतात्मक स्वाराघात था। ग्रीक में मूल भाषा के स्वर भी बहुत कुछ

सुरक्षित हैं। बल्कि संस्कृत से भी अधिक हैं। पर संस्कृत जितनी व्यंजना सम्पत्ति ग्रीक को न मिली। संस्कृत में संज्ञा-सर्वनामों के रूप अधिक हैं, तो ग्रीक में अव्यय और क्रिया आदि के। संस्कृत के परस्मैपद और आत्मनेपद की भाँति ग्रीक में एक्टिव और मिडिल वायस होते हैं। दोनों में द्विवचन पाया जाता है। दोनों में निपातों और समासों की भी प्रचुरता है।

ग्रीक शाखा को पाँच वर्गों में विभाजित किया जाता है: डोरिक, एओलिक, आयोनिक-एटिक, उत्तरी पश्चिमी और आर्केडियन। डोरिक में लेकानियन, मैसेनियन, कारिंथियन, मेगारिन, कीटन आदि आती हैं। एओलिक में उत्तरी 'थेसालियन', एओलियन, बोइओटिअन आदि आती हैं। आयोनिक-एटिक भी यही दो भाषाएँ हैं। उत्तरी पश्चिमी में फोक्सिन, लोक्रिसन, एलियन आदि हैं। आर्केडियन अलग वर्ग है।

होमर ने आयोनिक में काव्य रचना की थी। इसका मध्यकालीन रूप आर्कीलोकस, मिमनर्मस आदि कवियों में मिलता है और अन्तिम रूप हेरोडोटस की रचना में। बाद में एटिका के प्रधान नगर एथेन्स की राजनीतिक प्रधानता के कारण एटिक ग्रीक गद्य और खंड वाक्यों को छोड़ पद्य की भी प्रधान भाषा बन गई और एस्काइलस सोफोक्लीज, प्लेटो, अरस्तू आदि ने इसी में रचना की। उसी से कोइने (सर्वसाधारण की भाषा) विकसित हुई। इसी में बाइबिल का न्यू टेस्टामेंट लिखा गया। बिजैंटाइन के समय यह खूब विकसित हुई थी।

डोरिक ग्रीक स्पार्टावासियों की भाषा थी। पीछे ये लोग यूनान के दक्षिणी प्रायद्वीप में आकर बस गए। पिंडर कवि के गीत (ओड्स) कुछ खंडवाक्य और दुखान्त नाटकों के कोरस इसके प्रमुख साहित्य हैं।

हैमेटिक परिवार—विश्व की भाषाओं के अफ्रीका खंड का एक प्रमुख परिवार। यह उत्तरी अफ्रीका में फैला हुआ है। अफ्रीका के अन्य भागों में इसके बोलने वाले पहुँच गए हैं। हैमेटिक नामकरण का कारण इंजील में नौह के दूसरे पुत्र हैम को अफ्रीका का आदि पुरुष बताया जाता है। इस परिवार की कई भाषाएँ लुप्त हो गई हैं और कुछ सैमेटिक परिवार में मिल गई हैं। कुछ वर्तमान बोलियाँ भी अन्य परिवारों से प्रभावित हैं, जैसे होसा, जो मध्य अफ्रीका की राष्ट्रभाषा है, सूडानी परिवार में ही गिनी जाने लगी है। हैमेटिक परिवार की कुछ भाषाओं में धार्मिक साहित्य तथा पुराने शिलालेख मिलते हैं।

इस परिवार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। क्रियाओं में उपसर्ग-प्रत्यय दोनों लगते हैं, संज्ञा में केवल प्रत्यय। स्वर-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन भी हो जाता है। जोर देने के लिए वीप्सा या पुनरुक्ति का उपयोग किया जाता है जैसे लब का अर्थ मोड़ना और लबलब का बार-बार मोड़ना। काल का बोध क्रिया से नहीं, अन्य सहायक शब्दों से होता है। लिंग भेद अव्यवस्थित है और सामान्यतः पुरुष और स्त्री-वाचक नहीं है बल्कि बड़ी-सबल चीजें पुल्लिंग और कोमल प्यार करने योग्य वस्तुएँ स्त्रीलिंग मानी जाती हैं। वचन भी अव्यवस्थित हैं, और बहुवचन बनाने के कई तरीके हैं,

जिनमें समूहात्मक और असमूहात्मक के भेद भी हैं। दूसरी ओर छोटे-छोटे कीड़े आदि स्वतः बहुवचन होते हैं और उन्हें एकवचन करने के लिए प्रत्यय लगाना होता है। सबसे बड़ी विशेषता संज्ञा के वचन के परिवर्तन पर लिंग का परिवर्तन या ध्रुवाभिमुख-नियम (दे० यथा०) है। जैसे माता स्त्रीलिंग पर माताएँ पुल्लिंग। इस परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट योगात्मक हैं।

इस परिवार की कई सौ भाषाओं को निम्न प्रमुख वर्गों में बांटा गया है। मिस्र वर्ग (प्राचीन मिस्री, काप्टिक आदि) एथिओपिक वर्ग (खामीर, गल्ला, बेदौय आदि), लिबियन वर्ग (तामाशेक, शिल्हा आदि) मिश्रित वर्ग (नम, मसाइ आदि) और फुला वर्ग।

हैरंबा—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 9,301 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

हैलाम—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 12,230 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

हो—भारत की इस भाषा या उपभाषा को बोलने वालों की कुल जनसंख्या 5,99,876 है, जो सारी की सारी पूर्व भारत में रहती है।

होतानी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या केवल 1 है। यह व्यक्ति भारत के मध्य भाग में रहता है।

होलिया—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 2,084 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं। गोलारी और होलिया इसके दो नाम हैं।

होशंगाबादी—भारत की इस बोली या उपभाषा के बोलने वालों की संख्या 133 है। ये लोग भारत के मध्य भाग में रहते हैं।

ह्रस्व—एक मात्रा के उच्चारण जितना समय लेने वाले स्वर को ह्रस्व कहते हैं। अ, इ, उ, ऋ ये ह्रस्व स्वर हैं। दे० पाणिनिसूत्र "ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुत: 1/2/26।

ह्राओकुप—भारत की इस बोली या उपभाषा के जिसका एक नाम थाडो भी है, बोलने वालों की संख्या 2,626 है। ये लोग भारत के पूर्वी भाग में रहते हैं।

परिशिष्ट : एक

भाषाशास्त्र के अंग्रेज़ी शब्द तथा ग्रंथ में प्रयुक्त उनके समकक्ष हिन्दी शब्द या मूल संस्कृत शब्द

Ablaut अपश्रुति, अक्षरावस्थान
Absence of vibration अघोष
Accent स्वराघात
Acute उदात्त
Affix, Suffix प्रत्यय
Agglutinating, agglutinative योगात्मक, प्रत्यय-प्रधान
Agglutination संयोग
Agreement Theory स्वीकारवाद
Alphabet वर्णमाला
Alveolar वर्त्स्य
Analogy औपम्य, सादृश्य
Analytic वियोगात्मक, व्यवहित
Anaptyxis मध्यस्वरागम
Anthropology मानव विज्ञान
Apheresis आदि अक्षर लोप
Aphesis आदि स्वर लोप
Apocope अन्त्य अक्षर लोप
Apophony अपश्रुति, अक्षरावस्थान, अक्षरश्रेणीकरण
Archaeology पुरातत्व
Archaic आर्ष
Article उपपद
Articulation उच्चारण, व्यक्त करना
Aspirated महाप्राण
Aspiration महाप्राणीकरण
Assibilation ऊष्मीकरण
Assimilation सावर्ण्य, सारूप्य, समीकरण, अनुरूपता
Back of the tongue पश्चजिह्वा, जिह्वा पश्च
Bilabial द्व्योष्ठ्य
Blade of the tongue जिह्वाग्र
Bow-wow Theory अनुकरण-मूलकतावाद
Breathed अघोष
Breath group श्वास वर्ग
Cardinal vowel प्रधान स्वर
Central vowel मध्य स्वर
Cerebral मूर्धन्य
Cerebralization मूर्धन्यभाव
Cerebrum मूर्धा
Change विकार, परिवर्त्तन
Circumflex स्वरित
Classical श्रेण्य
Classification वर्गीकरण
Click क्लिक
Close संवृत
Cognate सजातीय
Coming आगम

Comparative तुलनात्मक
Complex जटिल
Contact स्पर्श
Conjugation सन्धि
Consonant व्यंजन, स्पर्श
Contract पार्श्ववर्ती
Contraction संकोच
Cuniform कीलाक्षर
De-aspiration अल्पप्राणीकरण
Definition लक्षण, परिभाषा
Dental दन्त्य
Descending of meaning अर्थापकर्ष
Devocalization अघोषीकरण
Dialect बोली, उपभाषा
Ding-deng Theory अनुरणन-मूलकतावाद, डिंगडैंगवाद
Diphthong सन्ध्यक्षर, संयुक्ताक्षर
Durative or Spirant घर्ष, संघर्षी
Divine origin दैवी उत्पत्ति
Echo प्रतिध्वनि
Elision लोप
Emphatic सबल, बलवान्
Epenthesis अपिनिहिति, समस्वरागम
Epiglottis अभिकाकल, स्वरयन्त्र-मुखावरण
Espiranto एस्पिरेंतो
Ethnology वंशान्वय शास्त्र
Etymology व्युत्पत्ति शास्त्र
Evolution theory विकासवाद
Exception अपवाद
Explosion स्फोट
False analogy मिथ्या सादृश्य
False palate कृत्रिम तालु
Family of language भाषा परिवार
First sound shifting प्रथम वर्ण परिवर्त्तन
Flapped उत्क्षिप्त
Formal derivation अलौकिक व्युत्पत्ति
Fricate घर्ष, संघर्षी
Friction घर्षण
Front of the tongue जिह्वाग्र, जिह्वोपाग्र
Generalization साधारणीकरण
Glide श्रुति
Glottis स्वर यन्त्र मुख, काकल
Gradation अवस्थान
Grammar व्याकरण
Grassman's Law ग्रासमान नियम
Grave अनुदात्त
Grim's Law ग्रिम नियम
Guttural कंठ्य
Half close अर्द्ध संवृत
Half open अर्द्ध विवृत
Haplology समाक्षर लोप
Hard palate कठोर तालु
Hiatus विवृति
Holophrastic अव्यक्त योगात्मक
Ideography भावलिपि
Imitation अनुकरण
Incontract दूरवर्ती
Incorporating प्रश्लिष्ट योगात्मक
Increase, increment वृद्धि
Indeclinable अव्यय
Indo-European भारोपीय
Infix मध्यविन्यस्त प्रत्यय, अन्तः प्रत्यय
Inflix agglutinative मध्य योगात्मक
Inflecting श्लिष्ट योगात्मक, विभक्ति प्रधान

Inflexion विभक्ति
Inner आभ्यन्तर
Inorganic निरवयव, निरिन्द्रिय, निपात प्रधान
Inscription उत्कीर्ण लेख
Insertion (addition) आगम
Internal inflexional अन्तर्मुखीश्लिष्ट
Interjectional विस्मयादिबोधक
Isolating अयोगात्मक, व्यास प्रधान
Knot writing ग्रंथिलिपि, रज्जुलिपि, सूत्र-लिपि
Labial ओष्ठ्य
Language भाषा
Larynx स्वर यन्त्र, कंठपिटक
Lateral पार्श्विक
Law of palatization तालव्यभाव का नियम
Law of polarization ध्रुवाभिमुख नियम
Lax शिथिल स्वर
Letter वर्ण, अक्षर
Linguistics भाषा शास्त्र, भाषा विज्ञान
Lingua franca राष्ट्रभाषा
Lip ओष्ठ
Liquid sounds द्रव वर्ण
Long दीर्घ
Loss नाश
Malapropism मैलाप्रापिज्म
Metathesis वर्ण विपर्यय
Mixed मिश्र
Monosyllabic एकाच्, एकाक्षर
Monosynthetic एक संहित
Morpheme सम्बन्ध तत्व
Morphological आकृति मूलक
Morphology रूप विचार
Musical accent संगीतात्मक स्वराघात
Mute स्पर्श
Mutation अभिश्रुति
Mutual assimilation परस्पर व्यंजन समीकरण
Nasal अनुनासिक
Nasalization अनुनासिकीकरण
Neutral vowel उदासीन स्वर
Numerals अंक
Off-glide परश्रुति
On-glide पूर्वश्रुति
Open विवृत
Oral मौखिक
Origin of Language भाषोत्पत्ति
Original Vowel मूल स्वर, समानाक्षर
Palatal तालव्य
Palatalization तालव्य भाव
Palatal Law तालव्य नियम
Palate तालु
Particle निपात
Partly incorporative आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक
Patois बोली
Pharynx कंठबिल, कंठ मार्ग
Phoneme ध्वनितत्व, ध्वनिश्रेणी, ध्वनि ग्राम
Phonetic change ध्वनि परिवर्त्तन
Phonetic contamination ध्वनि-संमिश्रण
Phonetic Law ध्वनि नियम
Phonetics ध्वनि विज्ञान
Phonogram ध्वनिलिपि
Phonology ध्वनि विचार
Picture Writing चित्र लिपि
Pitch सुर, स्वर

Pitch accent संगीतात्मक स्वराघात
Place of articulation उच्चारण स्थान
Poly-syllabic अनेकाक्षर
Poly-synthetic बहुसंहित, बहु-संश्लेषात्मक
Pooh Pooh theory मनोभावाभिव्यक्तिवाद
Popular Etymology भ्रामक व्युत्पत्ति, लौकिक व्युत्पत्ति
Prefix agglutinating पुर: प्रत्यय प्रधान, पूर्वयोगात्मक
Prefix suffix agglutinating पूर्वान्त योगात्मक
Preposition पूर्वसर्ग
Progressive assimilation पूर्वगामी समीकरण
Progressive dissimilation पूर्वगामी विषमीकरण
Prothesis आदि स्वरागम, पूर्वहिति, पुरोहिति, प्रागुपजन
Regressive assimilation पश्चगामी समीकरण
Regressive dissimilation पश्चगामी विषमीकरण
Retorflex मूर्धन्य, पश्चोन्मुख
Rolled लुंठित
Root of the teeth दन्तमूल
Root of the tongue जिह्वामूल
Root theory धातु सिद्धान्त
Rounded वृत्ताकार
Science of Language भाषा विज्ञान
Script लिपि
Secondary Sound shift द्वितीय वर्ण परिवर्त्तन
Semanteme अर्थ तत्त्व
Semantic change अर्थ परिवर्त्तन
Semantics अर्थ विचार
Semi vowel अर्द्ध स्वर
Shift of emphasis बल का अपसरण
Sibilant ऊष्म
Slang बोली
Soft palate कोमल तालु
Sonant स्वनंत
Sound ध्वनि
Sound Symbol ध्वनि संकेत
Spelling वर्ण विन्यास
Speech Organ भाषणावयव
Speech Sound भाषण ध्वनि
Spirant सोष्म
Spoonerism शब्दांश विपर्यय
Standard language आदर्श भाषा
Stem प्रकृति
Stop स्पर्श
Stress बल
Stress accent बलात्मक स्वराघात
Stong (vowel) बली (स्वर)
Substitute आदेश
Substratum theory आधार सिद्धान्त
Suffix प्रत्यय
Suffix agglutinating अन्त योगात्मक
Syllable अक्षर
Syncope मध्य स्वरलोप
Syntactical आकृतिमूलक, वाक्यमूलक
Syntax वाक्य विचार
Synthesis संहिति, संश्लेष
Technical पारिभाषिक
Teeth दन्त
Teeth ridge वर्त्स

Tip of the tongue जिह्वा की नोक, जिह्वानीक
Theory of Onomatopoeia अनुकरणमूलकतावाद
Thread writing सूत्र लिपि, रज्जु लिपि, ग्रन्थि लिपि
Throat गला
Tone सुर
Tongue जिह्वा, जीभ
Transcription लिप्यन्तर
Tenues अघोष
Umlaut अभिश्रुति
Un-aspirated अल्पप्राण
Unrounded अवृत्ताकार
Un-voiced अघोष
Uvula कौआ
Uvular कंठ्य
Velar कंठ्य
Verner's Law वर्नर नियम
Vocabulary शब्द समूह
Vocalization घोषीकरण
Voice नाद
Voiced घोष
Voiceless अघोष
Vowel स्वर
Vowel gradation अक्षरावस्थान, अपश्रुति
Vowel harmony स्वर-अनुरूपता
Vowel part स्वर भक्ति
Vowel position अक्षरावस्थिति, स्वरावस्थिति
Vowel mutation अभिश्रुति
Vowel variation स्वर परिवर्त्तन, स्वर भेद
Whispered जपित, उपांशुध्वनि
Wind pipe श्वास नलिका, श्वास मार्ग
Word शब्द
Written लिखित
Yo-he-ho theory योहेहोवाद, श्रमपरिहरण सिद्धान्त
Zero grade शून्य श्रेणी

परिशिष्ट : दो

प्रयुक्त हिन्दी शब्द और उनके समकक्ष अंग्रेज़ी शब्द

अंक numerals
अंतयोगात्मक suffix agglutinating
अंतः प्रत्यय infix
अंतर्मुखी श्लिष्ट internal inflexional
अंत्य अक्षर लोप apocone
अक्षर letter, syllable
अक्षरश्रेणीकरण apophopy
अक्षरावस्थान ablaut, apophony, vowel gradation
अक्षरावस्थिति vowel position
अघोष un-voiced, voiceless, absence of vibration, breathed tenues
अघोषीकरण de-vocalization
अनुकरण imitation
अनुकरणमूलकतावाद bow-wow theory, theory of onomatopoeia
अनुदात्त grave
अनुनासिक nasal
अनुनासिकीकरण nasalization
अनुरणनमूलकतावाद ding-dong theory
अनुरूपता assimilation
अनेकाक्षर polysyllabic
अपवाद exception
अपश्रुति vowel gradation, ablaut, apophony
अपिनिहिति epenthesis
अभिकाकल epiglottis
अभिश्रुति mutation, umlaut, vowel mutation
अयोगात्मक isolating
अर्थतत्त्व sementeme
अर्थपरिवर्तन semantic change
अर्थविचार semantics
अर्थापकर्ष descending of meaning
अर्द्धविवृत half open
अर्द्धसंवृत half close
अर्द्धस्वर semi-vowel
अलौकिक व्युत्पत्ति formal **derivation**
अल्पप्राण unaspirated
अल्पप्राणीकरण de-aspiration
अवस्थान gradation
अवृत्ताकार unrounded
अव्यक्तयोगात्मक holophrastic
अव्यय indeclinable
आंशिक प्रश्लिष्टयोगात्मक **partly** agglutinating
आकृतिमूलक syntactical, morphological
आगम coming, insertion, addition
आदर्श भाषा standard language
आदि अक्षर लोप apheresis

आदि स्वर लोप aphesis
आदि स्वरागम prothesis
आदेश substitute
आधार सिद्धान्त substratum theory
आभ्यन्तर inner
आर्ष archaic
उच्चारण articulation, pronunciation
उच्चारण स्थान place of articulation
उत्कीर्णलेख inscription
उत्क्षिप्त flapped
उदात्त acute
उदासीन स्वर neutral vowel
उपपद article
उपभाषा dialect
उपांशुध्वनि whispered
ऊष्म sibilant
ऊष्मीकरण assibilation
एकसंहित monosynthetic
एकाक्षर monosyllabic
एकाच् monosyllabic
एस्पिरेंतो Espiranto
ओष्ठ lip
ओष्ठ्य labial
औपम्य analogy
कंठपिठक larynx
कंठ बिल / कंठ मार्ग pharynx
कंठ्य guttural, velar, uvular
कठोर तालु hard palate
काकल glottis
कीलाक्षर cuniform
कृत्रिम तालु false palate
कोमल तालु soft palate

कौआ uvula
क्लिक click
गला throat
ग्रन्थिलिपि knot-writing, thread writing
ग्रासमान नियम Grassman's law
ग्रिम नियम Grim's law
घर्ष fricate, durative, aspirant
घर्षण friction
घोष voiced
घोषीकरण vocalization
चित्र लिपि picture writing
जटिल complex
जपित whispered
जिह्वा tongue
जिह्वाग्र blade of the tongue, front of the tongue
जिह्वानीक (जीभ की नोक) tip of the tongue
जिह्वापश्च back of the tongue
जिह्वामूल root of the tongue
जिह्वोपाग्र front of the tongue
जीभ tongue
डिंगडैंगवाद ding-deng theory
तालव्य palatal
तालव्यभाव palatization
तालव्यभाव नियम Law of palatization
तालु palate
तुलनात्मक comparative
दंतमूल root of the teeth
दंत्य dental
दीर्घ long
दूरवर्ती incontract
दैवी उत्पत्ति divine theory

द्रववर्ण liquid sounds
द्वितीय वर्ण परिवर्तन secondary sound shift
द्व्योष्ठ्य bilabial
धातु सिद्धान्त root theory
ध्रुवाभिमुख नियम law of polarization
ध्वनि sound
ध्वनिग्राम phoneme
ध्वनितत्त्व phoneme
ध्वनिनियम phonetic law
ध्वनिपरिवर्तन phonetic change
ध्वनिलिपि phonogram
ध्वनिविचार phonology
ध्वनिविज्ञान phonetics
ध्वनिश्रेणी phoneme
ध्वनिसंकेत sound symbol
ध्वनिसंमिश्रण phonetic contamination
नाद voice
नाश loss
निपात particle
निपात प्रधान inorganic
निरवयव inorganic
निरिन्द्रिय inorganic
परस्पर व्यंजनसमीकरण mutual assimilation
परश्रुति off-glide
परिभाषा definition
परिवर्तन change
पश्चगामी विषमीकरण regressive dissimilation
पश्चगामी समीकरण regressive assimilation
पश्चजिह्वा back of the tongue
पश्चोन्मुख ratio flex
पार्श्ववर्ती contract
पार्श्विक lateral
प्रागुपजन prothesis
पुरातत्व archeology
पुरोहिति prothesis
पुरः प्रत्यय प्रधान prefix agglutinating
पूर्वगामी विषमीकरण progressive dissimilation
पूर्वगामी समीकरण progressive assimilation
पूर्वयोगात्मक prefix agglutinating
पूर्वश्रुति on-glide
पूर्वसर्ग preposition
पूर्वहिति prothesis
पूर्वान्त योगात्मक prefix suffix agglutinating
प्रकृति stem
प्रतिध्वनि echo
प्रत्यय affix, suffix
प्रत्यय प्रधान agglutinating, agglutinative
प्रथम वर्ण परिवर्तन first sound shifting
प्रधान स्वर cardinal vowels
प्रश्लिष्ट योगात्मक incorporating
बल stress
बल का अपसरण shift of emphasis
बलात्मक स्वराघात stress accent
बली (स्वर) strong (vowel)
बहुसंश्लेषणात्मक } poly-synthetic
बहुसंहित } poly-synthetic
बोली dialect, patois, slang
भारोपीय Indo-European

भावलिपि ideography
भाषण ध्वनि speech sound
भाषणावयव speech organ
भाषा language
भाषा परिवार family of language
भाषा विज्ञान } linguistics, science
भाषाशास्त्र } of language
भाषोत्पत्ति origin of language
भ्रामक व्युत्पति popular etymology
मध्ययोगात्मक infix agglutinative
मध्य स्वर central vowels
मध्यस्वरलोप syncope
मध्यस्वरागम anaptyxis
मनोभावाभिव्यक्तिवाद pooh pooh theory
महाप्राण aspirated
महाप्राणीकरण aspiration
मानवविज्ञान anthropology
मिथ्या सादृश्य false analogy
मिश्र mixed
मूर्धन्य cerebral
मूर्धन्यभाव cerebralization
मूर्धा cerebrum
मूलस्वर original vowel
मैलाप्रोपिज़्म malapropism
मौखिक oral
योगात्मक agglutinating, agglutinative
योहेहोवाद Yo-he-ho theory
रज्जुलिपि knot-writing, thread writing
राष्ट्रभाषा lingua franca
रूपविचार morphology
लक्षण definitic~
लिपि script
लिप्यन्तर transcription
लुंठित rolled
लोप elision
लौकिक व्युत्पत्ति popular etymology
वंशान्वय शास्त्र Ethnology
वर्गीकरण elassification
वर्ण letter
वर्णमाला alphabet
वर्णविन्यास spelling
वर्णविपर्यय metathesis
वर्त्स teeth ridge
वर्त्स्य alveolar
वर्नर नियम Verner's law
वाक्य मूलक syntatical
वाक्य विचार syntax
विकार change
विकासवाद evolution theory
विभक्ति inflexion
विभक्ति प्रधान inflecting
वियोगात्मक analytic
विवृत open
विवृति hiatus
विस्मयादिबोधक interjectional
वृत्ताकार rounded
वृद्धि increase, increment
व्यंजन consonant
व्यवहित analytic
व्याकरण grammar
व्यासप्रधान isolating
व्युत्पत्ति etymology
शब्द word
शब्दसमूह vocabulary
शब्दांश विपर्यय spoonerism
शिथिल स्वर lax

शून्य श्रेणी zero grade
श्रमपरिहरण सिद्धान्त yo-he-ho theory
श्रुति glide
श्रेण्य classical
श्लिष्ट योगात्मक inflecting
श्वासनलिका } windpipe
श्वासमार्ग }
श्वासवर्ग breath group
संकोच contraction
संगीतात्मक स्वराघात musical accent, pitch accent
संघर्षी durative, aspirant, fricate
संधि conjugation
संध्यक्षर diphthong
संबंधतत्व morpheme
संयुक्ताक्षर diphthong
संयोग agglutination
संवृत close
संश्लेष } synthesis
संहिति }
सजातीय cognate
सबल emphatic
समस्वरागम epenthesis
समाक्षर लोप haplology
समीकरण assimilation
सादृश्य analogy
साधारणीकरण generalization
सारूप्य assimilation
सावर्ण्य assimilation
सुर pitch
सूत्रलिपि knot-writing
सोष्म spirant
स्पर्श contact, consonant, mute, stop
स्फोट explosion
स्वनन sonant
स्वर pitch
स्वर vowel
स्वरअनुरूपता vowel harmony
स्वर परिवर्तन vowel variation
स्वरभक्ति vowel part
स्वर भेद vowel variation
स्वरयंत्र larynx
स्वरयंत्रमुख glottis
स्वराघात accent
स्वरावस्थिति vowel position
स्वरित circumflex
स्वीकारवाद agreement theory

परिशिष्ट : तीन

ग्रन्थ सारणी*

आनन्द वर्धन	—	ध्वन्यालोक
आग्डेन, सी० के० और आई० आई० रिचर्ड्स	—	मीनिंग आफ मीनिंग
ऐतरेय ब्राह्मण		
एडमन्ड्स	—	इन्ट्रोडक्शन टु कम्पैरेटिव फिलौलौजी
एरिक पार्टिज	—	वर्ल्ड आफ वर्ड्स
ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द	—	भारतीय प्राचीन लिपिमाला
कपिलदेव द्विवेदी	—	अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन
काच्चायन	—	पाली व्याकरण
काडवेल	—	कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ ड्राविडियन लैंग्वेजेज़
कादरी	—	हिन्दुस्तानी फोनेटिक्स
कामताप्रसाद गुरु	—	हिन्दी व्याकरण
कीथ, ए० बी०	—	हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर
कुमारिल भट्ट	—	श्लोक वार्तिक
क्रोचे, बेनेडेटे	—	ऐस्थेटिक्स
कौंडदेव	—	वैयाकरण भूषण
गार्डिनर, ए० एच०	—	स्पीच एण्ड लैंग्वेज
गुणे, पी० डी०	—	इन्ट्रोडक्शन टु फिलौलौजी इन्ट्रोडक्शन टु भविष्यत्तकथा
ग्रियर्सन, जी० ए०	—	लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया
चक्रवर्ती, पी० सी०	—	लिंग्विस्टिक स्पेकुलेशन्स आफ इण्डियन ग्रैमेरियन्स फिलासफी आफ ग्रामर

*यह आवश्यक नहीं कि लेखक ने इनमें से प्रत्येक ग्रन्थ का उपयोग किया हो। कुछ का उपयोग तो स्पष्ट ही अप्रत्यक्ष और गतानुगतिक रहा है। यह भी सम्भव है कुछ उल्लिखित ग्रन्थों के नाम इस सूची में से छूट भी गये हों।

चटर्जी, सुनीति कुमार — औरिजन एण्ड डवलपमेंट ऑफ बंगाली ग्रामर
बंगाली फोनेटिक रीडर
इण्डो आर्यन एण्ड हिन्दी
जैक्सन, ए० — एवस्तन ग्रामर
जैस्पर्सन, ओटो — एसेंसियल्स ऑफ ग्रामर
लैंग्वेज—इट्स नेचर, डवलपमेंट एण्ड ओरिजिन
टकर, एफ० जी० — इन्ट्रोडक्शन टु नेचुरल हिस्ट्री ऑफ लैंग्वेज
डैलब्रुक — कम्पैरेटिव सिंटेक्स
तारापोरवाला, आई०जे०एस० — एलीमेंट्स ऑफ दि साइंस आफ लैंग्वेज
दिवेतिया, एन० बी० — गुजराती लैंग्वेज एण्ड लिट्रेचर
दुनीचन्द — पंजाबी भाषा विज्ञान
धीरेन्द्र वर्मा — हिन्दी भाषा का इतिहास
नलिनी मोहन सान्याल — भाषा विज्ञान
पतंजलि — महाभाष्य
पाणिनि — अष्टाध्यायी
पाणिनीय शिक्षा
पौट — एटिमोलोजिकल इन्वेस्टीगेशन्स
पौल, एच० — प्रिंसिपल्स आफ दि हिस्ट्री आफ लैंग्वेज
(स्ट्रांग द्वारा रूपांतरित)
बाप, फ्रान्त्ज — कम्पैरेटिव ग्रामर
बेलवेलकर, एस० के० — सिस्टम्स आफ ग्रामर
ब्रील — ऐसे दि सीमेंतीक
ब्लूमफील्ड — लैंग्वेज
भण्डारकर, आर० जी० — विल्सन फिलोलोजिकल लैक्चर्स
भट्टोजिदीक्षित — सिद्धान्त कौमुदी
भर्तृहरि — वाक्यपदीय
भोलानाथ तिवारी — भाषा विज्ञान
मंगलदेव शास्त्री — भाषा विज्ञान
मनुस्मृति
मैकडानल, ए० ए० — वैदिक ग्रामर
मैक्समूलर — साइंस आफ लैंग्वेज
लैक्चर्स ऑन साइंस आफ लैंग्वेज (दो जिल्दों में)
राजवाडे — निरुक्त
राजेन्द्र द्विवेदी — साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश
रुडोल्फ रौथ — इन्ट्रोडक्शन टु निरुक्त

लक्ष्मणस्वरूप — इन्ट्रोडक्शन टु निरुक्त
वररुचि — प्राकृत प्रकाश
वेन्द्रिये — लैंग्वेज (अंग्रेजी अनुवाद)
विश्वनाथ — साहित्य दर्पण
विश्वबन्धु — इन्ट्रोडक्शन टु अथर्व प्रातिशाख्य
श्यामसुन्दर दास — भाषा विज्ञान
भाषा रहस्य (पद्मनारायण आचार्य के साथ)
श्रीहर्ष — नैषधीय चरित
सक्सेना, बाबूराम — सामान्य भाषा विज्ञान
सिद्धेश्वर वर्मा — क्रिटिकल स्टडीज इन दि फोनेटिक आब्जरवेशन्स आफ एंश्येंट इंडियन ग्रैमेरियन्स
हैनरी स्वीट — ए प्रैक्टिकल स्टडी आफ लैंग्वेजेज़
हिस्ट्री आफ लैंग्वेजेज़
ह्विटनी, डब्ल्यू० डी० — लाइफ एण्ड ग्रोथ आफ लैंग्वेजेज़

फुटकर

चैम्बर विश्वकोश
ब्रिटिश विश्वकोश
समाज विज्ञान विश्वकोश
पेपर आन इंडियन लैंग्वेजेज़ (जनगणना विभाग) 1954 में प्रकाशित और 1951 की जनगणना पर आधारित।
भारत का संविधान (हिन्दी संस्करण)